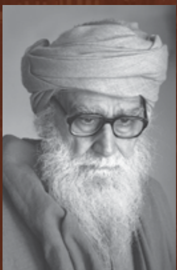


धर्म और आधुनिक चुनौती

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान

आधुनिक नास्तिक चिंतकों के निकट धर्म में कोई वास्तविक सच्चाई नहीं है, बल्कि यह इंसान की सिर्फ़ इस तड़प का नतीजा है कि वह ब्रह्मांड के होने का कारण जानना चाहता है। कारण तलाश करने की इंसानी भावना स्वयं ग़लत नहीं है, मगर अल्प ज्ञान ने हमारे पूर्वजों को उन ग़लत जवाबों तक पहुँचा दिया, जिसे ईश्वर या धर्म कहा जाता है। अतः वह समस्त चीज़ें, जिन्हें अलौकिक कारणों का परिणाम समझा जाता था, अब बिल्कुल प्राकृतिक साधनों के तहत उनकी स्पष्टता मालूम कर ली गई है। आधुनिक अध्ययन-शैली ने हमें बता दिया है कि ईश्वर का अस्तित्व मानना इंसान की कोई वास्तविक खोज नहीं थी, बल्कि यह मात्र अज्ञानता के युग के अनुमान थे, जो ज्ञान का प्रकाश फैलने के बाद स्वतः समाप्त हो गए।

भौतिक विचार के मुकाबले में धर्म के सबूतों का दूसरा रूप यह है कि स्वयं उन्हें ज्ञान के माध्यमों के तहत उसे साबित किया जाए, जिसके अनुसार भौतिक विद्याओं में किसी चीज़ को साबित किया जाता है। दृष्टिगत किताब में अधिकतर इसी दूसरी सूरत को साधारण शैली में धारण करने का प्रयास किया गया है। लेखक का प्रयास यह है कि भौतिक वास्तविकताओं को साबित करने के लिए वर्तमान समय में जो तरीक़ा धारण किया जाता है, उसी को सामान्य रूप से समझ आने वाली शैली में धर्म के सबूत के लिए इस्तेमाल किया जाए।



मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान 'सेंटर फॉर पीस एंड स्प्रिचुएलिटी', नई दिल्ली के संस्थापक थे। मौलाना का मानना था कि शांति और आध्यात्मिकता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं : आध्यात्मिकता शांति की आंतरिक संतुष्टि है और शांति आध्यात्मिकता की बाहरी अभिव्यक्ति। मौलाना ने शांति और आध्यात्मिकता से संबंधित 200 से अधिक पुस्तकें लिखी हैं। विश्वशांति में अपने महत्वपूर्ण योगदान के लिए उन्हें अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान प्राप्त थी।

ISBN: 978-93-91481-69-8

CPS International
centre for peace & spirituality
www.cpsglobal.org
info@cpsglobal.org

Goodword
www.goodwordbooks.com
info@goodwordbooks.com

धर्म और आधुनिक चुनौती

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान

अनुवाद
मोहम्मद ख़ादिम

संपादन टीम
मोहम्मद आरिफ़
राशिद अंसारी, राज़िया बेग़म
इरफ़ान रशीदी, राजेश कुमार
मौलाना फ़रहाद अहमद
ख़ुर्रम इस्लाम क़ुरैशी

CPS International
centre for peace & spirituality

Goodword

First Published 2021

CPS International
Centre for Peace and Spirituality International
1, Nizamuddin West Market, New Delhi-110013
E-mail: info@cpsglobal.org
www.cpsglobal.org

Goodword Books
A-21, Sector 4, Noida-201301
Delhi NCR, India
E-mail: info@goodwordbooks.com
www.goodwordbooks.com

Printed in India

विषय-सूची

भूमिका

आधुनिक युग को धर्म-विरोधी होने की हैसियत के संबध से नास्तिक युग कहा जाता है, लेकिन नास्तिकता ईश्वर के दावे का इनकार नहीं है, बल्कि उसकी अपनी इस व्याख्या के अनुसार यह मात्र एक अध्ययन-शैली है, जो बौद्धिक और ज्ञानात्मक विकास के विशिष्ट दौर में इंसान को प्राप्त हुई है। इस विकासीय अध्ययन का अनिवार्य संबंध किसी चीज़ के इनकार या स्वीकरण से नहीं है, बल्कि एक अलग तरह से खोज करने का तरीक़ा है। यह अलग बात है कि नवीन विचारकों के अनुसार इस जिज्ञासु शैली ने धर्म को असत्य साबित कर दिया। यहाँ मैं टी०आर० माइल्ज़ (1923-2008) के शब्दों को अनुकरण करूँगा—

“वर्तमान रुझान एक टैक्निक, एक तरीक़ा, प्रश्नों के अध्ययन का एक ढंग की ओर है, न कि समस्याओं का निश्चित उत्तर देना। यह एक स्पष्ट परिवर्तन है, जो पिछली अर्ध शताब्दी के अंदर दर्शनशास्त्र के संसार में हुआ। यह वर्तमान स्थिति अभी भी जारी है और बहुत दूर तक इसमें ठहराव की आशा दिखाई नहीं दे रही।”....

(Religion and the Science Outlook 1959, p.13)

नवीन विचारकों का यह स्पष्टीकरण चाहे हम उसे शुद्ध ज्ञानात्मक बात समझें या धर्म से असहमत होकर उनकी ब्रह्मांड का भौतिक कारण खोजने में असफलता, यह केवल एक सुंदर शरणस्थल है, जो उसने तलाश किया है, न कि असल सवाल का जवाब। बहरहाल हमारे बचाव करने के प्रयासों के लिए आवश्यक है कि हम इस स्थिति को ज़हन में रखते हुए काम करें।

उदाहरण के लिए, रिसालत या पैग़ंबरी के प्रमाण के विषय में

हमारे यहाँ जो काम हो रहा है, इसमें अक्सर यह मान लिया जाता है कि आधुनिक युग का यह दावा कि पैग़ंबर-ए-इस्लाम झूठे रसूल (False Prophet) थे और इसके बाद पैग़ंबर को सच्चा साबित करने के लिए सामग्री को इकट्ठा करना आरंभ कर दिया जाता है। हालाँकि झूठा नबी कहने का यह मतलब है कि सच्चा नबी भी होता है और आधुनिक इंसान अपनी जानकारी की परिधि के अनुसार ऐसी किसी चीज़ को मानने में ही संदेह करता है। वास्तव में झूठा रसूल ईसाई और यहूदियों के धार्मिक वर्ग की पुरानी आपत्ति है, जो अपने पैग़ंबर को मानते हैं, लेकिन पैग़ंबर-ए-इस्लाम का इनकार करते हैं। जहाँ तक आधुनिक नास्तिक विचार का संबंध है, तो इसके लिए मूल मामला पैग़ंबर के 'झूठे या सच्चे' होने का नहीं है, बल्कि उसके सामने केवल यह प्रश्न है कि आपके पैग़ंबराना कथन का स्रोत क्या है? वह अपने ज्ञात माध्यमों पर विचार करते हुए इस नतीजे पर पहुँचता है कि इसका स्रोत इंसान का अपना अवचेतन है और अचेतन से निकले हुए कथन को 'वह्य या ईशवाणी' (Divine Revelation) कहना केवल तुलनात्मक है, न कि कोई वास्तविक घटना।

इसलिए पैग़ंबरी साबित करने की बहस में केवल पैग़ंबर-ए-इस्लाम को 'सच्चा' साबित करने से आधुनिक माँगें पूरी नहीं होतीं, बल्कि हमें यह भी बताना होगा कि 'वह्य' कोई वास्तविक चीज़ है। वह विशिष्ट शैली में अवतरित होती थी और इसी ऐतबार से आप ईश्वर के पैग़ंबर थे।

यह तो इस मौजूदा स्थिति का उदाहरण था, जबकि आधुनिक विचारधारा के मूल आधार को सही रूप से सामने रखे बग़ैर इस पर आलोचना की जाए; लेकिन एक और ज़हन है, जो आधुनिक विचार से परिचित होने के बावजूद दूसरी प्रकार की ग़लती में ग्रस्त हो जाता

है। यह लोग रौब में आने के कारण यह समझते हैं कि पश्चिमी विद्वानों के निकट जिन कल्पनाओं को मान्यता प्राप्त हो गई है, वह निश्चित रूप से ज्ञानात्मक मान्यता ही होगी। इसलिए वे इस्लाम की जीत इसमें समझते हैं कि वे इन मान्य विचारों को क़ुरआन व हदीस* से साबित कर दिखाएँ। यह इस्लाम और आधुनिक शैली में अनुकूलता पैदा करने की वही शैली है, जो पराजित सभ्यताएँ अपनी विजयी सभ्यता के मुक़ाबले में सामान्यतः करती हैं; लेकिन यह एक हक़ीक़त है कि जो चिंतन शैली इस प्रकार दुनिया के सामने आए, वह सभ्यता के वस्त्र में पैवंद बनकर तो रह सकती है, लेकिन वह स्वयं सभ्यता का वस्त्र नहीं बन सकती। इस प्रकार के अनुकूलतावादी बयानों से यदि कोई यह उम्मीद रखता है कि वह दुनिया के ज्ञानात्मक वातावरण को बदल देगा या लोगों को असत्य से फेरकर सत्य की ओर लाने में सफल होगा, तो यह मात्र उसकी ख़ुशख़्याली है। विचारों में परिवर्तन के लिए क्रांतिकारी साहित्य की आवश्यकता होती है, न कि अनुकूलतावादी साहित्य की।

यह स्थिति उस समय और अधिक ख़राबी का कारण बनती है, जब किसी बुनियादी और एक से विचारों के बारे में इसका प्रकटन हुआ हो। उल्का पिंडों के विषय में यदि आधुनिक खगोल विद्वानों की कोई नई खोज हो और इसे मानकर इसके अनुसार आप क़ुरआन की व्याख्या (interpretation) करें तो इसमें किसी बड़ी ख़राबी का संशय नहीं है, लेकिन किसी ऐसी कल्पना को स्वीकार कर लिया जाए, जो मात्र एक आंशिक और अलग दशा की चीज़ न हो, बल्कि दूसरे गंभीर प्रश्नों से भी इसका प्रत्यक्ष संबंध हो तो संपूर्ण 'धर्म का फ़लसफ़ा' इससे प्रभावित हो जाता है।

* हजरत मुहम्मद के कथन, कर्म एवं मार्गदर्शन।

इसका स्पष्ट उदाहरण हमारी पंक्ति के वह शिक्षित लोग हैं, जिन्होंने विकास के सिद्धांत (Theory of Evolution) को इस आधार पर स्वीकार कर लिया है कि आधुनिक विद्वानों का दावा है कि वे अपने अध्ययन और अनुभव से इसकी सच्चाई पर संतुष्ट हो चुके हैं। इस सिद्धांत को मान लेने के कारण उन्हें इस्लाम की विकासीय व्याख्या करने की आवश्यकता पेश आ गई है और इस्लाम के वस्त्र को विकास के आकार के अनुरूप बनाने के लिए उन्हें पूरे कपड़े को दोबारा नए तरीक़े से तराशना पड़ा है।

उदाहरणार्थ 'विकास' का दृष्टि-बिंदु यह चाहता है कि इंसान शुरू से लेकर निरंतर प्रगति कर रहा हो और जीवन के अंजाम पर सबको उच्चतर स्थान प्राप्त हो। इस विचार शैली के अनुसार अप्रिय स्थिति अतीत में है, न कि भविष्य में। इस प्रकार विकासीय दर्शन में स्वर्ग का जीवन तो उचित मालूम होता है, लेकिन नारकीय जीवन की स्पष्टता नहीं होती। इस दुश्वारी का समाधान करने के लिए 'विकास को मानने वाले ज़हन' को यह कहना पड़ा कि नरक सज़ा का स्थान नहीं, बल्कि तरबियत या प्रशिक्षण प्राप्त करने का स्थान है। जीवन हमेशा बाधाओं के विरुद्ध संघर्ष करके आगे बढ़ता है। जो लोग दुनिया में गुनाह की रुकावटों में घिरकर रह गए और आगे न बढ़ सके, उनको नरक की कठिन परिस्थितियों में डालने का उद्देश्य वास्तव में विकासीय संघर्ष को अगली दुनिया में जारी रखना है, उसी कठिन संघर्ष का नाम नरक है। इसी प्रकार यह ज़हन 'निजी संपत्ति' के इस्लामी क़ानूनों को 'अंतरिम युग के आदेश' क़रार देता है, क्योंकि सामाजिक विकास की कल्पना के साथ इन आदेशों का जोड़ नहीं लगता।

यह दो उदाहरण यह स्पष्ट करने के लिए दिए गए हैं कि आधुनिक चुनौती के उत्तर में जो काम हुआ है, महत्वपूर्ण होने के बावजूद भी इसमें किस प्रकार कमियाँ बाकी रह गई हैं। लेखक का यह दावा नहीं है कि

इसके प्रयास सभी कमियों से शुद्ध हैं, लेकिन निश्चय ही यह कहना भी सही होगा कि इन कमियों का यह अहसास इस प्रयास का प्रेरक हुआ।

किताब में जिस पक्ष से धर्म का बचाव किया गया है या जिस विचारधारा के दृष्टिगत उसे तार्किक करने का प्रयास किया गया है, इसके दो अलग-अलग तरीक़े हो सकते हैं— एक काल्पनिक और दूसरा अनुभव से या दूसरे शब्दों में, एक दर्शनीय और दूसरा वैज्ञानिक (यदि उसे वैज्ञानिक कहा जा सकता हो)। दृष्टिगत किताब में अधिकतर दूसरे पक्ष का लिहाज़ रखा गया है। इसका विशेष कारण लेखक का यह अहसास है कि पहले तरीक़े पर हमारे यहाँ काफ़ी काम हो चुका और इसमें बहुत कुछ सामग्री हमारे पुराने और नए साहित्य में मौजूद है, जबकि दूसरे पक्ष की संबद्धता से बहुत कम काम हुआ है। विशेष रूप से आधुनिक वैज्ञानिक खोजों ने धर्म के अनुभवी प्रमाणों के लिए जो विशाल मैदान उपलब्ध कर दिया है, वह मुझे बिल्कुल कुरआन की एक आयत जिसका अनुवाद है— "अभी वह तुम्हें अपनी और भी निशानियाँ दिखाएगा जिसकी पहचान तुम्हें बराबर होती रहेगी" (27:93) की पुष्टि मालूम होती है। मौजूदा किताब, एक लिहाज़ से, इसी नई उत्पन्न संभावनाओं को व्यवस्थित रूप से इस्तेमाल करने का एक प्रयास है।

किताबों के नवीन विभाजन के अनुसार दृष्टिगत किताब विषयगत अध्ययन (objective study) का उदाहरण प्रस्तुत ही नहीं करती, बल्कि वह व्यक्तिनिष्ठ या आत्मनिष्ठ (subjective) शैली में लिखी गई है। यह आधुनिक ज़हन के निकट मानो किताब के विरुद्ध स्वयं किताब का वोट है, क्योंकि जो अध्ययन पक्षपाती सोच के तहत किया गया हो, उसकी सच्चाई पर विश्वास कैसे किया जा सकता है। इसके उत्तर में मैं ऑस्ट्रियन नव-मुस्लिम 'अल्लामा मुहम्मद असद'

का वाक्य नक़ल करूँगा। इन्होंने अपनी एक किताब में इसी शैली की स्पष्टता करते हुए लिखा है—

"It does not pretend to be a dispassionate survey of affairs; it is statement of a case of Islam versus western civilization."

"इस किताब में कृत्रिम रूप से निष्पक्ष सर्वे का तरीक़ा धारण नहीं किया गया है, बल्कि उसका अंदाज़ एक भूमिका जैसा है।"

(Islam at the Crossroads. p.6)

किताब में अक्सर 'धर्म' का शब्द प्रयोग किया गया है। इससे किसी को ग़लतफ़हमी नहीं होनी चाहिए। यह किताब चूँकि एक सामान्य विषय पर है, इसीलिए उसकी समानता से सामान्य शब्द अधिक उपयुक्त था। लेखक की सोच इस विषय में बिल्कुल स्पष्ट है कि धर्म से अभिप्राय कोई कल्पित चीज़ नहीं, बल्कि केवल वह है, जो आज धर्म की हैसियत से ईश्वर के यहाँ मान्य है अर्थात् इस्लाम। यदि भारत में रहने वाले किसी नागरिक से कहा जाए कि तुम्हें क़ानून की पैरवी करनी होगी, तो इसका मतलब यह नहीं है कि दुनिया के किसी भी क़ानून या किसी भी ज़माने के भारतीय क़ानून की पैरवी कर लेना पर्याप्त है, बल्कि उसका अर्थ केवल यह है कि वह क़ानून, जो आज भारत के नागरिकों के लिए क़ानून की हैसियत रखता है, उसे मानना और उसका पालन करना। इसी प्रकार व्यावहारिक रूप से धर्म से अभिप्राय केवल इस्लाम है। यद्यपि शब्दकोश की दृष्टि से इसका लागू होना हर उस चीज़ पर होता है, जो धर्म के नाम से प्रसिद्ध हो। दूसरे शब्दों में, ऐतिहासिक सूचीबंदी के रूप में चाहे जिस जिस चीज़ को धर्म में शामिल किया जा, लेकिन ईश्वर की पसंद के अनुसार जीवन गुज़ारने के लिए आज जो सुरक्षित धर्म (preserved religion) है, वह केवल इस्लाम है। इसलिए इस्लाम ही

की पैरवी में आख़िरत की निजात अर्थात् पारलौकिक मोक्ष है, इसके अतिरिक्त मोक्ष की कोई स्थिति नहीं।

यूनिवर्सिटी के छात्रों की यूनियन में एक बार निबंध पढ़ने के बाद मुझे एक सवाल का सामना करना पड़ा। मैंने अपने लेख में सिगमंड फ्राइड (1856-1939) का एक उद्धरण दिया था। एक व्यक्ति ने निबंध सुनने के बाद कहा। आपने फ्राइड का हवाला एक धार्मिक बहस में बतौर समर्थन अनुकरण किया है। हालाँकि फ्राइड वह व्यक्ति है, जो सिरे से इस धार्मिक दृष्टि-बिंदु ही के विरुद्ध है जिसके आप प्रतिनिधि हैं।

यही प्रश्न मौजूदा किताब के बारे में ज़्यादा बड़े स्तर पर किया जा सकता है, क्योंकि इसमें ऐसे बहुत से उधारण समर्थन के रूप में अनुकरण किए गए हैं जिनके लेखक किताब के मूल उद्देश्य से सहमति नहीं कर सकते। उदाहरण के रूप में देखें— 'परलोक का प्रमाण' का अंतिम उद्धरण, लेकिन यह आपत्ति उचित नहीं, क्योंकि इन उद्धरणों की हैसियत यह नहीं है कि वह एक व्यक्ति के निजि प्रमाण के रूप में अनुकरण किए गए हैं। लेखक ने एक प्रमाण को प्रस्तुत करते हुए कहीं उसे अपने शब्दों में बयान किया है और कहीं दूसरों के शब्दों में।

इन उद्धरणों में जो बातें कही गई हैं, वे सामान्यतः वह हैं, जो किसी के व्यक्तिगत विचार से संबंध नहीं रखतीं, बल्कि वह ज्ञानात्मक खोजें हैं। बहुदेववादियों ने इन ज्ञानात्मक खोजों को लेकर दूसरे अर्थ निकाले हैं और हमने उन्हें धर्म के पक्ष में पाकर किताब में जमा कर दिया है। जो उद्धारण स्पष्ट रूप से धर्म के समर्थन में हैं, वह सामान्यतः ईसाई विद्वानों के कथन हैं और सामी धर्म (semitic religions) पर आस्था रखने के कारण उनके इस प्रकार के कथनों में हमारे लिए अचरज की कोई बात नहीं।

जैसा कि नाम से ज़ाहिर है कि दृष्टिगत किताब का विषय आधुनिक भौतिक विचार के मुक़ाबले में धर्म के प्रमाण हैं। इन प्रमाणों के दो रूप हैं— एक यह कि यह साबित किया जाए कि धर्म एक अभौतिक चीज़ है, इसलिए वह भौतिक विद्याओं की पकड़ से बाहर है। ऐसी स्थिति में भौतिक विद्याओं को यह अधिकार नहीं पहुँचता कि वह धर्म की सच्चाई पर आपत्ति करें। सबूतों का यह तरीक़ा धर्म के मानने वालों की ओर से अधिकता से इस्तेमाल किया गया है। फिर बीसवीं शताब्दी में इस प्रामाणिकता में और अधिक बल विज्ञान की इस स्वीकृति से पैदा हो गया कि विज्ञान वास्तविकता की केवल आंशिक जानकारी देता है—

Science gives us but a partial knowledge of reality.

इसका अर्थ यह है कि स्वयं भौतिक ज्ञान की अपनी स्वीकृति के अनुसार कुछ ऐसी वास्तविकताएँ हो सकती हैं, जो भौतिक शोध की परिधि से बाहर हों। इस नवीन संभावना पर संभवतः सबसे अधिक सफल किताब जे०डब्ल्यू०एन० सुलीवान की है, जिसका कुछ भाग आठवें अध्याय की तीसरी बहस में मिलेगा।

भौतिक विचार के मुक़ाबले में धर्म के सबूतों का दूसरा रूप यह है कि स्वयं उन्हें ज्ञान के माध्यमों के तहत उसे साबित किया जाए, जिसके अनुसार भौतिक विद्याओं में किसी चीज़ को साबित किया जाता है। दृष्टिगत किताब में अधिकतर इसी दूसरी स्थिति को साधारण शैली में धारण करने का प्रयास किया गया है। लेखक का प्रयास यह है कि भौतिक वास्तविकताओं को साबित करने के लिए वर्तमान समय में जो तरीक़ा धारण किया जाता है, उसी को सामान्य रूप में समझ में आने वाली शैली में धर्म के सबूत के लिए इस्तेमाल किया जाए।

धर्म-विरोधियों का मुक़दमा

जिस तरह एटम के टूटने से तत्त्व के विषय में इंसान की पिछली समस्त कल्पनाएँ समाप्त हो गईं, इसी तरह पिछली शताब्दी में ज्ञान में जो प्रगति हुई है, वह भी एक प्रकार का ज्ञानात्मक धमाका (knowledge explosion) है, जिसके बाद ईश्वर और धर्म से संबंधित समस्त पुराने विचार भक से उड़ गए हैं।

(हिंदुस्तान टाइम्स, संडे मैगज़ीन; 23 सितंबर, 1961)

जूलियन हक्सले के शब्दों में, यह आधुनिक ज्ञान की चुनौती है और इन्हीं पृष्ठों में मुझे इसी चुनौती का उत्तर देना है। लेखक का विश्वास है कि ज्ञान की रोशनी धर्म की सच्चाई को और अधिक स्पष्ट करने में मददगार हुई है। इसने किसी भी दृष्टि से धर्म को कोई हानि नहीं पहुँचाई है। आधुनिक काल की सारी खोजें सिर्फ़ इस बात को स्वीकार करती हैं कि आज से डेढ़ हजार वर्ष पहले इस्लाम का यह दावा कि वह अंतिम सच्चाई है और भविष्य की सारी जानकारियाँ इसकी सच्चाई को और स्पष्ट करती चली जाएँगी, बिल्कुल सही था—

> "हम उन्हें जल्दी ही अपनी निशानियाँ दिखाएँगे क्षितिज में भी और ख़ुद उनके अंदर भी, यहाँ तक कि उन पर ज़ाहिर हो जाए कि यह क़ुरआन हक़ है।" (क़ुरआन, 41:53)

आधुनिक नास्तिक चिंतकों के निकट— धर्म में कोई सच्चाई नहीं है, बल्कि यह इंसान की सिर्फ़ इस विशेषता का नतीजा है कि वह

ब्रह्मांड के होने का कारण जानना चाहता है। कारण तलाश करने की इंसानी भावना स्वयं ग़लत नहीं है, मगर अल्प ज्ञान (sciolism) ने हमारे पूर्वजों को उन ग़लत जवाबों तक पहुँचा दिया, जिसे 'ईश्वर' या 'धर्म' कहा जाता है। अब जिस तरह दूसरे बहुत से विषयों में इंसान ने अपनी ज्ञानात्मक उन्नति से अतीत की ग़लतियों को सुधारा है, इसी तरह कारणता (causation) के विषय में भी वह आज इस स्थिति में है कि अपनी प्रारंभिक ग़लतियों को सुधार सके—

ऑगस्ट काम्टे, जो उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का फ़्रांसीसी चिंतक है। इसके नज़दीक इंसान के वैचारिक विकास का इतिहास तीन चरणों में विभाजित है— पहला चरण धर्म-संबंधी चरण (theological stage) है, जबकि ब्रह्मांडीय घटनाओं की स्पष्टता दिव्य शक्तियों के हवाले से की जाती है। दूसरा चरण तात्त्विक या भौतिक (metaphysical stage) है, जिसमें निर्धारित रूप से ईश्वर का नाम तो बाक़ी नहीं रहता, फिर भी घटनाओं की स्पष्टता के लिए बाहरी तत्त्वों का हवाला दिया जाता है, जैसे सुपर कॉन्शियसनेस, सर्वशक्तिमान वग़ैरह। तीसरा चरण प्रामाणिक चरण है, जबकि घटनाओं का स्पष्टीकरण ऐसे साधनों के हवाले से किया जाता है, जो अध्ययन और अवलोकन (observation) के सामान्य नियमों के तहत मालूम होते हैं, बग़ैर इसके कि किसी आत्मा, ईश्वर या सर्वशक्तिमान का नाम लिया गया हो। इस विचारधारा के तहत इस समय हम इसी तीसरे वैचारिक दौर से गुज़र रहे हैं और इस विचार ने दर्शनशास्त्र में जो नाम धारण किया है, वह तार्किक सकारात्मकतावाद (logical positivism) है।

तार्किक प्रमाणिकता या वैज्ञानिक अनुभववाद (scientific empiricism) विधिवत आंदोलन के रूप में बीसवीं शताब्दी की दूसरी चौथाई में आरंभ हुआ, मगर एक विचार-शैली की हैसियत से यह पहले ही ज़ेहनों में पैदा हो चुका था। इसके पीछे ह्यूम और मिल

से लेकर रसल तक दर्जनों प्रतिष्ठित चिंतकों के नाम हैं और अब सारी दुनिया में अपने प्रचारकर्ता और अनुसंधानात्मक संगठनों के साथ वह वर्तमान काल की महत्वपूर्ण विचार शैली बन चुकी है।

डिक्शनरी ऑफ़ फ़िलोसॉफ़ी (मुद्रित : न्यूयॉर्क) में इस विचार-शैली की परिभाषा निम्नलिखित शब्दों में की गई है—

"Every knowledge that is factual is connected with experiences in such a way that its verification through direct or indirect confirmation is possible."

"हर वह ज्ञान जो वास्तविक है, वह अनुभवों से इस ढंग से जुड़ा हुआ होता है कि इसकी जाँच प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तरीक़े से इसकी पुष्टि करना संभव हो।" (p.285)

इस तरह धर्म-विरोधियों के निकट स्थिति यह बनती है कि विकास की प्रक्रिया ने इंसान को आज जिस उच्च स्थान तक पहुँचाया है, वह ठीक अपनी विचार-शैली की दृष्टि से धर्म का खंडन है; क्योंकि आधुनिक विकसित ज्ञान ने हमें बताया है कि हक़ीक़त सिर्फ़ वही हो सकती है, जो अनुभव और अवलोकन में आई हो, जबकि धर्म की बुनियाद एक ऐसी कल्पना पर है, जो सिरे से अवलोकन और अनुभव में नहीं आ सकती। दूसरे शब्दों में, घटनाओं और दुर्घटनाओं की धार्मिक स्पष्टता आधुनिक विकसित माध्यमों से साबित नहीं होती, इसलिए वह अवास्तविक है।

इस विचार-शैली के अनुसार धर्म वास्तविक घटनाओं की अवास्तविक व्याख्या है। पूर्वकाल में इंसान की जानकारी चूँकि बहुत सीमित थी, इसलिए घटनाओं की सही स्पष्टता में इसे कामयाबी नहीं मिली और इसने धर्म के नाम पर अजीबोग़रीब परिकल्पनाएँ क़ायम कर लीं, मगर विकास के विश्वव्यापी क़ानून ने आदमी को इस अंधकार

से निकाल दिया और नई जानकारियों की रोशनी में यह संभव हो गया कि अटकलपच्चू आस्थाओं पर श्रद्धा रखने के स्थान पर शुद्ध प्रयोगात्मक और अवलोकनीय माध्यमों से चीज़ों की हक़ीक़त मालूम की जाए। तर्कसंगत प्रामाणिकतावाद की आलोचना को दूसरी तरह यूँ बयान किया जा सकता है कि अतीत के धार्मिक विद्वानों की मिसाल एक ऐसे व्यक्ति की-सी है, जिसने एक बेकार चेक (dud cheque) लिख दिया हो, जिसके लिए बैंक में सच में रक़म मौजूद न हो। यह लोग ऐसे शब्द प्रयोग करते रहे, जिसके पीछे मौलिकता की पूँजी नहीं थी। 'अपरिवर्तनीय उच्च सत्य' व्याकरण की भाषा से एक सही वाक्य है, मगर वह एक बेकार चेक है जिसके पीछे कोई पूँजी नहीं।

(Religion and the Scientific Outlook, p.20)

अतः वह समस्त चीज़ें जिन्हें अलौकिक कारणों का परिणाम समझा जाता था, अब बिल्कुल प्राकृतिक साधनों के तहत उनकी स्पष्टता मालूम कर ली गई है। आधुनिक अध्ययन-शैली ने हमें बता दिया है कि ईश्वर का अस्तित्व मानना इंसान की कोई खोज नहीं थी, बल्कि यह मात्र अज्ञानता के युग के अनुमान थे, जो ज्ञान का प्रकाश फैलने के बाद स्वत: समाप्त हो गए।

जूलियन हक्सले ने लिखा है— "न्यूटन ने दिखा दिया है कि कोई ईश्वर नहीं है, जो सितारों की गर्दिश पर हुकूमत करता हो। ला प्लास ने अपने प्रसिद्ध सिद्धांत से इस बात की पुष्टि कर दी है कि ब्रह्मांडीय व्यवस्था को ईश्वरीय परिकल्पना की कोई आवश्यकता नहीं। डार्विन और पॉश्चर ने यही कार्य जैविकी (biology) के क्षेत्र में किया है और वर्तमान शताब्दी में 'मानव विज्ञान' की उन्नति और ऐतिहासिक जानकारियों की वृद्धि ने ईश्वर को इस परिकल्पित स्थान से हटा दिया कि वह मानव जीवन और इतिहास को कंट्रोल करने वाला है।"

(Religion Without Revelation, New York, 1958, p.58)

अर्थात् भौतिकी (physics), मनोविज्ञान और इतिहास, तीनों विधाओं ने यह साबित कर दिया है कि जिन घटनाओं की व्याख्या के लिए पहले इंसान ने ईश्वर और देवताओं का अस्तित्व मान लिया था या एकल शक्तियों को मानने लगा था, उसके कारण दूसरे थे, मगर अनभिज्ञता (ignorance) के कारण वह धर्म की रहस्यमय परिभाषाओं में बात करता रहा।

(1) भौतिक विज्ञान की दुनिया में इस क्रांति का हीरो न्यूटन है, जिसने यह सिद्धांत पेश किया कि ब्रह्मांड कुछ अपरिवर्तनीय नियमों से बँधा हुआ है। कुछ विधान हैं, जिनके तहत समस्त आकाशीय पिंड समूह (celestial bodies) गतिविधि कर रहे हैं। बाद में दूसरे असंख्य लोगों ने इस शोध को आगे बढ़ाया, यहाँ तक कि धरती से लेकर आकाश तक सारी घटनाएँ अटल व्यवस्था के तहत प्रकट होती नज़र आईं, जिसे 'प्रकृति का नियम' (law of nature) का नाम दिया गया। इस खोज के बाद प्राकृतिक रूप से यह कल्पना समाप्त हो जाती है कि ब्रह्मांड के पीछे कोई कर्ता (The Creator) और शक्तिशाली ईश्वर है, जो इसे चला रहा है। अधिक-से-अधिक गुंजाइश अगर हो सकती है तो ऐसे ईश्वर की, जिसने शुरुआती ब्रह्मांड को हरकत दी हो। अतः शुरू में लोग प्रथम प्रेरक के रूप में ईश्वर को मानते रहे। वॉल्टेयर ने कहा कि ईश्वर ने इस ब्रह्मांड को बिल्कुल इसी तरह बनाया है, जिस तरह एक घड़ीसाज़ घड़ी के पुर्ज़े जमा करके उन्हें एक विशेष रूप में क्रम देता है और इसके बाद उसका घड़ी से कोई संबंध नहीं रहता। इसके बाद ह्यूम ने इस 'बेजान और बेकार ईश्वर' को भी यह कहकर समाप्त कर दिया कि हमने घड़ियाँ को बनते हुए तो देखा है, लेकिन दुनिया बनती हुई नहीं देखी। इसलिए क्योंकर ऐसा हो सकता है कि हम ईश्वर को मानें।

विज्ञान की प्रगति और ज्ञान के फैलाव ने अब इंसान को वह कुछ दिखा दिया है, जिसे पहले इसने देखा नहीं था। घटनाओं की जिन कड़ियों को न जानने के कारण हम समझ नहीं सकते कि यह घटना क्यों हुई। वह अब घटनाओं की समस्त कड़ियों के सामने आ जाने के कारण एक जानी-बूझी चीज़ बन गई है, जैसे पहले आदमी यह नहीं जानता था कि सूरज कैसे निकलता है और कैसे डूबता है। इसलिए इसने समझ लिया कि कोई ईश्वर है, जो सूरज को उदय करता है और उसे अस्त करता है। इस तरह एक अलौकिक शक्ति का विचार पैदा हुआ और जिस चीज़ को आदमी नहीं जानता था, उसके बारे में यह कह दिया कि यह उसी ताक़त का करिश्मा है, मगर अब जबकि हम जानते हैं कि सूरज का निकलना और डूबना इसके गिर्द धरती के घूमने के कारण होता है तो सूरज के निकलने और डूबने के लिए ईश्वर को मानने की क्या ज़रूरत!

इसी तरह वह समस्त चीज़ें, जिनके बारे में पहले यह समझा जाता था कि इनके पीछे कोई अनदेखी शक्ति काम कर रही है, वह सब आधुनिक अध्ययन के बाद हमारी जानी-पहचानी प्राकृतिक शक्तियों की क्रिया और प्रतिक्रिया (cause and effect) का परिणाम नज़र आया मानो घटना के प्राकृतिक कारणों के मालूम होने के बाद वह आवश्यकता ख़ुद ही समाप्त हो गई, जिसके लिए पहले लोगों ने एक ईश्वर या प्रकृति से अलग शक्ति का अस्तित्व मान लिया था। अगर इंद्रधनुष गिरती हुई बारिश पर सूरज की किरणों के अपवर्तन (refraction) से उत्पन्न होता है तो यह कहना बिल्कुल ग़लत है कि वह आकाश के ऊपर ईश्वर का चिह्न है। हक्सले ने इस प्रकार की घटनाएँ प्रस्तुत करते हुए कितने विश्वास से कहा है—

"If events are due to natural causes, they are not due to super natural causes."

(J. Hurley, Religion Without Revelation)

“अगर घटनाएँ प्राकृतिक कारणों से होती हैं तो वह अलौकिक कारणों से नहीं हो सकतीं।”

(2) इसके बाद मनोविज्ञान का अनुसंधान (research) किया गया तो इस दृष्टि-बिंदु पर और अधिक विश्वास हो गया, क्योंकि इससे मालूम हुआ कि धर्म इंसान के अपने अवचेतन की उत्पत्ति है, न कि असल में किसी बाहरी वास्तविकता का खुलना। एक विद्वान के शब्द कुछ इस प्रकार हैं—

“God is nothing but a projection of man on a cosmic screen.”

“ईश्वर की वास्तविकता इसके अलावा और कुछ नहीं कि वह ब्रह्मांडीय स्तर पर इंसान की हस्ती का एक काल्पनिक अपवर्तन है।”

दूसरी दुनिया का विश्वास इंसान की अपनी अभिलाषाओं का एक सुंदर चित्र ‘Beautiful idealization of Human Wishes’ से अधिक और कुछ नहीं (The Iqbal Review, Lahore, April 1962)। आकाशवाणी या वह्य (Divine revelations) मात्र बचपन में दबे हुए विचारों (childhood repressions) का एक असाधारण प्रकटीकरण है।

इन समस्त विचारों का आधार अवचेतन के दृष्टिकोण पर क़ायम है। नई खोजों से मालूम हुआ है कि इंसान का मस्तिष्क दो बड़े भागों में बँटा हुआ है— एक भाग वह, जिसे चेतन मन (conscious mind) कहते हैं। यह हमारे उन विचारों का केंद्र है, जो सामान्य रूप से होश-ओ-हवास की स्थिति में विवेकी रूप से हमारे मस्तिष्क में पैदा होते हैं। दूसरा भाग अचेतन या अवचेतन मन (sub-conscious mind) है। मस्तिष्क के इस भाग के विचार सामान्य रूप से हमारे ज्ञान व स्मरण-शक्ति के सामने नहीं होते, मगर वह इसकी तह में

मौजूद रहते हैं और असाधारण परिस्थितियों में यह सोते समय सपने में प्रकट होते हैं। इंसान के अधिकतर विचार इसी अवचेतन मन के ख़ाने में जाकर दब जाते हैं और इस दृष्टि से मस्तिष्क का चेतन भाग इसके अवचेतन से बहुत कम है। अतः दोनों का अनुपात स्पष्ट करने के लिए सागर के हिमशैल (iceberg) की मिसाल दी जाती है, जिसके नौ भाग किए जाएँ तो आठ भाग पानी में डूबे हुए होंगे और देखने वालों को सिर्फ़ एक भाग ऊपर नज़र आएगा... हालाँकि यह अनुपात भी प्रासंगिक है।

फ्राइड ने लंबे अनुसंधान के बाद यह बताया है कि बचपन में इंसान के अचेतन मन में कुछ ऐसी चीज़ें बैठ जाती हैं, जो बाद में बुद्धिविहीन बरताव का कारण बनती हैं। यही स्थिति धार्मिक आस्थाओं की है, जैसे दूसरी दुनिया और स्वर्ग-नरक की कल्पना वास्तव में उन अभिलाषाओं की प्रतिध्वनि है, जो बचपन से आदमी के मस्तिष्क में पैदा हुई, मगर हालात अनुकूल न होने से पूरी नहीं हुई और दबकर अचेतन मन में बाक़ी रह गई। बाद में अचेतन मन ने अपनी संतुष्टि के लिए एक ऐसी काल्पनिक दुनिया बना ली, जहाँ वह अपनी इच्छाओं व अभिलाषाओं की पूर्णता कर सके। बिल्कुल उसी तरह, जैसे कोई व्यक्ति अपनी प्रिय वस्तु को न पा सका हो तो वह नींद की हालत में सपने देखता है कि वह उसका आलिंगन कर रहा है। इसी प्रकार बचपन की बहुत-सी बातें, जो अचेतन मन की तह में मिलकर प्रत्यक्ष में यादों से निकल गई थीं, वे असाधारण परिस्थिति जैसे जुनून या हिस्टीरिया में सहसा ज़ुबान से जारी हो गईं तो समझ लिया गया कि यह कोई अदृश्य शक्ति है, जो इंसान की ज़ुबान से बात कर रही है। इसी प्रकार बड़े और छोटे (father complex) के अंतर ने ईश्वर और बंदे का विचार पैदा किया और जो चीज़ मात्र एक सामाजिक

बुराई थी, उसे ब्रह्मांडीय स्तर पर रखकर एक विचार गढ़ लिया गया। राल्फ़ लिंटन ने लिखा है—

"एक ऐसे पूर्ण प्रभुत्ववान (The Omnipotent) की कल्पना, जिसके काम चाहे कितने भी अन्यायपूर्ण मालूम हों, लेकिन उसे पूर्ण आज्ञाकारी और वफ़ादारी ही के द्वारा प्रसन्न किया जा सकता है, सीधे रूप से सामी वंशवादी व्यवस्था (Semitic family system) की पैदावार था। इस वंशवादी व्यवस्था ने अतिशयोक्तिपूर्ण तरीक़े से अहंकारी ईश्वर की कल्पना को जन्म दिया। इसका परिणाम यह निकला कि मूसवी (यहूदी) विधान के रूप में इंसानी ज़िंदगी और बरताव के हर पहलू से संबंधित वर्जित बातों की एक विस्तृत सूची तैयार हो गई। मना की गई बातों का यह सिलसिला उन लोगों ने गाँठ में बाँध लिया, जो बचपन में अपने बाप के आदेशों को याद रखने और सतर्कता से इस पर अमल करने के अभ्यस्त हो चुके थे। ईश्वर की कल्पना विशेष प्रकार के सामी पिता का प्रतिबिंब है, जिसके अधिकारों और गुणों में कल्पना और अतिशयोक्ति पैदा कर दी गई है।"

(The Tree of Culture, Ralph Linton... New York, Alfred A Knopf, 1956, p.288)

(3) धर्म के ख़िलाफ़ मुक़दमे का तीसरा आधार इतिहास है। धर्म-विरोधियों का दावा है कि हमने इतिहास का अध्ययन किया तो मालूम हुआ कि धार्मिक कल्पनाएँ पैदा होने का कारण वह विशिष्ट ऐतिहासिक हालात हैं, जो इससे पहले इंसान को घेरे हुए थे। प्राचीन युग में विज्ञान की खोजों से पहले सैलाब, तूफ़ान और बीमारी आदि से बचने का इंसान के पास कोई साधन नहीं था। वह स्थायी रूप से अपने आपको असुरक्षित जीवन में पाता था। इसलिए इसने अपनी

संतुष्टि के लिए कुछ ऐसी असाधारण शक्तियाँ मान ली थीं, जिन्हें वह मुसीबत के समय पुकारे और जिनसे मुसीबत को दूर करने की आशा रखे। इसी प्रकार समाज के अंदर पारस्परिक जुड़ाव पैदा करने के लिए एक केंद्र के इर्द-गिर्द जोड़े रखने के लिए भी किसी चीज़ की ज़रूरत थी। यह काम उसने ऐसे पूज्यों से लिया, जो सारे इंसानों से ऊपर हों और जिनकी मर्ज़ी प्राप्त करना हर एक के लिए ज़रूरी हो आदि-आदि। सामूहिक विधाओं के विश्वकोश (encyclopedia) में 'धर्म' के निबंध-लेखक ने लिखा है—

"जिस प्रकार दूसरे कारण धर्म को पैदा करने में प्रभावी हुए हैं, उसी प्रकार इसमें राजनीतिक और सांस्कृतिक हालात का भी दख़ल रहा है। देवताओं के नाम, उनके गुण स्वतः ही समय की राज्य की व्यवस्था के रूप में ढल गए। ईश्वर को बादशाह मानने की आस्था मात्र इंसानी बादशाहत का बदला हुआ रूप है और आसमानी बादशाहत सिर्फ़ ज़मीनी बादशाहत की रूपरेखा है और अधिक यह कि चूँकि बादशाह सबसे बड़ा न्यायाधीश भी होता था, इसी प्रकार ईश्वर को भी अदालत की कार्रवाइयाँ सौंप दी गईं और यह आस्था बन गई कि वह इंसान के पाप-पुण्य के बारे में अंतिम निर्णय करेगा। इस प्रकार की अदालती कल्पना, जो ईश्वर को हिसाब लेने वाला और हाकिम मानती है, इसने न सिर्फ़ यहूदियत, बल्कि ईसाइयत और इस्लाम के धार्मिक विचार-बिंदु में भी केंद्रीय स्थान प्राप्त कर लिया है।"

(Encyclopedia of Social Sciences, 1957, V.13, p.233)

इस प्रकार विशिष्ट ऐतिहासिक युग के हालात और उन हालात के साथ इंसानी ज़ेहन के आपसी मेल ने वह विचार पैदा किए, जिन्हें 'धर्म' कहा जाता है। धर्म या मज़हब इंसानी दिमाग़ की पैदावार है, जो अज्ञानता और बाहरी शक्तियों के मुक़ाबले में बे-सहारा होने की एक

विशेष स्थिति के कारण पैदा होता है। जूलियन हक्सले ने यह टिप्पणी करते हुए लिखा है—

"Religion is the product of a certain type of interaction between man and his environment."

"धर्म नतीजा है इंसान और इंसान के माहौल के बीच एक विशेष प्रकार की पारस्परिक क्रिया का और अब वह ख़ास वातावरण समाप्त हो गया है या कम-से-कम समाप्त हो रहा है, जो इस प्रकार की पारस्परिक क्रिया को अस्तित्व में लाने का ज़िम्मेदार था, इसलिए अब धर्म को जीवित रखने का कोई कारण बाक़ी नहीं रहता।"

(Man in the Modern World, p.130)

उन्होंने आगे लिखा है—

"ईश्वर की कल्पना अपनी उपयोगिता के अंतिम स्थान पर पहुँच चुकी है। अब वह और अधिक उन्नति नहीं कर सकती। अलौकिक शक्तियाँ वास्तव में धर्म का बोझ उठाने के लिए इंसानी ज़ेहन की गढ़ी हुई थीं। पहले जादू हुआ, फिर रूहानी प्रयोगों ने इसका स्थान ले लिया, फिर देवताओं का विश्वास उभरा और इसके बाद एक ईश्वर का विचार आया। इस प्रकार प्रगति के चरणों से गुज़रकर धर्म अपनी अंतिम सीमा पर पहुँचकर समाप्त हो चुका है। किसी समय यह ईश्वर हमारी सभ्यता की आवश्यक परिकल्पनाएँ और लाभकारी विचार थे, मगर अब आधुनिक विकसित समाज में वह अपनी ज़रूरत और उपयोगिता खो चुके हैं।" (Man in the Modern World, p.131)

साम्यवादी (Communist) दर्शनशास्त्र के निकट भी धर्म एक ऐतिहासिक फ़रेब है, लेकिन चूँकि साम्यवाद इतिहास का अध्ययन समस्ततर आर्थिक प्रकाश में करता है, इसलिए उसने समस्त ऐतिहासिक कारणों को समेटकर सिर्फ़ आर्थिक कारणों में केंद्रित कर दिया। इसके

निकट धर्म को जिन ऐतिहासिक परिस्थितियों ने पैदा किया, वह प्राचीनकाल की सामंतवादी और पूँजीवादी व्यवस्था थी। अब चूँकि यह जर्जर व्यवस्था अपनी मौत मर रही है, इसलिए धर्म को भी इसी के साथ समाप्त हो जाना चाहिए। 'एंगेल्स' के शब्दों में, समस्त नैतिक दृष्टिकोण अपने अंतिम विश्लेषण में समय के आर्थिक हालात की पैदावार हैं (Antzs Dubring, Moscow, 1954, p.131)। इंसानी इतिहास वर्गों की लड़ाइयों का इतिहास है, जिसमें उच्च वर्ग पिछड़े वर्ग का शोषण करता रहा है और धर्म तथा नैतिकता सिर्फ़ इसलिए बनाए गए, ताकि उच्च वर्ग के हितों को सुरक्षित करने के लिए सैद्धांतिक आधार प्राप्त हो सके।

"क़ानून, नैतिकता, धर्म सब पूँजीवादियों (Capitalists) की धोखाधड़ी है, जिसकी आड़ में इसके बहुत से स्वार्थ छुपे हुए हैं।"

(Communist Manifesto)

नवयुवक कम्युनिस्ट लीग की तीसरी अखिल रूसी कांग्रेस (अक्टूबर, 1920) में लेनिन ने कहा था—

"निश्चित रूप से हम ईश्वर को नहीं मानते। हम अच्छी तरह जानते हैं कि चर्च के अधिकारी, सामंत और साधन-संपन्न वर्ग, जो ईश्वर के संदर्भ से बात करते हैं, वे मात्र शोषण करने वाले की हैसियत से अपने स्वार्थों की रक्षा करना चाहते हैं। हम ऐसे सभी नैतिक विधानों (moral laws) का इनकार करते हैं, जो इंसानों से अलग किसी अलौकिक शक्ति से ग्रहण किए गए हों या वर्गीय कल्पना पर आधारित न हों। हम कहते हैं कि यह एक धोखा है, एक कपट है। ज़मींदारों और सरमायादारों के हितों के लिए मज़दूरों और किसानों के विचार पर पर्दा डालना (befogging of the mind) है। हम कहते हैं कि हमारे सभी नैतिक नियम सिर्फ़ श्रमिक वर्ग (labor class) के वर्गीय संघर्ष के अधीन हैं।

हमारे नैतिक नियम का स्रोत श्रमिकों के वर्गीय संघर्ष का हित है।"

(Lenin, Selected Works, Moscow 1947, V.2, p.667)

यह धर्म-विरोधियों का वह मुक़दमा है, जिसके आधार पर आधुनिक युग के बहुत से लोग, शरीर-रचनाशास्त्र (Anatomy) के अमेरिकी प्रोफ़ेसर के शब्दों में कहते हैं—

"Science has shown religion to be history's cruelest and wickedest established hoax."

"विज्ञान ने यह साबित कर दिया है कि धर्म इतिहास का सबसे अधिक दुखद और सबसे निकृष्टतम ढोंग था।"

(Quoted by C. A. Coulson, Science and Christian Belief, p.4)

टिप्पणी

पिछले पृष्ठों में हमने उन धर्म-विरोधी दलीलों की चर्चा की है, जो इस बात के सबूत के लिए पेश किए जाते हैं कि आधुनिक काल ने धर्म के लिए कोई गुंजाइश बाक़ी नहीं रखी, मगर हक़ीक़त यह है कि यह मात्र एक बे-बुनियाद दावा है। आधुनिक विचार-शैली ने धर्म को किसी भी दर्जे में कोई हानि नहीं पहुँचाई है। अगले अध्यायों में हम धर्म के बुनियादी विचारों को एक-एक करके लेंगे और दिखाएँगे कि किस प्रकार धर्म आज भी एक मज़बूत वास्तविकता है, जैसा कि वह पहले था। यहाँ पिछली दलीलों पर एक सामान्य टिप्पणी पेश की जाती है।

(1) इस निरंतरता में सबसे पहले उस दलील को लीजिए, जो भौतिकी की खोज के संदर्भ में की गई है यानी ब्रह्मांड का अध्ययन करने से मालूम हुआ है और यहाँ जो घटनाएँ घट रही हैं, वह एक नियुक्त प्राकृतिक क़ानून के अनुसार घट रही हैं। इसलिए इनका स्पष्टीकरण करने के लिए किसी अज्ञात ईश्वर का वजूद मानने की ज़रूरत नहीं, क्योंकि ज्ञात क़ानून स्वयं इसकी स्पष्टता या कारणता (cause) के लिए मौजूद है। इन दलीलों का बेहतरीन जवाब यह है, जो एक ईसाई विद्वान ने दिया है। उसने कहा—

“Nature is a fact, not at an explanation.”

“प्रकृति का क़ानून ब्रह्मांड की एक घटना है, वह ब्रह्मांड का स्पष्टीकरण नहीं।”

तुम्हारा यह कहना सही है कि हमने प्रकृति के क़ानून मालूम कर

लिये हैं, मगर तुमने जो चीज़ मालूम की है, वह इस मामले का जवाब नहीं है जिसके जवाब के रूप में धर्म आया है। धर्म यह बताता है कि वह मूल कारण व प्रेरक क्या हैं, जो ब्रह्मांड के पीछे काम कर रहे हैं। जबकि तुम्हारी खोज सिर्फ़ एक मामले से संबंधित है कि ब्रह्मांड हमारे सामने खड़ा नज़र आता है। इसका प्रत्यक्ष ढाँचा क्या है? आधुनिक ज्ञान हमें जो कुछ बताता है, वह सिर्फ़ घटनाओं का अधिक विस्तार है, न कि मूल घटना की स्पष्टता। विज्ञान का समस्त ज्ञान इससे संबंधित है कि 'जो कुछ है, वह क्या है' यह बात इसकी पकड़ से बाहर है कि 'जो कुछ है, वह क्यों है'। जबकि स्पष्टता का संबंध इसी दूसरे पक्ष से है।

इसे एक उदाहरण से समझिए। मुर्ग़ी का बच्चा अंडे के मज़बूत ख़ोल (shell) के अंदर परवरिश पाता है और इसके टूटने से बाहर आता है। यह घटना क्योंकर होती है कि ख़ोल टूटे और बच्चा जो मांस के लोथड़े से अधिक नहीं होता, वह बाहर निकल आए। पहले का इंसान इसका जवाब यह देता था कि 'ईश्वर ऐसा करता है', मगर अब सूक्ष्मदर्शी अवलोकन के बाद मालूम हुआ कि जब 21 दिन की अवधि पूरी होने वाली होती है, उस समय नन्हे बच्चे की चोंच पर एक बहुत ही छोटा-सा कठोर सींग प्रकट होता है। इसकी सहायता से वह अपने ख़ोल को तोड़कर बाहर आ जाता है। सींग अपना काम करके बच्चे के जन्म के कुछ दिन बाद अपने आप ही झड़ जाता है।

धर्म-विरोधियों के विचार के अनुसार यह अवलोकन उस पुराने विचार को ग़लत साबित कर देता है कि बच्चे को बाहर निकालने वाला ईश्वर है, क्योंकि सूक्ष्मदर्शी आँख हमें स्पष्ट रूप से दिखा रही है कि यह 21 दिवसीय क़ानून है जिसके तहत वह स्थितियाँ पैदा होती हैं, जो बच्चे को ख़ोल से बाहर लाती हैं; मगर यह भ्रांति (delusion) से अलग और कुछ नहीं। नए अवलोकन ने जो कुछ हमें बताया है, वह

सिर्फ़ घटना की कुछ कड़ियाँ हैं। इसने घटना का असल कारण नहीं बताया। इस अवलोकन के बाद स्थिति में जो अंतर पैदा हुआ है, वह इससे अलग और कुछ नहीं कि पहले जो सवाल ख़ोल के टूटने के बारे में था, वह 'सींग' के ऊपर जाकर ठहर गया।

बच्चे का अपने सींग से ख़ोल को तोड़ना घटना की सिर्फ़ एक बीच की कड़ी है, वह घटना का कारण नहीं। घटना का कारण तो उस समय मालूम होगा, जब हम यह जान लेंगे कि बच्चे की चोंच पर सींग कैसे प्रकट हुआ। दूसरे शब्दों में, इसका अंतिम कारण पता लगाएँ, जो बच्चे की इस ज़रूरत को जानता था कि ख़ोल से बाहर निकलने के लिए किसी कठोर मददगार की ज़रूरत है और उसने तत्त्व को मजबूर किया कि ठीक समय पर ठीक 21 दिन बाद वह बच्चे की चोंच पर एक ऐसे सींग के रूप में प्रकट हो, जो अपना काम करने के बाद झड़ जाए। जैसे पहले यह सवाल था कि 'ख़ोल कैसे टूट जाता है' और अब सवाल यह हो गया कि 'सींग कैसे बनता है'। ज़ाहिर है कि दोनों हालात में किसी भी प्रकार का फ़र्क़ नहीं। इसे अधिक-से-अधिक वास्तविकता का व्यापक स्तर पर देखना कह सकते हैं, लेकिन इसे वास्तविकता के स्पष्टीकरण का नाम नहीं दे सकते।

यहाँ मैं एक अमेरिकी जीव विज्ञानी सेसिल बॉयस हैमेन के शब्द अनुकरण करना चाहूँगा— "आहार का पचना और उसके अंश व अंग बनने की आश्चर्यजनक प्रक्रिया को पहले ईश्वर की ओर जोड़ा जाता था। अब आधुनिक अवलोकन में वह रासायनिक प्रतिक्रिया का नतीजा नज़र आता है, मगर क्या इसके कारण ईश्वर के अस्तित्व को नकार दिया गया? आख़िर वह कौन-सी शक्ति है जिसने रासायनिक अंशों को पाबंद किया कि वे इस प्रकार की लाभकारी प्रतिक्रिया प्रकट करें। भोजन इंसान के शरीर में प्रवेश करने के बाद एक अद्भुत ख़ुद चलने वाली

व्यवस्था के तहत जिस प्रकार विभिन्न चरणों से गुज़रता है, इसे देखने के बाद यह बात बहस से बाहर मालूम होती है कि यह आश्चर्यजनक व्यवस्था मात्र संयोग से अस्तित्व में आ गई है। हक़ीक़त यह है कि इस अवलोकन के बाद तो और अधिक आवश्यक हो गया है कि हम यह मानें कि ईश्वर अपने उन महान क़ानूनों के द्वारा अमल करता है, जिसके तहत उसने जीवन को अस्तित्व दिया है।"

(The Evidence of God in an Expanding Universe p.221)

इससे आप नई खोजों की वास्तविकता समझ सकते हैं। यह सही है कि विज्ञान ने ब्रह्मांड के विषय में इंसान के अवलोकन को बहुत बढ़ा दिया है। इसने दिखा दिया है कि वह कौन से प्राकृतिक नियम हैं, जिनमें यह ब्रह्मांड जकड़ा हुआ है और जिसके तहत वह चल रहा है। जैसे पहले आदमी सिर्फ़ यह जानता था कि पानी बरसता है, मगर अब समुद्र की भाप उठने से लेकर बारिश की बूँदें धरती पर गिरने तक की पूरी प्रक्रिया इंसान को मालूम हो गई है, जिसके अनुसार बारिश की घटना होती है; मगर यह सारी खोजें सिर्फ़ घटना का चित्र हैं, वह घटना की स्पष्टता नहीं हैं। विज्ञान यह नहीं बताता की प्रकृति के विधान कैसे विधान बन गए। वे कैसे इतने लाभकारी रूप में लगातार धरती व आकाश में क़ायम हैं और इतनी उपयुक्तता के साथ क़ायम हैं कि इनके आधार पर विज्ञान के सिद्धांत संकलित किए जाते हैं। हक़ीक़त यह है कि वह प्रकृति जिसे मालूम कर लेने के कारण इंसान यह दावा करने लगा है कि इसने ब्रह्मांड की कारणता (cause) की खोज कर ली, वह मात्र धोखा है। यह एक असंबद्ध बात को सवाल का जवाब बनाकर पेश करना है। यह बीच की कड़ी को अंतिम कड़ी क़रार देना है। यहाँ मैं फिर चर्चित विद्वान के शब्द दोहराना चाहूँगा—

"Nature does not explain, she herself is in need of an explanation."

यानी प्रकृति ब्रह्मांड की स्पष्टता नहीं करती, बल्कि वह स्वयं अपने लिए स्पष्टता की माँग करती है।

अगर आप किसी डॉक्टर से पूछें कि ख़ून लाल क्यों होता है, तो वह जवाब देगा कि इसका कारण यह है कि ख़ून में अत्यंत छोटे-छोटे लाल कण होते हैं (एक इंच में सात हज़ारवें भाग के बराबर)। यही लाल कण ख़ून को लाल करने का कारण हैं।

"ठीक है, मगर यह लाल क्यों होते हैं?"

"इन कणों में एक विशेष पदार्थ होता है, जिसे हीमोग्लोबिन कहते हैं। यह तत्त्व जब फेफड़े में ऑक्सीजन सोखता है तो गहरा लाल हो जाता है।"

"ठीक है, मगर हीमोग्लोबिन के वाहक लाल कण कहाँ से आए?"

"वह आपकी तिल्ली (spleen) में बनकर तैयार होते हैं।"

"डॉक्टर साहब, जो कुछ आपने कहा, वह बहुत अजीब है; मगर मुझे बताएँ कि ऐसा क्यों होता है कि ख़ून, लाल कण, तिल्ली और दूसरी हज़ारों चीज़ें इस प्रकार एक संपूर्णता के साथ आपस में जुड़ी हुई हैं और इस सटीक स्वास्थ्य के साथ अपना-अपना कार्य कर रही हैं।"

"यह क़ुदरत का क़ानून है।"

"वह क्या चीज़ है, जिसे आप क़ुदरत का क़ानून कहते हैं?"

"इससे अभिप्राय भौतिक व रासायनिक शक्तियों का अंधा अमल (blind interplay of physical and chemical forces) है।"

"मगर क्या कारण है कि यह अंधी शक्तियाँ हमेशा ऐसी दिशा में क्रिया करती हैं, जो इन्हें एक निर्धारित परिणाम तक ले जाएँ? वे कैसे अपनी गतिविधियों को इस प्रकार व्यवस्थित करती हैं कि एक चिड़िया उड़ने के योग्य हो सके, एक मछली तैर सके, एक इंसान अपनी विशिष्ट योग्यताओं के साथ अस्तित्व में आए?"

"मेरे दोस्त, मुझसे यह न पूछो। वैज्ञानिक सिर्फ़ यह बता सकता है कि जो कुछ हो रहा है, वह कैसे हो रहा है। उसके पास इस सवाल का जवाब नहीं है कि जो कुछ हो रहा है, वह क्यों हो रहा है।"

यह सवाल-जवाब स्पष्ट कर रहे हैं कि वैज्ञानिक खोजों की वास्तविकता क्या है। निःसंदेह विज्ञान ने हमें बहुत-सी नई-नई बातें बताई हैं, मगर धर्म जिस सवाल का जवाब है, इसका उन खोजों से कोई संबंध नहीं। इस प्रकार की खोजें अगर वर्तमान मात्रा के मुक़ाबले में अरबों-खरबों गुणा बढ़ जाएँ, तब भी धर्म की आवश्यकता बाक़ी रहेगी, क्योंकि यह खोजें सिर्फ़ होने वाली घटनाओं को बताती हैं— यह घटनाएँ क्यों हो रही हैं, इनका अंतिम कारण क्या है, इसका जवाब इन खोजों के अंदर नहीं है। यह सारी-की-सारी खोजें सिर्फ़ बीच की स्पष्टता है। विज्ञान को धर्म का स्थान लेने के लिए आवश्यक है कि वह आख़िरी हद तक और पूर्णतः चीज़ों को स्पष्ट कर दे। इसका उदाहरण ऐसा है कि किसी मशीन के अंदर ढक्कन लगा हुआ हो तो हम सिर्फ़ यह जानते हैं कि वह चल रही है। अगर ढक्कन उतार दिया जाए तो हम देखेंगे कि बाहर का चक्कर किस प्रकार एक और चक्कर से चल रहा है और वह चक्कर किस प्रकार दूसरे बहुत से पुर्ज़ों से मिलकर हरकत करता है, यहाँ तक कि हो सकता है कि हम इसके सारे पुर्ज़ों और इसकी पूरी गति को देख लें; मगर क्या इस जानकारी का अर्थ यह है कि हमने मशीन के रचनाकार और इसके चलने के कारण का राज़ भी मालूम कर लिया? क्या किसी मशीन की कार्यविधि को जान लेने से यह साबित हो जाता है कि वह स्वतः ही बन गई और अपने आप चली जा रही है? अगर ऐसा नहीं है तो ब्रह्मांड के प्रदर्शन की कुछ झलकियाँ देखने से यह कैसे साबित हो गया कि यह सारी कार्यशाला अपने आप स्थापित हुई और अपने आप चली जा रही

है। हैरिस ने यही बात कही थी, जब उसने डार्विनिज़्म की आलोचना करते हुए कहा—

"Natural selection may explain the survival of the fittest, but cannot explain the arrival of the fittest."

(Revolt Against Reason by A. Lunn, p.133)

अर्थात् प्राकृतिक चयन के क़ानून का हवाला सिर्फ़ बेहतर जीवन को बाक़ी रहने की स्पष्टता करता है, वह यह नहीं बताता कि यह बेहतर जीवन स्वयं कैसे अस्तित्व में आया।

(2) अब मनोवैज्ञानिक दलीलों को ही लीजिए। कहा जाता है कि ईश्वर और दूसरी दुनिया की कल्पना में कोई सच्चाई नहीं है, बल्कि इंसानी व्यक्तित्व और इंसानी इच्छाओं का ब्रह्मांडीय स्तर पर अनुमान करना है; मगर मेरे लिए अकल्पनीय है कि इसमें दलील देने का पहलू क्या है। इसके जवाब में अगर मैं यह कहूँ कि निःसंदेह इंसानी व्यक्तित्व और इंसानी इच्छाएँ ब्रह्मांडीय स्तर पर मौजूद हैं तो मुझे नहीं मालूम कि विरोधियों के पास वह कौन-सी वास्तविक जानकारियाँ हैं, जिनके आधार पर वे इसका खंडन कर सकेंगे।

हम जानते हैं कि भ्रूण (embryo), जो सूक्ष्म (microscopic) दिखाई देने वाला पदार्थ है, वह 6 फ़ुट लंबे-चौड़े इंसान की मौजूदगी की भविष्यवाणी है। अदर्शनीय एटम में वह व्यवस्था पाई जाती है, जो सौर पद्धति (Solar System) के स्तर पर अरबों मील की परिधि में परिसंचरण कर रही है। फिर वह विवेक जिसका हम इंसान के रूप में अनुभव कर रहे हैं, वह अगर ब्रह्मांडीय स्तर पर संपूर्ण हालत में मौजूद हो तो इसमें अचरज की क्या बात है। इसी प्रकार हमारा ज़मीर (conscience) और हमारी प्रकृति जिस विकसित दुनिया को चाहते हैं, वह अगर ऐसी दुनिया की ओर पलटना चाहता हो, जो वास्तव में ब्रह्मांड के पर्दे के पीछे मौजूद है तो आख़िर इसमें हैरानी की क्या बात है।

(i) मनोवैज्ञानिकों का यह कहना अपनी जगह सही है कि बचपन में किसी समय ऐसी बातें दिमाग़ में पड़ जाती हैं, जो बाद में असाधारण रूप में प्रकट होती हैं, मगर इससे यह दलील देना कि इंसान की यही वह विशेषता है जिसने धर्म को पैदा किया, बिल्कुल आधारहीन है। यह एक साधारण घटना से असाधारण नतीजे निकालना है। यह एक ऐसी बात है, जैसे किसी कुम्हार को मिट्टी की मूर्ति बनाते हुए देखो तो पुकार उठो कि बस यही वह व्यक्ति है, जो ज़िंदा इंसान का रचयिता है। कुम्हार निःसंदेह मिट्टी से खिलौने बनाने वाला है, मगर यह कहना कि इस प्रकार कोई और कुम्हार था, जिसने ख़ुद इस कुम्हार को बनाया है, एक बेतुकी बात के अलावा कुछ नहीं।

आधुनिक विचार-शैली की यह सामान्य कमज़ोरी है कि वह साधारण घटना से असाधारण दलीलें देने लगती है। हालाँकि तार्किक दृष्टि से इस दलील में कोई वज़न नहीं। अगर ऐसा होता है कि एक व्यक्ति अचेतन में दबे हुए विचारों के तहत कभी 'असाधारण' बातें बड़बड़ाने लगता है तो इससे यह कहाँ साबित हो गया कि पैग़ंबरों* की ज़ुबान से ब्रह्मांड की जिस जानकारी का भेद खुला है, वह भी इसी प्रकार की बड़बड़ाहट है। पहली बात को स्वीकार करते हुए हम यह कह सकते हैं कि इससे दूसरी घटना के बारे में दलील देना एक अज्ञानात्मक और अतार्किक शैली का प्रदर्शन करना है। यह सिर्फ़ इस बात का सबूत है कि कारण बताने या स्पष्टता करने वाले के पास पैग़ंबर के असाधारण कथन को समझने के लिए कोई और कसौटी मौजूद नहीं। उसे एक ही बात मालूम थी, वह यह कि कई बार कोई व्यक्ति सपने या उन्माद या बेहोशी की हालत में कुछ ऐसी बातें ज़ुबान से निकालने लगता है, जो सामान्य रूप से होश की हालत में किसी की ज़ुबान से अदा नहीं होतीं।

* ईशदूत; ईश्वर द्वारा नियुक्त व्यक्ति, जिसने ईश्वर का संदेश लोगों तक पहुँचाया।

उसने तुरंत कह दिया कि बस यही वह चीज़ है, जो धार्मिक बातों की ज़िम्मेदार है। हालाँकि किसी के पास सच्चाई को जानने की एक ही कसौटी हो तो इससे यह साबित नहीं होता कि घटनाक्रम की सच्चाई को जानने की एक ही कसौटी होगी।

मान लीजिए कि दूसरे किसी ग्रह से ऐसे प्राणी धरती पर उतरते हैं, जो सुनते तो हैं, मगर बोलना नहीं जानते। वे सिर्फ़ सुनने की शक्ति के गुण जानते हैं, बातचीत के गुण की उन्हें कोई ख़बर नहीं। वे इंसान के वार्तालाप और बयान सुनकर यह जाँच-पड़ताल शुरू करते हैं कि 'आवाज़' क्या है और कहाँ से आती है। इस खोज के दौरान उनके सामने यह दृश्य आता है कि पेड़ की दो शाख़ें, जो आपस में मिली हुई थीं, संयोग से हवा चलती है और रगड़ से इनमें से आवाज़ निकलने लगीं, फिर जब हवा रुकी तो आवाज़ बंद हो गई। यह घटना बार-बार उनके सामने आती है। अब इनमें से एक 'दक्ष व योग्य' (skilled) ग़ौर से इसका अध्ययन करने के बाद यह घोषणा करता है कि इंसानी बातचीत का भेद मालूम हो गया। सही बात यह है कि इंसान के मुँह में नीचे और ऊपर के जबड़ों में दाँत की मौजूदगी इसका कारण है। जब नीचे और ऊपर के दाँत आपस में रगड़ खाते हैं तो इनसे आवाज़ निकलती है और इसी को बोलना कहा जाता है। दो चीज़ों की रगड़ से एक प्रकार की ध्वनि उत्पन्न होना अपने आपमें एक घटना है, मगर इस घटना से इंसान के बोलने की स्पष्टता करना उचित नहीं है। इसी प्रकार असाधारण परिस्थितियों में अचेतन से निकली हुई बातों से पैग़ंबर के कथन की स्पष्टता नहीं की जा सकती।

(ii) अचेतन मन में जो विचार दबा दिए जाते हैं, वह अधिकतर समय ऐसी अप्रिय इच्छाएँ होती हैं, जो परिवार और समाज के डर से पूरी नहीं हो सकीं। जैसे किसी के अंदर अपनी बहन या पुत्री के साथ

यौनाकर्षण की भावना उत्पन्न हो तो वह इस विचार से इसे दबा देता है कि इसका प्रकट करना बदनामी का कारण होगा, अगर ऐसा न होता तो वह शायद इसके साथ विवाह करना पसंद करता। किसी को क़त्ल करने का विचार हो तो आदमी इसे इस डर से अपने दिमाग़ में दबा देता है कि उसे जेल जाना पड़ेगा आदि-आदि। जिस प्रकार अचेतन मन में दबी हुई इच्छाएँ बहुत बार वह बुराइयाँ होती हैं, जो माहौल के डर से पूरी न हो सकीं। अब अगर किसी ऐसे व्यक्ति में मानसिक विकार (mental disorder) उत्पन्न हो और उसका अचेतन प्रकट होना शुरू हो तो इससे क्या ज़ाहिर होगा। ज़ाहिर है कि वही बुरी भावनाएँ और ग़लत इच्छाएँ उसकी ज़ुबान से निकलेंगी, जो उसके अचेतन में भरी हुई थीं। वह बुराई का पैग़ंबर होगा, भलाई का पैग़ंबर नहीं हो सकता। इसके विपरीत पैग़ंबरों की ज़ुबान से जिस धर्म का प्रकटीकरण हुआ है, वह पूर्णतः भलाई और पवित्रता है। उनका कथन और उनका जीवन भलाई और पवित्रता का इतना उच्चतम नमूना है कि पैग़ंबरों से अलग कहीं इसका उदाहरण नहीं मिलता। यही नहीं, बल्कि उनके विचारों में इतना आकर्षण होता है कि वही समाज जिसके डर से उन्होंने कभी अपने विचारों को अपने ज़ेहन में छुपा लिया था, वह उस पर दिल-ओ-जान से मुग्ध हो जाता है और सदियों पर सदियाँ गुज़र जाती हैं, फिर भी उन्हें नहीं छोड़ता।

(iii) मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से इंसान का अचेतन मन वास्तव में ख़ाली होता है। इसमें पहले से कोई चीज़ मौजूद नहीं होती, बल्कि चेतन मन के मार्ग से गुज़रकर पहुँचती है। इसका अर्थ यह है कि चेतन मन सिर्फ़ उन्हीं घटनाओं और जानकारियों का गोदाम है, जो कभी इंसान की जानकारी में आया हो, वह अज्ञात बातों का भंडार नहीं बन सकता; लेकिन यह आश्चर्यजनक बात है कि पैग़ंबरों की ज़ुबान से जिस धर्म का

ऐलान हुआ है, वह ऐसी सच्चाइयों पर आधारित है, जो सामयिक नहीं सार्वकालिक (everlasting) है। वे ऐसी बातें कहते हैं, जो न तो उन्हें पहले से मालूम थीं और न उनके समय तक पूरी मानव जाति को मालूम हो सकी थीं। अगर उन सच्चाइयों का मूल स्रोत अचेतन होता तो वह बिल्कुल भी ऐसी अज्ञात सच्चाइयों को बयान नहीं कर सकता था।

पैग़ंबरों की ज़ुबान से जिस धर्म का इज़्हार हुआ है, उसमें अंतरिक्ष विज्ञान, भौतिकी, जैविकी, मनोविज्ञान, इतिहास, नागरिक शास्त्र, राजनीति शास्त्र, समाज शास्त्र अर्थात् सभी विद्याएँ किसी-न-किसी दृष्टि से स्पर्श होती हैं। ऐसा सार्वभौम कथन अचेतन तो एक तरफ़ चेतन के तहत भी अब तक किसी इंसान द्वारा व्यक्त नहीं हुआ, जिसमें ग़लत फ़ैसले, कच्चे अनुमान, असत्य बयानबाज़ी और कमज़ोर व अपूर्ण दलीलें मौजूद न हों; मगर ईश्वरीय कथन आश्चर्यजनक रूप से इस प्रकार की समस्त कमियों से बिल्कुल शुद्ध है। वह अपने निमंत्रण, अपनी तार्किकता और अपने निर्णयों में समस्त मानवीय ज्ञानों को छूता है, मगर सैकड़ों-हज़ारों वर्ष गुज़र जाते हैं, अगली नस्लों की तहक़ीक़ पिछली नस्लों के विचारों को बिल्कुल आधारहीन सिद्ध कर देती है, मगर धर्म की सच्चाई फिर भी बाक़ी रहती है। आज तक सही मायनों में इसके अंदर कोई ग़लती चिह्नित न हो सकी। अगर किसी ने ऐसा साहस किया तो स्वयं ही उसका कार्य भ्रष्ट साबित हुआ।

मैं एक पुस्तक का उदाहरण देता हूँ, जिसमें एक अंतरिक्ष वैज्ञानिक ने अत्यंत विश्वास के साथ इस बात का इज़्हार किया है कि उसने क़ुरआन में एक कलात्मक ग़लती खोज निकाली है। जेम्स हैनरी ब्रीस्टेड ने लिखा है—

“पश्चिमी एशिया के समुदायों में लंबे समय की परंपरा और विशेष रूप से इस्लाम के प्रभुत्व ने चंद्र कैलेंडर (lunar calendar) को

दुनिया भर में प्रचलित कर दिया। सौर व चंद्र वर्ष के बीच के अंतर को हज़रत मुहम्मद (पैग़ंबर-ए-इस्लाम) ऐसी व्यर्थ सीमा तक ले गए, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। वह कैलेंडर की जटिलताओं की अवस्था से इतना अधिक बेख़बर थे कि क़ुरआन में नियमानुसार उन्होंने लौंद के महीने (intercalary month) को निषिद्ध घोषित कर दिया। 354 दिनों का तथाकथित चंद्र वर्ष सौर वर्ष से 11 दिन छोटा होता है, इसलिए वह अपने चक्कर में हर 33 वर्ष में एक वर्ष और हर एक शताब्दी में 3 वर्ष अधिक हो जाता है। एक मासिक धार्मिक क्रिया, जैसे रमज़ान अगर इस समय जून में हो तो 6 वर्ष बाद वह अप्रैल में आएगा।

1935 में हिजरत* को 1313 वर्ष गुज़र चुके हैं। तब से हिजरी इस्लामी वर्ष शुरू हुआ। हमारी एक शताब्दी मुसलमानों के चन्द्र कैलेंडर के हिसाब से तक़रीबन 103 साल की होती हैं। हमारे सामान्य सौर वर्ष की दृष्टि से जब 1313 वर्ष होते हैं तो मुस्लिम वर्ष की दृष्टि से लगभग 41 वर्ष अधिक हो चुके होते हैं। इस प्रकार मुसलमानों का हिजरी वर्ष यह लेख लिखते समय 1354 तक पहुँच चुका है अर्थात् सौर वर्ष की दृष्टि से 1313 वर्षों में 41 वर्ष और अधिक। पूर्वी देशों के यहूदी चर्च ने इस प्रकार की विसंगतियों (absurdity) को समाप्त करके लौंद या महीनों में वृद्धि का तरीक़ा (intercalation) धारण किया और इस प्रकार अपने चंद्र कलैंडर को सौर वर्ष के ढाँचे के अनुसार बना लिया। इस आधार पर समस्त पश्चिमी एशिया अब तक इस अति प्राचीन शैली चंद्र कलैंडर की तकलीफ़ को सहन कर रहा है।”

(Time and It’s Mysteries, New York. 1962, p.56)

* पैग़ंबर और उनके साथियों के मक्का से मदीना की ओर किए जाने वाले प्रवास को हिजरत कहा जाता है। इसी दिन से ‘इस्लामिक कैलेंडर’ आरंभ होता है, जिसे ‘हिजरी’ साल में मापा जाता है।

यहाँ मुझे सौर कैलेंडर और चंद्र कैलेंडर के फ़र्क़ पर कोई बहस नहीं करनी है। मैं सिर्फ़ यह कहना चाहता हूँ कि उपरोक्त कथन में जेम्स हैनरी ब्रीस्टेड ने जिस घटना को पैग़ंबर-ए-इस्लाम से जोड़कर 'अति निरर्थक बेख़बरी' का आरोप लगाया है, वह बात अपने आपमें सही नहीं। क़ुरआन में जिस चीज़ को मना किया गया है, वह 'कबीसा' (लौंद) के महीने ठहराने की नहीं, बल्कि 'नसई' है (9:37)। अरबी भाषा के इस शब्द नसई का अर्थ विलंब है अर्थात् आगे-पीछे करना, हटाना। जैसे तालाब पर एक जानवर पानी पी रहा है और आपने इसे हटाकर अपने जानवर को तालाब पर खड़ा कर दिया कि पहले आपका जानवर पानी पी ले, इसके बाद दूसरा पिए, तो इस तरह के हटाने को कहेंगे— नसा-अ-अलदाब्बाह।

हज़रत इब्राहीम द्वारा अरब में जो तरीक़े प्रचलन में लाए गए थे, उनमें से 12 महीनों में से 4 महीने 'हुरमत'—विशेष शिष्टता व सम्मान के महीने हैं। यह महीने 'ज़ुलक़ादह', 'ज़िलहिज्ज', 'मुहर्रम' और 'रजब' थे। इन महीनों में रक्तपात, युद्ध व संहार पूर्णतः बंद कर दिया जाता था। लोग हज* व उमरह** और व्यापार के लिए शांति व सुरक्षा के साथ स्वतंत्रतापूर्वक यात्रा कर सकते थे। बाद में अरब क़बीलों ने इस क़ानून की पाबंदी से बचने के लिए 'नसई' की रस्म निकाली यानी जब किसी शक्तिशाली क़बीले की इच्छा 'मुहर्रम' महीने में जंग करने की हुई तो उसके सरदार ने एलान करके मुहर्रम महीने को 'अशहरू हुरुम' से निकालकर इसके स्थान पर 'सफ़र' महीने से बदल दिया। यही सम्मानित महीनों को आगे-पीछे करने की रस्म थी, जिसे नसई

---

* हज : यह इस्लाम धर्म के पाँच मूल स्तंभों में से एक है, जिसकी अदायगी अदायगी प्रतिवर्ष मक्का शहर में की जाती है।

** उमरह : वार्षिक तारीख़ को छोड़कर साल में कभी भी किया जाने वाला हज।

कहा जाता था और इसी के संबंध में क़ुरआन में कहा गया है कि यह 'ज़ियादातुन फ़िल कुफ़्र' (9:37) यानी कुफ़्र में बढ़ोतरी है।

कुछ लोगों ने लिखा है कि अरबों में 'लौंद' का भी एक प्रकार का रिवाज था यानी वे महीनों की संख्या बदल देते थे। जैसे 12 महीनों के 14 महीने बना लिये, मगर क़ुरआन के एक व्याख्याकार के अनुसार—

"कुछ क़ौमें, जो अपने महीने का हिसाब दुरुस्त रखने के लिए लौंद का महीना हर तीसरे वर्ष बढ़ाती हैं, वह 'नसई' में दाख़िल नहीं।"

मालूम हुआ कि अज्ञानता के दौर में भी पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने अज्ञानता की बात नहीं कही, हालाँकि उनके शब्द मात्र चेतन या अचेतन से निकले हुए होते तो इस प्रकार की अज्ञानता का प्रकट होना अनिवार्य था (अगले अध्यायों में विस्तृत उदाहरण आ रहे हैं)।

(3) इतिहास या सामाजिक अध्ययन के हवाले से दलील देने वालों की बुनियादी ग़लती यह है कि वे सही दिशा से धर्म का अध्ययन नहीं करते, इसलिए पूरा धर्म उन्हें असलियत के विरुद्ध एक अन्य रूप में दिखाई देने लगता है। उनकी मिसाल ऐसी है, जैसे एक चौकोर चीज़ को कोई व्यक्ति तिरछा खड़ा होकर देखे। ज़ाहिर है कि ऐसे व्यक्ति को वही चीज़, जो वास्तव में चौकोर है, तिकोनी दिखाई दे सकती है।

इन लोगों की ग़लती यह है कि वे धर्म का अध्ययन वस्तुनिष्ठ समस्या (objective problem) के रूप में करते हैं* यानी प्रत्यक्ष रूप से धर्म के नाम से जो कुछ भी कभी इतिहास में पाया गया है, उन सबको धर्म का अंश समझकर समान हैसियत से एकत्र कर लेना और उनके प्रकाश में धर्म के विषय में एक मत स्थापित करना। इसके कारण पहले ही क़दम पर पोज़ीशन ग़लत हो जाती है। इसका नतीजा यह होता है

---

* J. Huxly, Man in the Modern World, p.129

कि धर्म इनकी नज़रों में मात्र एक सामाजिक व सांस्कृतिक रीति-रिवाज बन जाता है, न कि किसी 'सच्चाई की खोज'। एक खोज अपने आपमें आइडियल होती है और धर्म को भी अपने आइडियल की रोशनी में आँका जाएगा, न कि आम समाजी रीति-रिवाज से। इसके विपरीत जो चीज़ सामाजिक अमल की हैसियत रखती हो, उसका अपना कोई आइडियल नहीं होता, बल्कि समाज का अमल ही उसकी हक़ीक़त को निर्धारित करता है।

कोई चीज़ जो सामाजिक नियमों या सामाजिक परंपराओं की हैसियत रखती हो, उसकी यह हैसियत सिर्फ़ उस समय तक स्थिर रहती है, जब तक समाज ने वस्तुतः उसे यह हैसियत दे रखी हो। अगर समाज इसे छोड़कर कोई और तरीक़ा अपना ले तो फिर वह एक ऐतिहासिक चीज़ हो जाती है और सामाजिक परंपराओं की हैसियत से उसका कोई मुक़ाम बाक़ी नहीं रहता, मगर धर्म का मामला इससे भिन्न है। धर्म का अध्ययन हम इस प्रकार नहीं कर सकते, जिस प्रकार हम सवारी, लिबास और मकान का अध्ययन करते हैं, क्योंकि धर्म अपनी हैसियत में एक वास्तविकता है, जिसे समाज अपने इरादे से स्वीकार या अस्वीकार करता है या स्वीकार करता है तो अपूर्ण रूप में। इस कारण धर्म अपनी सैद्धांतिक हैसियत में तो हमेशा एक-सा रहता है, मगर समाज के अंदर पारंपरिक बनावट की दृष्टि से इसके रूप भिन्न हो जाते हैं। इसलिए समाज के अंदर परंपरागत धर्मों को एक समान सूची में बाँधकर हम धर्म को नहीं समझ सकते।

उदाहरण के लिए, लोकतंत्र को लीजिए। लोकतंत्र एक विशिष्ट राजनीतिक मापदंड का नाम है और किसी हुकूमत को इस मापदंड के प्रकाश में ही लोकतांत्रिक या अलोकतांत्रिक कहा जा सकता है यानी लोकतंत्र को अपने मापदंड की धारा से समस्त देशों को देखा जाएगा और

सिर्फ़ उसी व्यवहार को लोकतांत्रिक क़रार दिया जाएगा, जो वास्तव में लोकतांत्रिक हो। इसके विपरीत अगर लोकतंत्र का अध्ययन इस प्रकार किया जाए कि हर वह देश जिसने अपने नाम के साथ 'लोकतांत्रिक' का शब्द लगा रखा है, उसे वास्तव में लोकतांत्रिक मानकर लोकतंत्र को समझने का प्रयास किया तो फिर लोकतंत्र एक अर्थहीन शब्द बन जाएगा, क्योंकि ऐसी स्थिति में अमेरिका का लोकतंत्र चीन के लोकतंत्र से भिन्न होगा। इंग्लैंड का लोकतंत्र मिस्र के लोकतंत्र से टकराएगा, भारत के लोकतंत्र का पाकिस्तान के लोकतंत्र से कोई जोड़ नहीं होगा। इसके बाद जब इन सारे अवलोकनों को विकासीय ढाँचे में रखकर देखा जाएगा तो वह और भी निर्थरक हो जाएगा, क्योंकि फ्रांस जो कि लोकतंत्र का जन्मस्थान है, उसका अध्ययन बताएगा कि लोकतंत्र अपने बाद के विकासीय चरणों के अनुसार नाम है 'जनरल डैगाल' (1890-1970) की फ़ौजी तानाशाही का।

इस अध्ययन-शैली का परिणाम यह है कि धर्म के लिए ईश्वर की ज़रूरत बाक़ी ही न रही। धर्म के 'इतिहास' में इसका उदाहरण मौजूद है कि धर्म ईश्वर के बग़ैर भी हो सकता है। यह उदाहरण बौद्ध धर्म का है, जो 'धर्म' होने के बाद भी ईश्वर के विचार से ख़ाली है। इसलिए आज बहुत से लोग यह कहने लगे हैं कि धर्म का अध्ययन ईश्वर से अलग करके करना चाहिए। अगर इस ज़रूरत को मान लिया जाए कि लोगों के भीतर नैतिकता और व्यवस्था पैदा करने के लिए धार्मिक विशेषता की कोई चीज़ आवश्यक है तो इस उद्देश्य के लिए अनिवार्य रूप से ईश्वर को मानना आवश्यक नहीं, बग़ैर ईश्वर का धर्म भी इस आवश्यकता को पूरी कर सकता है। अतः यह लोग 'बौद्ध धर्म' के संदर्भ से यह कहते हैं कि अब वर्तमान विकसित दौर में इस प्रकार का धार्मिक ढाँचा समाज के लिए अधिक उपयुक्त हैं। इन लोगों के निकट आधुनिक युग का ईश्वर

स्वयं समाज और इसके राजनीतिक व आर्थिक उद्देश्य हैं। इस ईश्वर का पैग़ंबर संसद है, जिसके द्वारा वह अपनी इच्छा से इंसानों को अवगत कराता है और इसके पूजास्थल मस्जिद और चर्च नहीं, बल्कि डैम और कारख़ाने आदि-आदि हैं। (देखें : जूलियन हक्सले की पुस्तक 'Religion Without Revelation')

धर्म को ईश्वर की स्वीकृति से ईश्वर के इनकार तक पहुँचाने में तथाकथित विकासीय अध्ययन (developmental studies) का भी दख़ल है। यह लोग यह करते हैं कि पहले उन समस्त चीज़ों को इकट्ठा कर लेते हैं, जो कभी धर्म के नाम से जुड़ी रही हैं और उसके बाद अपनी इच्छानुसार इनके बीच एक विकासीय क्रम स्थापित कर लेते हैं जिसमें ऐसे समस्त पक्षों को एक सिरे से नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है, जिससे इनका कल्पित विकासीय क्रम संदिग्ध हो सकता हो, जैसे मानव विज्ञान (anthropology) और सामाजिक विज्ञान (sociology) के विशेषज्ञों ने ज़बरदस्त अध्ययन और शोध के बाद यह 'खोज' की है कि ईश्वर का विचार बहुदेववाद से शुरू हुआ और क्रमवार प्रगति करते-करते एक ईश्वर तक पहुँचा, लेकिन यह प्रगति इनके निकट उल्टी हुई है, क्योंकि ईश्वर की कल्पना ने एक ईश्वर का रूप धारण करके अपने आपको टकराव में ग्रस्त कर लिया है। 'बहुदेववाद' का विचार कम-से-कम अपने अंदर यह सामर्थ्य रखता था कि विभिन्न देवी-देवताओं को मानने वाले एक-दूसरे को स्वीकार करते हुए आपस में मिल-जुलकर रहें; मगर 'एक ईश्वर' की आस्था ने प्राकृतिक रूप से समस्त दूसरे देवी-देवताओं और उनके मानने वालों को असत्य ठहराया और 'श्रेष्ठ धर्म' (superior religion) के विचार को पैदा किया, जिसके कारण समुदायों और दलों में कभी समाप्त न होने वाली लड़ाइयाँ शुरू हो गईं। इस प्रकार ईश्वर के विचार

ने ग़लत दिशा में विकास करके स्वयं ही अपने लिए मौत का सामान प्रस्तुत कर दिया है, क्योंकि विकास का क़ानून यही है।

मगर इस विकासीय क्रम में स्पष्ट रूप से वास्तविक घटना को नज़रअंदाज़ कर दिया गया है, क्योंकि ज्ञात इतिहास के अनुसार सबसे पहले पैग़ंबर 'नूह' (Noah) थे और इनकी दावत* के बारे में साबित है कि वह एक ईश्वर की दावत थी। इसके अतिरिक्त बहुदेववाद (polytheism) का अर्थ पूर्णतः बहु यानी अनेक नहीं है। कभी कोई क़ौम इन अर्थों में बहुदेववादी नहीं रही है कि वह बिल्कुल समान दशा के कई भगवानों को मानती हो। इसके विपरीत बहुदेववाद का अर्थ एक बड़े ईश्वर को मानकर कुछ इसके विशेष प्रिय निकटवर्तियों का इक़रार करना है, जो सहायक देवी-देवताओं के रूप में काम करते हैं। बहुदेववाद के साथ हमेशा एक बड़ा ईश्वर और उसकी शक्ति या सत्ता में भागीदार छोटे ईश्वर का विचार पाया जाता है। ऐसी स्थिति में 'विकासीय धर्म' एक तर्कहीन आस्था के अतिरिक्त और क्या है।

मार्क्सवादी इतिहास का सिद्धांत और भी बड़ा झूठ है। यह सिद्धांत इस परिकल्पना पर आधारित है कि आर्थिक परिस्थितियाँ ही वह असल कारक हैं, जो इंसान का निर्माण व गठन करती हैं। धर्म जिस ज़माने में पैदा हुआ, वह सामंतवादी और और पूँजीवादी व्यवस्था का ज़माना था। अब चूँकि सामंतवादी और पूँजीवादी व्यवस्था शोषण और लूट-खसोट की व्यवस्था है, इसलिए इसके बीच पैदा होने वाले आचरण और धार्मिक विचार भी निश्चित रूप से अपने वातावरण का ही प्रतिबिंब होंगे। वह लूट-खसोट के ही सिद्धांत होंगे, मगर यह सिद्धांत ज्ञानात्मक हैसियत से कोई वज़न नहीं रखता है और न अनुभव से इसकी पुष्टि होती है।

---

* ईश्वर का संदेश लोगों तक पहुँचाना।

यह दृष्टिकोण इंसानी इरादे को पूरी तरह से नकार देता है और उसे सिर्फ़ आर्थिक परिस्थिति की पैदावार क़रार देता है। इसका अर्थ यह है कि आदमी की अपनी कोई हस्ती नहीं। जिस प्रकार साबुन के कारख़ानों में साबुन ढलते हैं, उसी प्रकार आदमी भी अपने वातावरण के कारख़ाने में ढलता है। वह अलग से सोचकर कोई काम नहीं करता, बल्कि जो कुछ करता है, उसी के अनुसार करता है। अगर यह सच्चाई है तो मार्क्स भी स्वयं 'पूँजीवादी व्यवस्था' के अंदर पैदा हुआ था। उसके लिए किस प्रकार संभव हुआ कि वह अपने समय की आर्थिक परिस्थिति के विरुद्ध सोच सके? क्या उसने धरती का अध्ययन चाँद पर जाकर किया था? अगर धर्म को जन्म देने वाली चीज़ समय की आर्थिक व्यवस्था है तो आख़िर मार्क्सवाद भी समय की आर्थिक व्यवस्था की पैदावार क्यों नहीं है? धर्म की जो हैसियत मार्क्सवाद को स्वीकार नहीं है, वही हैसियत उसके अपने लिए किस प्रकार जायज़ होगी...? हक़ीक़त यह है कि यह सिद्धांत या दृष्टिकोण उत्तेजनाजनक सीमा तक झूठा है, इसके पीछे कोई भी ज्ञानात्मक व बौद्धिक तर्क मौजूद नहीं।

हक़ीक़त यह है कि धर्म के विरुद्ध आधुनिक युग का पूरा तर्कवाद एक प्रकार का ज्ञानात्मक कुतर्कवाद (scientific sophism) है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। इस तथाकथित तर्कवाद की सच्चाई सिर्फ़ यह है कि 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानुमती ने कुनबा जोड़ा'। यह सही है कि घटनाओं के अध्ययन के लिए जो 'ज्ञानात्मक पद्धति' धारण की जाती है, वह ज्ञानात्मक पद्धति मात्र एक पद्धति होने के कारण सही नतीजों तक नहीं पहुँचा सकती। इसी के साथ दूसरे आवश्यक पक्षों का आदर करना अनिवार्य है, जैसे अधूरी और एकपक्षीय जानकारियों पर अगर ज्ञानात्मक पद्धति को आज़माया जाए तो वह प्रत्यक्ष होने के बाद भी अपूर्ण और ग़लत नतीजों तक ही पहुँचाएगी।

जनवरी, 1964 के पहले सप्ताह में नई दिल्ली में प्राच्यविदों (orientalists) एशियाई विद्याओं के माहिर ग़ैर-एशियाई विद्वान की एक अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस संपन्न हुई, जिसमें 1200 विद्वान जो पूर्वी विद्याओं में दक्ष थे, सम्मिलित हुए। इस अवसर पर एक महाशय ने एक लेख पढ़ा जिसमें कई मुस्लिम स्मारकों के विषय में दावा किया गया था कि वह मुसलमानों के बनवाए हुए नहीं हैं, जैसे क़ुतुबमीनार, जो क़ुतुबुद्दीन ऐबक़ से संबंधित है। वह वास्तव में 'विष्णु ध्वज' है, जिसे अब से 2300 वर्ष पहले 'समुद्रगुप्त' ने बनवाया था। बाद के मुस्लिम इतिहासकारों ने इसे ग़लत रूप से क़ुतुबमीनार के नाम से प्रस्तुत किया। इसकी दलील यह है कि क़ुतुबमीनार में ऐसे पत्थर लगे हुए हैं, जो बहुत पुराने हैं और क़ुतुबुद्दीन ऐबक़ से बहुत पहले तराशे गए थे।

प्रत्यक्ष में यह एक ज्ञानात्मक दलील (scientific argument) देना है, क्योंकि यह एक सच्चाई है कि क़ुतुबमीनार में ऐसे कुछ पत्थर मौजूद हैं, मगर क़ुतुबमीनार के अध्ययन के लिए सिर्फ़ इसके पुराने पत्थरों का हवाला देने से ज्ञानात्मक दलील का हक़ अदा नहीं होता है। इसी के साथ और बहुत से पहलुओं को सामने रखना भी आवश्यक है और जब हम ऐसा करते हैं तो मालूम होता है कि यह कारणता (causality) क़ुतुबमीनार पर पूरी तरह चस्पाँ नहीं होती। इसके बजाय यह दूसरी कारणता अनुमानतः ठीक नज़र आती है कि इसके पुराने पत्थर वास्तव में पुरानी इमारतों के खंडहर से प्राप्त किए गए, जिस प्रकार दूसरी प्राचीन पत्थर की इमारतों में अधिकता से इसके उदाहरण मौजूद हैं। फिर जब इस दूसरी कारणता को क़ुतुबमीनार की संरचना, इसके निर्माणीय मानचित्र, प्राचीन पत्थरों की स्थापत्य शैली, मीनार के साथ अधूरी मस्जिद और दूसरी मीनार के शेष अवशेष और यह कि ऐतिहासिक साक्ष्यों के साथ मिलाकर देखें तो सिद्ध हो जाता

है कि यह दूसरा कारण ही सही है और पहला कारण एक भ्रांति के सिवा कुछ भी नहीं।

धर्म-विरोधियों का मुक़दमा भी बिल्कुल ऐसा ही है। जिस प्रकार उपरोक्त कथित उदाहरण में चंद पत्थरों को एक ख़ास रंग देकर समझ लिया गया कि ज्ञानात्मक दलीलें प्राप्त हो गई हैं, इसी प्रकार कुछ आंशिक और अधिकांश समय असंबद्ध घटनाओं को ग़लत दिशा से पेश करके यह समझ लिया गया है कि ज्ञानात्मक अध्ययन पद्धति (scientific reasoning) ने धर्म का खंडन कर दिया। हालाँकि घटना के समस्त अंशों की सही दिशा से देखा जाए तो बिल्कुल दूसरा नतीजा निकलता है।

हक़ीक़त यह है कि धर्म की सच्चाई का यह स्वतः ही एक पर्याप्त सबूत है कि इसे छोड़ने के बाद बुद्धिजीवी लोग भी अललटप बातें करने लगते हैं। इसके बाद आदमी के पास मामलों या समस्याओं पर चिंतन-मनन करने के लिए कोई भी आधार शेष नहीं रहता। धर्म-विरोधियों की सूची में जो नाम हैं, वह अधिकतर अति बुद्धिमान और विद्वान लोग हैं, जो बेहतरीन दिमाग़ और समय की उच्च विद्याओं से सुसज्जित होकर इस मैदान में उतरते हैं, मगर इन बुद्धिजीवियों ने ऐसी-ऐसी झूठी बातें लिखी हैं कि समझ में नहीं आता कि यह सब लिखते समय इनका दिमाग़ कहाँ चला गया था। यह सारा साहित्य अनिश्चितता, टकराव, स्वीकार्यता से बे-ख़बरी और अललटप दलीलों से भरा हुआ है। खुली हुई सच्चाइयों की अनदेखी करना और मामूली तिनके के सहारे दावों के पुल खड़े करना, यह इनका कुल कारनामा है। यह स्थिति निःसंदेह इस बात का पक्का सबूत है कि इन लोगों का मुक़दमा सही नहीं, क्योंकि इनके बयान और दलील में जो ख़राबियाँ हैं, वह सिर्फ़ ग़लत मुक़दमे का सबूत हैं और सही मुक़दमे में कभी यह चीज़ें नहीं पाई जा सकतीं।

धर्म की सत्यता और धर्म-विरोधियों के दृष्टिकोण की ग़लती इससे भी स्पष्ट है कि धर्म को मानकर जीवन और ब्रह्मांड का जो नक़्शा बनता है, वह एक अति सुंदर व मनोहर नक़्शा है। वह इंसान के उच्च विचारों के इसी प्रकार अनुकूल है, जैसे भौतिक ब्रह्मांड गणितीय कसौटियों (mathematical formulas) के यथानुरूप है। इसके विपरीत धर्म-विरोधी फ़लसफ़े के तहत जो नक़्शा बनता है, वह मानव-बुद्धि से बिल्कुल अलग है। यहाँ मैं बर्ट्रेंड रसेल का उद्धरण अनुकरण करूँगा—

"इंसान ऐसे कारणों की पैदावार है, जिसका पहले से सोचा-समझा कोई उद्देश्य नहीं। इसका आरंभ, इसकी उन्नति, इसकी कामनाएँ, इसकी शंकाएँ, इसकी मुहब्बत और इसकी आस्थाएँ सब एटमों के संयोगी क्रम का नतीजा है। इसके जीवन का अंत कब्र है और इसके बाद कोई चीज़ भी इसे जीवन प्रदान नहीं कर सकती। युगों-युगों के संघर्ष, समस्त बलिदानों, उत्कृष्ट संवेदनाओं और बुद्धिमत्ता के रोशन कारनामे, सब सौर पद्धति के ख़ात्मे के साथ नष्ट हो जाने वाली चीज़ें हैं। इंसानी सफलताओं, संपन्नताओं का पूरा महल अनिवार्य रूप से ब्रह्मांड के मलबे के नीचे दबकर रह जाएगा। यह बातें अगर पूर्ण रूप से निश्चित नहीं तो निश्चितता के इतनी नज़दीक (so nearly certain) हैं कि जो फ़लसफ़ा इससे इनकार करेगा, वह बाक़ी नहीं रह सकता।"

(Limitation of Science, p.133)

यह उद्धरण जैसे अधार्मिक भौतिक चिंतन का सारांश है। इसके अनुसार सारा जीवन न सिर्फ़ अति अंधकारमय नज़र आता है, बल्कि अगर जीवन की भौतिक व्याख्या को लिया जाए तो भलाई व बुराई की कोई निश्चित कसौटी बाक़ी नहीं रहती। इसकी धारा से इंसानों के ऊपर बम गिराना कोई ज़ालिमाना कार्य नहीं, क्योंकि इंसानों को एक-न-एक दिन तो मरना ही है। इसके विपरीत धार्मिक चिंतन में आशा की रोशनी है। इसमें जीवन और मृत्यु दोनों अर्थपूर्ण नज़र आने लगते हैं। इसमें

हमारी मन की माँगें अपना स्थान पा लेती हैं। एक विचार के गणितीय ढाँचे में फिट हो जाने के बाद अगर वैज्ञानिक संतुष्ट हो जाता है कि उसने सच्चाई को पा लिया तो धार्मिक विचार का इंसानी बुद्धि में पूरी तरह बैठ जाना निश्चित रूप से इस बात का सबूत है कि यही वह सच्चाई है, जिसे इंसान का स्वभाव खोज रहा था। इसके बाद हमारे पास इसके इनकार के लिए कोई वास्तविक आधार बाक़ी नहीं रहता।

यहाँ मैं एक अमेरिकी गणितज्ञ अर्ल चेस्टर रेक्स के शब्दों को अनुकरण करूँगा—

"मैं विज्ञान के इस मान्यता-प्राप्त नियम का प्रयोग करता हूँ, जो दो या अधिक भिन्न विचारों में से किसी एक का चुनाव करने के लिए काम में लाया जाता है। इस नियम के अनुसार उस विचार को धारण कर लिया जाता है, जो स्पर्धा में बड़े साधारण तरीक़े से समस्त विवादित समस्याओं का स्पष्टीकरण कर दे। बहुत समय हुआ, जब यही नियम 'टॉलेमी के सिद्धांत' (Ptolemaic Theory) और 'कॉपरनिकस के सिद्धांत' के बीच फ़ैसला करने के लिए प्रयोग किया गया। टॉलेमी का दावा था कि धरती सौर पद्धति का केंद्र है। इसके विपरीत कॉपरनिकस का कहना था कि सूर्य सौर मंडल का केंद्र है। टॉलेमी का सिद्धांत इतना जटिल और उलझा हुआ था कि धरती की केंद्रीयता का सिद्धांत रद्द कर दिया गया।" (The Evidence of God, p.179)

मैं यह मानता हूँ कि मेरी यह तार्किकता बहुत से लोगों के लिए पर्याप्त नहीं होगी। इनकी भौतिक बुद्धि के चौखटे में किसी प्रकार ईश्वर और धर्म की बात नहीं बैठेगी, मगर जो चीज़ मुझे संतुष्ट करती है, वह यह कि इन लोगों की यह असंतुष्टि वास्तव में धर्म के पक्ष में तार्किकता की कमी के कारण नहीं है, बल्कि इसका कारण इनका वह पक्षपाती दिमाग़ है, जो धार्मिक तर्कवाद को स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं

होता। जेम्स जींज़ ने अपनी पुस्तक 'मिस्टीरियस यूनिवर्स' के अंत में बहुत ही सही लिखा है—

"हमारे आधुनिक विद्वान घटनाओं की भौतिक कारणता के पक्ष में एक प्रकार का पूर्वाग्रह (bias) रखते हैं।"

(Mysterious Universe, p.189)

व्हिटकर चैंबर्स ने अपनी पुस्तक 'विटनेस' में अपनी एक घटना का वर्णन किया है, जो निःसंदेह उसके जीवन के लिए एक निर्णायक स्थिति (turning point) बन सकती है। वह अपनी छोटी बच्ची की ओर देख रहा था कि उसकी नज़र बच्ची के कान पर जा पड़ी और अविवेकी रूप से वह उसकी बनावट की ओर आकर्षित हो गया। उसने अपने मन में सोचा— 'यह कितनी असंभव बात है कि ऐसी जटिल और कोमल चीज़ मात्र संयोग से अस्तित्व में आ जाए! निश्चय ही यह पहले सोचे-समझे नक़्शे के तहत संभव हुई होगी,' मगर जल्द ही उसने इस विचार को अपने दिमाग़ से निकाल दिया, क्योंकि उसे अहसास हुआ कि अगर वह इसे एक योजना मान ले तो इसका तार्किक परिणाम यह होगा कि उसे योजना बनाने वाले (ईश्वर) को भी मानना होगा और यह एक ऐसा विचार था, जिसे स्वीकार करने के लिए उसका दिमाग़ तैयार नहीं था।

इस घटना का वर्णन करते हुए थॉमस डेविड पार्क्स ने लिखा है—

"मैं अपने प्रोफ़ेसरों और रिसर्च के सिलसिले में अपने सहयोगियों में से बहुत से वैज्ञानिकों के बारे में जानता हूँ कि रसायन विज्ञान और भौतिक विज्ञान के अध्ययन और परीक्षण के दौरान उन्हें भी अनेक बार इस प्रकार की अनुभूतियों से दो चार होना पड़ा।"

(The Evidence of God in an Expending Universe, p.73-74)

विकास के सिद्धांत (Theory of Evolution) की सच्चाई पर वर्तमान युग के 'वैज्ञानिक' सहमत हो चुके हैं। विकास की कल्पना एक

ओर समस्त ज्ञानात्मक विभागों पर छाती जा रही है। वह हर समस्या जिसे समझने के लिए ईश्वर की ज़रूरत थी, उसकी जगह निःसंकोच विकास का एक सुंदर बुत बनाकर रख दिया गया है; मगर दूसरी ओर ऑर्गेनिक विकास (organic evolution) का सिद्धांत, जिससे समस्त विकासीय विचार ग्रहण किए गए हैं, अब तक तर्कहीन हैं। यहाँ तक कि कुछ विद्वानों से स्पष्ट रूप से कह दिया कि इस विचार को हम सिर्फ़ इसलिए मानते हैं कि इसका कोई बदल हमारे पास मौजूद नहीं है। सर आर्थर कीथ ने 1953 में कहा था—

"Evolution is unproved and unprovable. We believe it only because the only alternative is special creation and that is unthinkable."

"विकास एक अप्रमाणित सिद्धांत है और इसे सिद्ध भी नहीं किया जा सकता। हम सिर्फ़ इस पर इसलिए विश्वास करते हैं कि इसका अकेला बदल उत्पत्ति (Theory of Creation) पर आस्था है, जो वैज्ञानिक रूप से अबूझ है।" (Islamic Thoughts, Dec. 1961)

जैसे वैज्ञानिक विकास के सिद्धांत की सत्यता पर सिर्फ़ इसलिए सहमत हो गए हैं कि अगर वे इसे छोड़ दें तो अनिवार्यतः इन्हें ईश्वर के विचार पर ईमान लाना पड़ेगा।

ज़ाहिर है कि जो लोग भौतिक व्याख्या-शैली के हक़ में इस प्रकार का पक्षपात रखते हों, वे अति स्पष्ट घटनाओं से भी कोई सबक़ नहीं ले सकते थे और मैं मानता हूँ कि ऐसे लोगों को संतुष्ट करना मेरे वश से बाहर है।

इस पक्षपात का भी एक विशेष कारण है। यहाँ मैं एक अमेरिकी भौतिक विज्ञानी जॉर्ज हर्बर्ट ब्लॉट के शब्दों को अनुकरण करूँगा—

"ईशभक्ति का औचित्य और ईश्वर के इनकार का फुसफुसापन ख़ुद ही एक आदमी के लिए व्यवहारतः ईशभक्ति धारण करने का सबब नहीं बन सकता। लोगों के दिल में यह संदेह छुपा हुआ है कि ईश्वर को मानने के बाद आज़ादी की समाप्ति हो जाएगी। वह विद्वान जो बौद्धिक स्वतंत्रता (intellectual liberty) को दिल-ओ-जान से पसंद करते हैं, वह स्वतंत्रता की सीमितताओं की कोई भी कल्पना इनके लिए डरावनी है।" (The Evidence of God, p.130)

अतः जूलियन हक्सले ने पैग़ंबरी की कल्पना को 'श्रेष्ठता का असहनीय प्रदर्शन' (intolerable demonstration of superiority) क़रार दिया है, क्योंकि किसी पैग़ंबर को मानने का अर्थ यह है कि उसे यह हैसियत दी जाए कि उसकी बात ईश्वर की बात है और उसे अधिकार है कि वह जो कुछ कहे, सारे लोग उसे स्वीकार कर लें; लेकिन जब इंसान की हैसियत यही है कि वह उत्पत्तिकर्ता नहीं उत्पत्ति है; वह ईश्वर नहीं, बल्कि ईश्वर का बंदा है तो इस सच्ची बात को मनगढ़ंत कल्पनाओं के आधार पर समाप्त नहीं किया जा सकता। हम सच्चाई को बदल नहीं सकते। हम सिर्फ़ उसकी स्वीकृति कर सकते हैं। अब अगर शतुर्मुर्ग़ का अंजाम हम अपने लिए पसंद नहीं करते तो हमारे लिए सही बुद्धिमानी की बात यह है कि जो कुछ है, उसे मान लें; न यह कि जो कुछ है, उसका इनकार कर दें। सच्चाई का इनकार करके आदमी सिर्फ़ अपना नुक़सान करता है, वह सच्चाई का कुछ नहीं बिगाड़ता।

प्रमाणित करने की पद्धति

धर्म के विरुद्ध आधुनिक युग का जो मुक़दमा है, वह वास्तव में प्रमाणित करने या तर्कवाद की पद्धति का मुक़दमा है यानी इसका अर्थ यह है की ज्ञान की प्रगति ने अध्ययन का जो उच्च और विकसित तरीक़ा मालूम किया है, धर्म के दावे और आस्था उस पर पूरे नहीं उतरते। यह आधुनिक तरीक़ा अवलोकन और अनुभव के द्वारा मालूम करने का तरीक़ा है। अब चूँकि धर्म की आस्थाएँ इंद्रियों से अलग संसार से संबंधित होने के कारण परीक्षण व अवलोकन में नहीं आ सकतीं, इसलिए इन्हें प्रमाणित करना पूरी तरह से अनुमान व अनुसरण पर आधारित है। अतः वह अवास्तविक हैं। इनका कोई ज्ञानात्मक आधार नहीं।

यह मुक़दमा अपने आपमें सही नहीं है। आधुनिक अध्ययन-शैली का यह अर्थ नहीं है कि सिर्फ़ वही चीज़ अपना अस्तित्व रखती है, जो सीधे रूप से हमारे अनुभव में आई हो, बल्कि सीधे रूप से अनुभव में आने वाली चीज़ों के आधार पर जो ज्ञानात्मक अनुमान किया जाता है, वह भी उसी प्रकार वास्तविक हो सकता है, जैसे ख़ुद अनुभव न तो अनुभव मात्र अनुभव होने की बिना पर सही है और न ही अनुमान मात्र अनुमान होने की बिना पर ग़लत। हर एक में सही या ग़लत, दोनों होने की संभावना है।

***

जैसे ईश्वर को साबित करने के लिए हम यह नहीं करते कि स्वयं दूरबीन के द्वारा दिखा दें, बल्कि यूँ दलील देते हैं कि ब्रह्मांड की व्यवस्था और इसकी मौलिकता

इस बात का सबूत है कि इसके पीछे कोई ईश्वरीय शक्ति मौजूद है। इस प्रकार हमारी दलील सीधे रूप से ईश्वर को साबित नहीं करती, बल्कि ऐसी समानता को साबित करती है, जिसके तार्किक नतीजे के रूप में ईश्वर को मानना पड़े।

***

पूर्वकाल में समुद्री जहाज़ लकड़ी के बनाए जाते थे, क्योंकि यह माना जाता था कि पानी पर वही चीज़ तैर सकती है, जो वज़न में पानी से हल्की हो। जब यह दावा किया गया कि लोहे के जहाज़ भी पानी में उसी प्रकार तैर सकते हैं, जिस प्रकार लकड़ी के जहाज़ समुद्री सतह पर चलते हैं, तो इस आधार पर यह मानने से इनकार कर दिया गया कि लोहा भारी होने के कारण पानी की सतह पर तैर ही नहीं सकता। किसी लोहार ने इस दावे को ग़लत साबित करने के लिए पानी के टब में लोहे का नाल (खुर) डालकर दिखा दिया कि वह पानी की सतह पर तैरने के बजाय टब की तह में जाकर बैठ जाता है। प्रत्यक्ष में यह एक परीक्षण था, मगर यह परीक्षण सही नहीं था, क्योंकि उसने अगर पानी में लोहे का थाल डाला होता तो उसे मालूम होता कि दावा करने वाले का दावा भी सही है।

इसी प्रकार शुरुआत में जब कम शक्ति की दूरबीनों से आकाश का अवलोकन किया गया तो बहुत से ऐसे पदार्थ देखने में आए, जो फैले हुए प्रकाश की तरह दिखाई दे रहे थे। इस अवलोकन के आधार पर यह विचार क़ायम किया गया कि यह गैस के बादल हैं, जो तारे बनने के पहले के चरण से गुज़र रहे हैं; मगर जब और अधिक शक्ति की दूरबीनें तैयार हुईं और उनके माध्यम से दोबारा इन पदार्थों को देखा गया तो नज़र आया कि जो पहले प्रकाशमान बादल के रूप में दिखाई देते थे, वह वास्तव में असंख्य तारों का समूह था, जो बहुत अधिक दूरी के कारण बादल की तरह दिखाई दे रहा था।

यह ज्ञात हुआ कि अवलोकन व अनुभव न सिर्फ़ यह है कि यह स्वयं अपने आपमें ज्ञान का एकमात्र माध्यम नहीं है, बल्कि इसी के साथ यह भी एक हक़ीक़त है कि ज्ञान सिर्फ़ उन चीज़ों का नाम नहीं है, जो सीधे रूप से हमारे अवलोकन व अनुभव में आता हो। आधुनिक काल ने निःसंदेह बहुत से उपकरणों और माध्यमों की खोज कर ली है, जिससे व्यापक स्तर पर परीक्षण व अवलोकन किया जा सकता है; मगर यह उपकरण व माध्यम जिन चीज़ों का हमें अनुभव कराते हैं, वह सिर्फ़ कुछ ऊपरी और सामान्यतः महत्वहीन चीज़ें होती हैं। इसके बाद इन अवलोकनों व अनुभवों के आधार पर जो सिद्धांत स्थापित किए जाते हैं, वह सब-के-सब अदृश्य होते हैं। सिद्धांतों की दृष्टि से देखा जाए तो सारा विज्ञान कुछ अवलोकनों की स्पष्टता का नाम है यानी स्वयं सिद्धांत वह चीज़ें नहीं हैं, जो हमारे अवलोकन व अनुभव में आई हों, बल्कि कुछ अनुभवों व अवलोकनों ने वैज्ञानिकों को यह मानने पर विवश किया है कि यहाँ अमुक वास्तविकता मौजूद है, हालाँकि वह स्वयं अवलोकन में नहीं आई।

कोई वैज्ञानिक या भौतिकवादी बल, ऊर्जा, प्रकृति, प्राकृतिक नियम आदि शब्दों का प्रयोग किए बग़ैर एक क़दम आगे नहीं चल सकता, मगर कोई भी वैज्ञानिक यह नहीं जानता कि शक्ति या प्रकृति क्या है, सिवा इसके कि ज्ञात घटनाओं व प्रदर्शनों का अज्ञात और दिखाई न देने वाले कारणों के लिए कुछ व्याख्यात्मक शब्दों को बना लिया गया है, जिसकी असल मौलिकता से एक वैज्ञानिक भी उसी प्रकार विवश है, जिस प्रकार धार्मिक लोग ईश्वर की स्पष्टता व गुणों से। दोनों अपनी जगह एक अज्ञात ब्रह्मांडीय कारणों पर परोक्ष विश्वास रखते हैं। डॉक्टर अलेक्सस कैरल के शब्दों में—

“गणितीय ब्रह्मांड (mathematical universe) अनुमानों और परिकल्पनाओं का एक शानदार जाल है, जिनमें प्रतीकों की समानता

(equation of symbols) पर आधारित अमूर्त चीज़ों (abstractions) के अतिरिक्त और कुछ नहीं। यह वर्णन योग्य भी नहीं हैं।"

(Man The Unknown, p.15)

विज्ञान बिल्कुल भी यह दावा नहीं करता और न ही कर सकता कि सच्चाई सिर्फ़ यही है, जो इंद्रियों के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से हमारे अनुभव में आई हो। यह घटना कि पानी एक द्रव और तरल चीज़ है, इसे हम प्रत्यक्ष रूप से अपनी आँखों के द्वारा देख लेते हैं; मगर यह बात कि पानी का हर अणु (molecule) हाइड्रोजन के दो कणों (atoms) और ऑक्सीजन के एक कण पर आधारित है। यह हमें आँख से या किसी सूक्ष्मदर्शी यंत्र से नज़र नहीं आता, बल्कि तार्किक निष्कर्ष (logical inference) के द्वारा मालूम होता है और विज्ञान इन दोनों घटनाओं की उपस्थिति समान रूप से स्वीकार करता है। इसके निकट जिस प्रकार सामान्य पानी एक हक़ीक़त है, जो अवलोकन में दिखाई दे रहा है, उसी प्रकार वह विश्लेषणात्मक पानी भी एक हक़ीक़त है, जो पूर्णतः अवलोकन योग्य नहीं है और सिर्फ़ अनुमान के द्वारा मालूम किया गया है। यही स्थिति दूसरी समस्त हक़ीक़तों की है। ए.ई. मेंडर ने लिखा है—

"जो चीज़ हमें सीधे इंद्रियों के द्वारा मालूम हों, वह बोध सत्यताएँ (perceived facts) हैं, मगर जिन चीज़ों को हम जान सकते हैं, वह सिर्फ़ इन्हीं बोध सत्यताओं तक सीमित नहीं हैं। इनके अतिरिक्त और बहुत-सी चीजें हैं, जिनकी जानकारी हालाँकि हम सीधे रूप से प्राप्त नहीं कर सकते, फिर भी हम उनके बारे में जान सकते हैं और इस जानकारी का माध्यम निष्कर्ष है। इस प्रकार जो चीज़ मालूम हों, उन्हें निष्कर्षात्मक तथ्य (inferred fact) कहा जा सकता है। यहाँ यह बात प्रमुखता से समझ लेने की है कि दोनों में मूल अंतर इनके वास्तविक होने की दृष्टि से नहीं है, बल्कि इस लिहाज़ से है कि एक रूप में हम 'इसे' जानते हैं और दूसरे रूप में 'इसके बारे में' मालूम करते हैं। वास्तविकता बहरहाल

वास्तविकता है, चाहे हम उसे प्रत्यक्ष रूप से अवलोकन के द्वारा जानें या निष्कर्ष-शैली से मालूम करें।"

(Clearer Thinking, London, 1949, p.49)

उन्होंने आगे यह भी लिखा है—

"ब्रह्मांड में जो कुछ भी है, उनमें से सामान्यतः थोड़ी संख्या को हम इंद्रियों के द्वारा मालूम कर सकते हैं। फिर उनके अतिरिक्त जो और चीज़ें हैं, उन्हें हम कैसे जानें— इसका माध्यम निष्कर्ष या अनुमान (inference) या विचारण (reasoning) है। निष्कर्ष या विचारण एक चिंतन-शैली है, जिसके द्वारा हम कुछ ज्ञात घटनाओं से आरंभ करके अंततः यह आस्था बनाते हैं कि अमुक चीजें यहाँ मौजूद है, हालाँकि वह कभी देखी नहीं गई।" (Clearer Thinking, 1949, p.49)

यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि बौद्धिक व तार्किक शैली सच्चाई को मालूम करने का माध्यम क्योंकर है। जिस चीज़ को हमने आँख से नहीं देखा और न ही कभी उसके अस्तित्व का अनुभव किया, उसके संबंध में मात्र बौद्धिक माँग के आधार पर कैसे कहा जा सकता है कि वह सच्चाई है। मेंडर के शब्दों में इसका उत्तर यह है—

"The reasoning process is valid because the universe of fact is rational."

"तार्किक निष्कर्षों के द्वारा सच्चाई को मालूम करने का तरीक़ा सही है, क्योंकि ब्रह्मांड में स्वयं तार्किकता है।"

ब्रह्मांड में होने वाली घटनाओं में एक पूर्ण सामंजस्य है। ब्रह्मांड की समस्त वास्तविकताएँ एक-दूसरे से समानता रखती हैं और इनके बीच शक्तिशाली व्यवस्था और क्रम पाया जाता है। इसलिए अध्ययन का कोई ऐसा तरीक़ा, जो घटनाओं के सामंजस्य और औचित्य को हम पर स्पष्ट न करे, सही नहीं हो सकता। मेंडर ने यह बताते हुए लिखा है—

“नज़र आने वाली घटनाएँ मात्र ब्रह्मांडीय तथ्यों के कुछ टुकड़े (patches of facts) हैं। वह सब कुछ जिन्हें हम इंद्रियों के द्वारा जानते हैं, वह मात्र आंशिक व अक्रमबद्ध घटनाएँ होती हैं। अगर अलग से सिर्फ़ उन्हें देखा जाए तो वह निरर्थक मालूम होंगी। प्रत्यक्ष रूप से अनुभूत होने वाली घटनाओं के साथ और बहुत-सी अनुभूत न होने वाली घटनाओं को मिलाकर जब हम देखते हैं, उस समय इनकी मौलिकता को समझते हैं।”

इसके बाद वह एक साधारण से उदाहरण से इस बात को समझाता है—

“हम देखते हैं कि जब एक चिड़िया मरती है तो ज़मीन पर गिर पड़ती है, हम देखते हैं कि एक पत्थर को ज़मीन से उठाने के लिए शक्ति ख़र्च करनी पड़ती है, हम देखते हैं कि चाँद आकाश में घूम रहा है, हम देखते हैं कि पहाड़ी से उतरने के मुक़ाबले में चढ़ना ज़्यादा कठिन है। इस प्रकार के हज़ारों अवलोकन हमारे सामने आते हैं, जिनके बीच प्रत्यक्षतः कोई भी संबंध नहीं। इसके बाद एक निष्कर्षात्मक तथ्य (inferred facts) का राज़ खुलता है यानी गुरुत्वाकर्षण (gravitation) का क़ानून। इसके तुरंत बाद हमारे यह समस्त अवलोकन इस निष्कर्षात्मक तथ्य के साथ परस्पर जुड़ जाते हैं और इस प्रकार बिल्कुल पहली बार हमें मालूम होता है कि इन भिन्न घटनाओं के बीच व्यवस्था, नियमितता और अनुकूलता है। अनुभूत घटनाओं को अगर अलग से देखा जाए तो वे अक्रमिक, असंबद्ध और विविध मालूम होंगी, मगर अनुभूत घटनाएँ और निष्कर्षात्मक सत्यताएँ दोनों को मिला दिया जाए तो वे एक व्यवस्थित रूप धारण कर लेती हैं।” (p.51)

इस उदाहरण में गुरुत्वाकर्षण का क़ानून सिद्ध वैज्ञानिक तथ्य होने के बाद भी अपने आपमें पूर्णतः अवलोकन योग्य नहीं है। वैज्ञानिकों ने जिस चीज़ को देखा या अनुभव किया है, वह स्वयं आकर्षण का क़ानून

नहीं, कुछ दूसरी चीज़ें हैं और इन दूसरी चीज़ों की तार्किक स्पष्टता के रूप से वे यह मानने को विवश हुए हैं कि यहाँ कोई ऐसी चीज़ मौजूद है, जिसे हम गुरुत्वाकर्षण क़ानून से व्याख्या कर सकते हैं।

यह गुरुत्वाकर्षण का नियम आज एक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक तथ्य के रूप में समस्त संसार में जाना जाता है। पहली बार इसकी खोज न्यूटन ने की, मगर परीक्षणीय दृष्टि-बिंदु से इसकी वास्तविकता क्या है, उसे न्यूटन की ज़ुबान से सुनिए— "यह अबूझ है कि निर्जीव और असंवेदनशील तत्त्व किसी मध्यस्थीय संपर्क के बग़ैर दूसरे तत्त्व पर प्रभाव डालता है, हालाँकि दोनों के बीच कोई संबंध नहीं होता।"

(Works of W. Bently III, p.221)

एक ऐसी अदर्शनीय और अबूझ चीज़ को आज बिना मतभेद के वैज्ञानिक तथ्य समझा जाता है, सिर्फ़ इसलिए कि हम मान लेते हैं कि हमारे कुछ अवलोकनों की इससे स्पष्टता हो जाती है। किसी चीज़ के सच होने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह सीधे हमारे अनुभव व अवलोकन में आ रही हो, बल्कि वह अदृश्य आस्था भी उसी श्रेणी में आती है, जिससे हम विभिन्न अवलोकनों को अपने ज़ेहन से संबद्ध कर सकते हों, जो ज्ञात घटनाओं की मौलिकता हम पर स्पष्ट कर सके। मेंडर ने लिखा है—

"यह कहना कि हमने किसी एक कोई चीज़ को मालूम कर लिया है, दूसरे शब्दों में मानो यह कहना है कि हमने उसकी मौलिकता या अर्थ (meaning) को मालूम कर लिया है या इसे यूँ भी कहा जा सकता है कि हमने किसी चीज़ की मौजूदगी के कारणों और परिस्थितियों को मालूम करके उसकी व्याख्या कर ली है। हमारे अधिकतर विश्वास (belief) इसी अवस्था के हैं। वह वास्तव में अवलोकनों का स्पष्टीकरण (statement of observation) है।"

इस बहस के बाद मेंडर ने अवलोकित तथ्यों (observed facts) के विषय पर चर्चा करते हुए लिखा है—

“जब हम किसी अवलोकन (observation) का ज़िक्र करते हैं तो इसका मतलब हमेशा अनुभूति से कुछ ज़्यादा ही होता है। इसमें अनुभूति, पहचान (recognition) और निष्कर्ष का अंश भी शामिल होता है।” (p.56)

यही वह नियम है, जिसके आधार पर जैविक विकास (organic evolution) के सही होने पर वैज्ञानिकों की सहमति हो गई है। मेंडर के निकट यह सिद्धांत अब इतनी दलीलों से सिद्ध हो चुका है कि इसे ‘लगभग निश्चित’ (almost certain) कहा जा सकता है*। सी.जी. सिंपसन के शब्दों में, विकास का सिद्धांत अंतिम और पूर्णतः एक प्रमाणित वास्तविकता है, न कि मात्र कोई अनुमान या कल्पना, जिसे वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए स्थापित कर लिया गया हो**। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (1958) के निबंधकार ने पशुओं में विकास को विधिवत सच स्वीकार किया है और कहा है कि डार्विन के बाद इस सिद्धांत को वैज्ञानिकों और शिक्षित वर्ग की सामान्य स्वीकार्यता प्राप्त हो चुकी है। आर०एस० लुल ने लिखा है—

“डार्विन के बाद विकास का सिद्धांत हर दिन अधिक मान्यता प्राप्त करता रहा, यहाँ तक कि अब सोचने और जानने वाले लोगों में इस बारे में कोई संदेह नहीं रह गया है कि यह एकल तार्किक तरीक़ा है, जिसके तहत उत्पत्ति प्रक्रिया की स्पष्टता हो सकती है और उसे समझा जा सकता है।” (Organic Evolution, p.15)

---

* Clearer Thinking, p.113

** Meaning of Evolution, p.127

यह सिद्धांत जिसकी सच्चाई पर वैज्ञानिकों का इतना विश्वास हो गया है, क्या इसे किसी ने देखा है या परीक्षण किया है— ज़ाहिर है कि ऐसा नहीं है और न ऐसा हो सकता। विकास का काल्पनिक अमल इतना जटिल है और इतने दूरगामी भूतकाल से संबंधित है, जिसे देखने या परीक्षण करने का सवाल ही नहीं पैदा होता। 'रिचर्ड लुल' के उपरोक्त कथित शब्दों के अनुसार यह सिर्फ़ एक 'तार्किक शैली' है, जिससे उत्पत्ति की घटना की स्पष्टता की जाती है, न कि उत्पत्ति की घटना का अवलोकन। अतः सर आर्थर कीथ, जो स्वयं भी विकास का समर्थक है, उसने विकास की अवलोकनीय या परीक्षणीय वास्तविकता के स्थान पर एक 'आस्था' क़रार दिया है। उसके शब्द इस प्रकार हैं—

"Evolution is a basic dogma of rationalism."

(Revolt Against Reason, p.112.)

यानी विकास का सिद्धांत बुद्धिवाद के धर्म की एक बुनियादी आस्था है। अतः एक वैज्ञानिक एनसाइक्लोपीडिया में डार्विनवाद (Darwinism) को एक ऐसा सिद्धांत कहा गया है, जिसका आधार 'स्पष्टता बगैर प्रदर्शन' (explanation without demonstration) पर स्थापित है। (Revolt Against Reason, p.111)

फिर एक ऐसी अदर्शनीय और अनुभव न होने वाली चीज़ को ज्ञानात्मक तथ्य क्यों समझा जाता है। इसका कारण ए०ई० मेंडर के शब्दों में यह है—

1. यह सिद्धांत समस्त ज्ञात वास्तविकताओं के एकरूप (consistent) है।
2. इस दृष्टिकोण में उन बहुत-सी घटनाओं की कारणता मिल जाती है, जो इसके बग़ैर समझी नहीं जा सकती।
3. अभी तक ऐसा दूसरा कोई दृष्टिकोण सामने नहीं आया, जो घटनाओं से इस दर्जे अनुकूलता रखता हो। (p.112)

अगर यह तर्कवाद विकास के सिद्धांत को सही क़रार देने के लिए पर्याप्त है तो यही दलीलें कई गुणा अधिक दृढ़ता के साथ धर्म के पक्ष में भी मौजूद हैं। ऐसी स्थिति में विकास के सिद्धांत को वैज्ञानिक तथ्य क़रार देना और धर्म को वैज्ञानिक बुद्धि के लिए अस्वीकार्य ठहराना सिर्फ़ इस बात का प्रदर्शन है कि आपका मुक़दमा वास्तव में 'तार्किक शैली' का मुक़दमा नहीं है, बल्कि वह नतीजे से संबंधित है। एक ही तार्किक शैली से अगर कोई शुद्ध भौतिक अवस्था की घटना साबित हो तो आप उसे तुरंत स्वीकार कर लेंगे और अगर कोई अलौकिक अवस्था साबित हो तो आप उसे रद्द कर देंगे, क्योंकि यह नतीजा आपको पसंद नहीं।

उपरोक्त चर्चा से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह कहना सही नहीं है कि धर्म अदृश्य चीज़ों पर विश्वास का नाम है और विज्ञान दर्शनीय चीज़ों पर विश्वास का। हक़ीक़त यह है कि धर्म और विज्ञान दोनों ही अदृश्य चीज़ों पर आस्था रखते हैं। धर्म का असल काम चीज़ों की असली और अंतिम सच्चाई निर्धारित करने का काम है। विज्ञान उसी समय तक अवलोकनीय ज्ञान है, जब तक वह प्रारंभिक और बाहरी प्रकटन पर बात कर रहा हो। जहाँ वह चीज़ों की अंतिम और असल हैसियत नियुक्त करने के मैदान में आता है, जो कि धर्म का असली मैदान है, तो वह ठीक उसी प्रकार अदृश्य चीज़ों पर आस्था का तरीक़ा धारण करता है, जिसका आरोप धर्म पर लगाया जाता है, क्योंकि इस मैदान में इसके अतिरिक्त कोई चारा नहीं। सर आर्थर एडिंगटन के कथनानुसार, आधुनिक काल का वैज्ञानिक जिस मेज़ पर काम कर रहा है, वह एक ही समय दो मेज़ें हैं। एक मेज़ तो वही है, जो हमेशा से सामान्य लोगों की मेज़ रही है और जिसे छूना और देखना संभव है। दूसरी मेज़ इसकी ज्ञानात्मक मेज़ (knowledge based table) है। इसका अधिकतर भाग रिक्त है और इसमें असंख्य अदृश्य इलेक्ट्रॉन दौड़ रहे हैं। इसी प्रकार हर चीज़ की प्रतिकृति (duplicate) है, जिसमें

एक तो अवलोकनीय है और दूसरी सिर्फ़ काल्पनिक है। इसे किसी दूरदर्शी या सूक्ष्मदर्शी यंत्र से नहीं देखा जा सकता।

(Nature of the Physical World, p.7-8)

जहाँ तक चीज़ों के पहले रूप का संबंध है, निःसंदेह उसे विज्ञान देखता है और बहुत दूर तक देखता है; मगर इसने कभी यह दावा नहीं किया कि इसने दूसरे रूप को भी देख लिया है। इस मैदान में इसका तरीक़ा यह है कि वह किसी वास्तविकता के प्रकटन को देखकर उसके विषय में एक मत स्थापित करता है, जैसे जहाँ तक इस दूसरे मैदान— चीज़ों की अंतिम हैसियत मालूम करने का मैदान— का संबंध है, विज्ञान नाम है ज्ञात जानकारी की सहायता से अज्ञात जानकारियों की खोज करने का।

जब वैज्ञानिक के पास अवलोकनीय चीज़ों (जिन्हें वास्तव में अंतर्ज्ञान रूप प्रदान करता है) की कुछ संख्या उपलब्ध हो जाती है तो वह यह महसूस करता है कि अब उसे एक ऐसी परिकल्पना या दृष्टिकोण या अधिक उचित शब्दों में एक अंतर्ज्ञानी या आस्थावादी कल्पना की ज़रूरत है, जो इन अवलोकनों की स्पष्टता करे, इन्हें व्यवस्थित करे और इन्हें एकत्व में पिरोह दे। लिहाज़ा वह इस प्रकार की एक अंतर्ज्ञानी परिकल्पना का आविष्कार करता है। अगर यह परिकल्पना वास्तव में उन समस्त चीज़ों की बुद्धिसम्मत स्पष्टता कर रही हो, तो उसे एक ऐसी ही विश्वसनीय चीज़ में गिना जाता है, जैसे कि कोई और ज्ञानात्मक वास्तविकता जिसे वैज्ञानिक 'अवलोकन' क़रार देता है, हालाँकि यह वैज्ञानिकों के अपने दृष्टि-बिंदु के अनुसार कभी अवलोकन में न आई हो; मगर यह सिर्फ़ इसलिए वास्तविकता समझी जाती है कि कोई ऐसी दूसरी परिकल्पना मौजूद नहीं है, जो इनकी वस्तुतः व्याख्या करती हो।

जैसे वैज्ञानिक एक अदृश्य चीज़ की मौजूदगी पर उसके परिणामों और प्रभावों के कारण विश्वास कर लेता है, हर वह चीज़ जिस पर हम विश्वास करते हैं, आरंभ से एक परिकल्पना ही होती है। फिर जैसे-जैसे नए तथ्य खुलकर उस परिकल्पना का समर्थन करते जाते हैं तो उस परिकल्पना की सच्चाई व्यक्त होती जाती है, यहाँ तक कि हमारा विश्वास अंतिम दर्जे के विश्वास तक पहुँच जाता है। अगर ये तथ्य इस परिकल्पना का समर्थन न करें तो हम इस परिकल्पना को ग़लत समझकर छोड़ देते हैं। इस प्रकार असंदिग्ध उदाहरण, जिस पर वैज्ञानिक परोक्ष रूप से विश्वास करता है, वह 'एटम' है। एटम को आज तक प्रचलित अर्थों में देखा नहीं गया, मगर इसके बावजूद वह आधुनिक विज्ञान की सबसे बड़ी मानी हुई सच्चाई है। इसी आधार पर एक विद्वान ने वैज्ञानिक सिद्धांतों की परिभाषा इन शब्दों में की है—

"Theories and mental pictures that explain known laws."

विज्ञान के क्षेत्र में जिन 'वास्तविकताओं' को अवलोकनीय तथ्य (observed fact) कहा जाता है, वह असल में अवलोकनीय वास्तविकताएँ नहीं, बल्कि कुछ अवलोकन की व्याख्याएँ हैं और चूँकि इंसानी अवलोकन को पूर्ण नहीं कहा जा सकता, इसलिए यह व्याख्याएँ भी सारी-की-सारी प्रासंगिक (relative) हैं और अवलोकन की प्रगति से परिवर्तित हो सकती हैं। जे०डब्ल्यू० सुलीवेन ने वैज्ञानिक सिद्धांतों पर एक टिप्पणी करने के बाद लिखा है—

"वैज्ञानिक सिद्धांतों के इस निरीक्षण से यह बात साबित हो जाती है कि एक सही वैज्ञानिक दृष्टिकोण मात्र यह अर्थ रखता है कि वह एक सफल व्यावहारिक परिकल्पना (successful working hypothesis) है। यह बहुत संभव है कि समस्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण

असल में ग़लत हों। जिन सिद्धांतों को हम आज स्वीकार करते हैं, वह मात्र हमारी वर्तमान अवलोकन की सीमाओं की दृष्टि से सही हैं। सच्चाई (Truth) अब भी विज्ञान की दुनिया में एक ज्ञानात्मक और उपयोगी प्रसंग (pragmatic affair) है।"

(The Limitations of Science, p.158)

इसके बाद भी वैज्ञानिक एक परिकल्पना को, जो इसके अवलोकनीय तथ्यों की बुद्धिसंगत स्पष्टता (intellectual interpretation) करती हो, अवलोकनीय तथ्यों से कम दर्जे की ज्ञानात्मक वास्तविकता नहीं समझता। वह नहीं कह सकता कि ये अवलोकनीय सत्यताएँ तो विज्ञान है, लेकिन वह सिद्धांत जो इनकी व्याख्या करता है, वह विज्ञान नहीं। इसी का नाम 'ईमान बिल-ग़ैब' यानी अदृश्य या परोक्ष पर विश्वास करना है। परोक्ष पर विश्वास दृश्यमान पर विश्वास करने से अलग कोई चीज़ नहीं है, वह मात्र कोई अंधी आस्था नहीं है, बल्कि वह उपस्थित वास्तविकताओं की उच्चतम व्याख्या है। जिस प्रकार न्यूटन के प्रकाश के सिद्धांत (Corpuscular Theory of Light) को बीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिकों ने इसलिए रद्द कर दिया कि वह प्रकाश के प्रकटन की व्याख्या करने में नाकाम नज़र आया। इसी प्रकार हम नास्तिक चिंतकों के ब्रह्मांडीय दृष्टिकोण को इस आधार पर रद्द करते हैं कि वह जीवन और सृष्टि के प्रदर्शन की व्याख्या करने में नाकाम है। धर्म के विषय में हमारे विश्वास का स्रोत ठीक वही चीज़ है, जो एक वैज्ञानिक के लिए किसी विज्ञान के सिद्धांत के विषय में होता है। हम अवलोकनीय सच्चाई के अध्ययन ही से इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि धर्म की व्याख्याएँ यथा सत्य हैं और इस हद तक सत्य हैं कि हज़ारों वर्ष गुज़रने के बाद भी इनकी सच्चाई में कोई अंतर नहीं आया। हर

वह इंसानी दृष्टिकोण, जो अब से चंद सौ वर्ष पहले बनाया गया, वह नए अवलोकनों और अनुभवों के प्रकटन में आने के बाद संदेहजनक और अस्वीकृत हो चुका है। इसके विपरीत धर्म एक ऐसी सच्चाई है, जो हर नई तहक़ीक़ से और निखरती चली जा रही है। प्रत्येक सत्य खोज इसके लिए पुष्टि बनती चली जाती है।

अगले पृष्ठों पर हम इसी पहलू से धर्म के बुनियादी विचारों का अध्ययन करेंगे।

ब्रह्मांड ईश्वर की गवाही देता है

अरसा हुआ कि केरल के एक ईसाई मिशन ने एक पुस्तिका प्रकाशित की थी, जिसका नाम है —

“Nature and Science speak about God.”

इस अध्याय के शीर्षक के लिए मैं समझता हूँ कि ये शब्द अति उपयुक्त हैं। इसमें कोई शक नहीं कि ईश्वर का सबसे बड़ा सबूत उसकी वह उत्पत्ति है, जो हमारे सामने मौजूद है। प्रकृति और इसके विषय में हमारा श्रेष्ठ ज्ञान पुकार रहा है कि निःसंदेह इस दुनिया का एक ईश्वर है, इसके बग़ैर हम ब्रह्मांड को और अपने आपको नहीं समझ सकते।

सृष्टि की मौजूदगी इसके अंदर आश्चर्यजनक प्रबंधन और इसकी अथाह मौलिकता का इसके अतिरिक्त कोई स्पष्टीकरण नहीं हो सकता कि इसे किसी ने बनाया है? और यह बनाने वाला असीमित बुद्धि रखता है, यह कोई अंधी शक्ति नहीं हैं।

(i) दार्शनिकों में से एक दल अति संक्षिप्त दल ऐसा है, जो किसी प्रकार के अस्तित्व ही में शक करता है। इसके नज़दीक न यहाँ कोई इंसान है और न कोई ब्रह्मांड, बस एक शून्य मात्र है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। अगर इस दृष्टि-बिंदु को सही मान लिया जाए तो निश्चित ही ईश्वर का अस्तित्व संदिग्ध हो जाता है, लेकिन जैसे ही हम ब्रह्मांड को मानते हैं तो हमारे लिए ज़रूरी हो जाता है कि हम ईश्वर को मानें, क्योंकि अनस्तित्व (शून्य) से अस्तित्व का पैदा होना एक अकल्पनीय बात है।

जहाँ तक उस विशिष्ट प्रकार के संदेहों और अनीश्वरवाद (agnostic) का संबंध है, वह एक दार्शनिक बात हो सकती है, मगर उसका सच्चाई से कोई संबंध नहीं। जब हम सोचते हैं तो हमारा सोचना स्वयं इस बात का सबूत होता है कि हमारा कोई अस्तित्व है। जब रास्ता चलते हुए हम किसी पत्थर से टकराते हैं और हमें तकलीफ़ सताने लगती है तो यह घटना इस बात का सबूत होती है कि हमारे बाहर कोई दुनिया है, जिसका अपना अस्तित्व है। इसी प्रकार हमारा मस्तिष्क और हमारी समस्त इंद्रियाँ हर समय असंख्य चीज़ों को महसूस करती हैं और यह बोध व ज्ञान हर व्यक्ति के लिए इस बात का एक निजी सबूत है कि वह एक ऐसी दुनिया में है, जो असलियत से अपना अस्तित्व रखती है। अब अगर किसी का दार्शनिकवादी चिंतन उसके लिए दुनिया के अस्तित्व को संदेहात्मक कर देता है तो यह एक पृथक स्थिति है, जो करोड़ों इंसानों के अनुभवों से असंबद्ध है। ऐसे व्यक्ति के बारे में यही कहा जा सकता है कि वह अपने विशिष्ट प्रकार के बौद्धिक वातावरण में गुम हो गया है, यहाँ तक कि अपने आपसे भी बेख़बर हो गया है।

हालाँकि ब्रह्मांड का मौजूद न होना अपने आपमें इस बात का कोई अनिवार्य सबूत नहीं है कि ईश्वर भी मौजूद न हो, फिर भी अपनी अति व्यर्थता के बावजूद यही एक दृष्टि-बिंदु है, जिसके लिए ईश्वर का अस्तित्व संदिग्ध हो सकता है; मगर यह दृष्टि-बिंदु स्वयं इतना अर्थहीन है कि आज तक न तो सामान्य लोगों के लिए वह समझ आने योग्य हो सका और न ज्ञानात्मक दुनिया में सामान्य स्वीकृति प्राप्त कर सका है। सामान्य इंसान और सामान्य विद्वान बहरहाल इस घटना को स्वीकार करते हैं कि उनका अपना एक अस्तित्व है और ब्रह्मांड भी अपना एक अस्तित्व रखता है। समस्त विद्याएँ और जीवन की समस्त गतिविधियाँ इसी ज्ञान तथा विश्वास के आधार पर स्थापित हैं।

फिर जब एक ब्रह्मांड है तो अनिवार्यतः इसका एक ईश्वर भी होना चाहिए। यह बिल्कुल अर्थहीन बात है कि हम रचना को मानें, मगर रचनाकार के अस्तित्व को स्वीकार न करें। हमें किसी भी ऐसी चीज़ की जानकारी नहीं, जो पैदा किए बग़ैर अस्तित्व में आ गई हो। हर छोटी-बड़ी चीज़ अनिवार्य रूप से अपना एक कारण रखती है, फिर इतने बड़े ब्रह्मांड के बारे में कैसे विश्वास किया जा सकता है कि वह यूँ ही अस्तित्व में आ गया, इसका कोई उत्पत्तिकर्ता नहीं।

जॉन स्टुअर्ट मिल ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि मेरे पिता ने मुझे यह सबक़ दिया कि यह प्रश्न कि 'मुझे किसने पैदा किया,' ईश्वर के सबूत के लिए पर्याप्त नहीं है, क्योंकि इसके तुरंत बाद दूसरा प्रश्न पैदा होता है कि 'ईश्वर को किसने पैदा किया'। अतः बर्ट्रेंड रसेल ने भी इसी आपत्ति को स्वीकार करते हुए प्रारंभिक संचालक (The First Cause) के तर्कवाद को रद्द कर दिया—

(The Age of Analysis, by Morton White, p.21-22)

यह अनीश्वरवादियों (atheists) का बहुत पुराना तर्क है। इसका अर्थ यह है कि ब्रह्मांड का अगर कोई उत्पत्तिकर्ता मानें तो उस उत्पत्तिकर्ता को अनिवार्य रूप से अनादिकालिक (eternal) मानना पड़ेगा, फिर जब ईश्वर को अनादि मानना है तो क्यों न ब्रह्मांड को ही अनादिकालिक मान लिया जाए। हालाँकि यह बिल्कुल अर्थहीन बात है, क्योंकि ब्रह्मांड का कोई ऐसा गुण हमारी जानकारी में नहीं आया है जिसके आधार पर इसे स्वयं अपना रचयिता माना जा सके। फिर भी उन्नीसवीं शताब्दी तक इनकार करने वालों की इस दलील में एक ज़ाहिरी सुंदर धोखा अवश्य मौजूद था, मगर अब ऊष्मा व ऊर्जा के दूसरे नियम (Second Law of Thermodynamics) सामने आने के बाद तो यह दलील बिल्कुल आधारहीन साबित हो चुकी है।

यह क़ानून जिसे 'उत्क्रम माप का नियम' (Law of Entropy) कहा जाता है, यह साबित करता है कि ब्रह्मांड हमेशा से मौजूद नहीं हो सकता। यह नियम बताता है कि ऊष्णता निरंतर ऊष्णता वाले अस्तित्व से ऊष्णताहीन अस्तित्व में स्थानांतरित होती रहती है, मगर इस चक्कर को उल्टा नहीं चलाया जा सकता कि स्वतः ही यह ऊष्णता निम्न ऊष्णता के अस्तित्व से अधिक ऊष्णता के अस्तित्व में स्थानांतरित होने लगे। उपलब्ध ऊर्जा (available energy) और अनुपलब्ध ऊर्जा (unavailable energy) के बीच अनुपात का नाम उत्क्रम माप है और इस आधार पर कहा जा सकता है कि इस ब्रह्मांड का उत्क्रम माप (entropy) बराबर बढ़ रहा है और एक समय ऐसा आना निश्चित है, जब संसार की सभी चीज़ों की ऊष्णता समान हो जाएगी और कोई कारामद ऊर्जा शेष न रहेगी। इसका परिणाम यह निकलेगा कि रासायनिक और प्राकृतिक प्रक्रिया समाप्त हो जाएगी और जीवन भी इसी के साथ समाप्त हो जाएगा, लेकिन असलियत यह है कि जीवन के हंगामे क़ायम हैं और रासायनिक व भौतिक प्रक्रिया जारी है। यह बात निश्चित रूप से साबित हो जाती है कि यह ब्रह्मांड अनादि काल से मौजूद नहीं है, वरना ऊष्णता के निकलने के अनिवार्य नियम के कारण इसकी ऊर्जा कभी की समाप्त हो चुकी होती और यहाँ जीवन की हल्की-सी झलक भी मौजूद न होती।

इस नवीन शोध (modern research) का हवाला देते हुए एक अमेरिकी प्राणीशास्त्री (zoologist) एडवर्ड लूथर ने लिखा है—

"इस प्रकार अनैच्छिक रूप से विज्ञान की खोजों ने यह साबित कर दिया है कि सृष्टि अपना एक प्रारंभ (beginning) रखती है और ऐसा करते हुए इसने ईश्वर की सच्चाई को साबित कर दिया, क्योंकि जो चीज़ अपना एक प्रारंभ रखती हो, वह अपने आप आरंभ नहीं हो

सकती, निश्चित ही वह एक प्रथम प्रेरक, एक उत्पत्तिकर्ता, एक ईश्वर की आश्रित है।" (The Evidence of God, p.51)

यही बात सर जेम्स जींज़ ने इन शब्दों में कही है—

"वर्तमान विज्ञान का यह विचार है कि ब्रह्मांड में एंट्रोपी (entropy) की प्रक्रिया हमेशा जारी रहेगी, यहाँ तक कि इसकी ऊर्जा बिल्कुल समाप्त हो जाएगी। यह एंट्रोपी अभी अपने अंतिम दर्जे को नहीं पहुँची है। अगर ऐसा हो गया होता तो हम इसके बारे में सोचने के लिए मौजूद न होते। यह एंट्रोपी इस समय भी तेज़ी के साथ बढ़ रही है और इस आधार पर इसका एक प्रारंभ होना आवश्यक है। ब्रह्मांड में अनिवार्यतः इस प्रकार की कोई क्रिया हुई है, जिसे हम एक विशेष समय में उत्पत्ति कह सकते हैं, न यह कि वह असीम काल से मौजूद है।"

(Mysterious Universe, p.133)

इसी प्रकार के और भौतिक साक्ष्य हैं, जो यह साबित करते हैं कि यह ब्रह्मांड अनादि काल से विद्यमान नहीं है, बल्कि वह एक सीमित आयु रखता है, जैसे— अंतरिक्ष विज्ञान (meteorology) का यह अवलोकन कि ब्रह्मांड निरंतर फैल रहा है। समस्त आकाशगंगाएँ और आकाशीय पिंड अवलोकन में अति तीव्रता से एक-दूसरे से हटते हुए नज़र आते हैं। यह स्थिति उस समय अत्यंत स्पष्ट हो जाती है, जब हम एक ऐसे प्रारंभिक समय को स्वीकार कर लें, जब समस्त रचना-तत्त्व एकत्रित और केंद्रीभूत स्थिति (singularity) में थे और इसके बाद उनमें गति और ऊर्जा का आरंभ हुआ। इस प्रकार के विभिन्न सबूतों के आधार पर सामान्य अनुमान यह है कि लगभग 14 खरब वर्ष पहले एक असाधारण विस्फोट से यह सारी सृष्टि अस्तित्व में आई। अब विज्ञान की इस खोज को मानना कि ब्रह्मांड सीमित आयु रखता है और इसके अविष्कार को न मानना ऐसा ही है, जैसे कोई व्यक्ति यह तो स्वीकार

करे कि ताजमहल हमेशा से मौजूद नहीं था, बल्कि सत्रहवीं शताब्दी ईस्वी के बीच में बना, मगर इसके बावजूद इसका कोई निर्माणकर्ता और इंजीनियर स्वीकार न करे और कहे कि वह बस अपने आप एक विशिष्ट तारीख़ को बनकर खड़ा हो गया।

(ii) अंतरिक्ष विज्ञान का अध्ययन हमें बताता है कि संसार के समस्त सागरों के किनारे रेत के जितने कण हैं, शायद इतने आकाश में सितारों की संख्या है। इनमें कुछ ऐसे सितारे (नक्षत्र) हैं, जो धरती से बहुत ही अधिक बड़े हैं, मगर अधिकतर सितारे इतने बड़े हैं कि उनके अंदर लाखों धरती रखी जा सकती हैं और कुछ सितारे तो इतने बड़े हैं कि अरबों धरती उनके अंदर समा सकती हैं। यह ब्रह्मांड इतना विशाल है कि प्रकाश की तरह एक अति संभव सीमा तक तेज़ उड़ने वाले हवाई जहाज़, जिसकी गति 1 लाख 86 हज़ार मील प्रति सेकंड हो, वह ब्रह्मांड के चारों ओर घूमे तो इस जहाज़ को ब्रह्मांड का पूरा चक्कर लगाने में लगभग एक अरब वर्ष लगेंगे, फिर इतनी विशालता के बाद भी यह ब्रह्मांड ठहरा हुआ नहीं है, बल्कि हर क्षण अपने चारों ओर फैल रहा है। इसके फैलने की रफ़्तार इतनी तेज़ है कि हर 130 करोड़ वर्ष के बाद ब्रह्मांड के समस्त फ़ासले दोगुना हो जाते हैं। इस प्रकार हमारा यह काल्पनिक प्रकार का असाधारण तेज़ रफ़्तार वाला हवाई जहाज़ भी ब्रह्मांड का चक्कर कभी पूरा नहीं कर सकता, बल्कि वह हमेशा इस बढ़ते हुए ब्रह्मांड के रास्ते में रहेगा।

यह ब्रह्मांड की विशालता के बारे में आइंस्टाइन का दृष्टिकोण है, मगर यह सिर्फ़ एक 'गणितज्ञ का अनुमान' है। हक़ीक़त यह है कि इंसान अभी तक ब्रह्मांड की विशालता को समझ नहीं सका।

आसमान गर्द-ओ-ग़ुबार यानी धूल-मिट्टी से रहित हो तो पाँच हज़ार सितारे ख़ाली आँख से देखे जा सकते हैं, लेकिन साधारण दूरबीनों

की सहायता से यह संख्या बीस लाख से अधिक हो जाती है और समय की सबसे बड़ी दूरबीन जो माउंट पैलूमर पर लगी हुई है, उससे अरबों सितारे नज़र आते हैं, मगर यह संख्या असल संख्या के मुक़ाबले में बहुत कम है। ब्रह्मांड एक विशाल रिक्ति (vacuum) है, जिसमें असंख्य सितारे असाधारण गति से निरंतर घूम रहे हैं। कुछ तारे अकेले सफ़र कर रहे हैं, कोई दो या अधिक तारों के समूहों के रूप में है और असंख्य तारे ऐसे हैं, जो तारों के झुरमुट के रूप में गतिवान हैं। रोशनदान या वेंटीलेटर से कमरे में आने वाली रोशनी के अंदर आपने असंख्य कण इधर-उधर दौड़ते हुए देखे होंगे, इसी की अगर आप बहुत बड़े पैमाने पर कल्पना कर सकें तो ब्रह्मांड के अंदर सितारों की गतिविधि का हल्का-सा अंदाज़ा कर सकते हैं, इस अंतर के साथ कि कण आपस में मिलकर हरकत करते हैं और सितारे संख्या की इस अधिकता के बावजूद बिल्कुल एकल व तन्हा दूसरे सितारों से बे-अंदाज़ा फ़ासले पर यात्रा करते हुए सक्रिय हैं, जैसे विशाल समुद्रों में कुछ जहाज़, जो एक-दूसरे से इतनी दूरी पर चल रहे हैं कि उन्हें एक-दूसरे की ख़बर न हो।

यह सारा ब्रह्मांड सितारों के असंख्य झुरमुटों के रूप में है और हर झुरमुट को आकाशगंगा (galaxy) कहते हैं और यह सब-के-सब निरंतर गतिशील हैं। सबसे निकटवर्ती गतिविधि जिसे हम जानते हैं, वह चाँद है। चाँद धरती से 2 लाख 40 हज़ार मील दूर रहकर इसके चारों ओर निरंतर इस प्रकार घूम रहा है कि प्रत्येक साढ़े उनत्तीस दिन में धरती के गिर्द इसका एक चक्कर पूरा होता है। इसी प्रकार हमारी धरती, जो सूर्य से 9.5 करोड़ मील दूर है, वह अपनी धुरी पर एक हज़ार मील प्रति घंटा की गति से घूमती हुई सूर्य के चारों ओर 19 करोड़ मील का दायरा बनाती है, जो एक वर्ष में पूरा होता है। इसी प्रकार धरती सहित नौ ग्रह हैं और वे सब-के-सब सूर्य के चारों ओर निरंतर दौड़ रहे हैं। इन ग्रहों में

सबसे दूर ग्रह प्लूटो (Pluto) है, जो 7.5 अरब मील के दायरे में चक्कर लगा रहा है। यह समस्त सितारे अपनी यात्रा में इस प्रकार व्यस्त हैं कि इनके गिर्द 31 चाँद भी अपने-अपने ग्रहों के चारों ओर घूम रहे हैं। इनके अतिरिक्त तीस हज़ार छोटे क्षुद्र ग्रहों (asteroids) का एक घेरा, हज़ारों दुमदार सितारे और असंख्य उल्का पिंड (meteorites) हैं, जो इसी प्रकार चक्कर लगाने में व्यस्त हैं। इन सबके बीच में वह सितारा है, जिसे हम सूर्य कहते हैं और जिसका व्यास 8 लाख 65 हज़ार मील है और वह धरती से 12 लाख गुणा बड़ा है।

यह सूर्य स्वयं भी रुका हुआ नहीं है, बल्कि अपने समस्त ग्रहों व उपग्रहों को लिये हुए एक विशाल आकाशगंगीय व्यवस्था के अंदर 6 लाख प्रति घंटा की रफ़्तार से चक्कर लगा रहा है। इसी प्रकार हज़ारों हरकत करती हुई व्यवस्थाएँ हैं, जिनसे मिलकर एक आकाशगंगा अस्तित्व में आती है। आकाशगंगा मानो एक बहुत बड़ी प्लेट है, जिस पर असंख्य तारे अलग-अलग और समूहों में लट्टुओं की तरह निरंतर घूम रहे हैं। फिर यह आकाशगंगाएँ स्वयं भी हरकत करती हैं। अतः वह क़रीबी आकाशगंगा जिसमें हमारी सौर पद्धति स्थित है, वह अपनी धुरी पर इस प्रकार घूम रही है कि इसका एक चक्कर 20 करोड़ वर्ष में पूरा होता है।

अंतरिक्ष विज्ञानियों के अनुमान के अनुसार ब्रह्मांड 5 सौ मिलियन (1 मिलियन बराबर 10 लाख) आकाशगंगाओं पर आधारित है और प्रत्येक आकाशगंगा में 1 लाख मिलियन या इससे कम ज़्यादा सितारे पाए जाते हैं। हमारी आकाशगंगा 'मिल्की वे' जिसके एक हिस्से को हम रात के समय सफ़ेद धारी के रूप में देखते हैं, उसका क्षेत्रफल 1 लाख प्रकाश वर्ष है और हम धरती पर रहने वाले आकाशगंगा के केंद्र से 30 हज़ार प्रकाश वर्ष की दूरी पर हैं। फिर यह आकाशगंगा एक और

बड़ी आकाशगंगा का अंश है, जिसमें इसी प्रकार की 17 आकाशगंगाएँ हरकत कर रही हैं और पूरे समूह का व्यास 20 लाख प्रकाश वर्ष है।

इन समस्त गतिविधियों के साथ एक और हरकत जारी है और वह यह कि समस्त ब्रह्मांड ग़ुब्बारे की तरह चारों ओर फैल रहा है। हमारा सूरज भयावह तेज़ी के साथ चक्कर खाकर घूमता हुआ 12 मील प्रति सेकंड की रफ़्तार से अपनी आकाशगंगा के बाहरी किनारे की ओर निरंतर भाग रहा है और अपने साथ सौर व्यवस्था के सभी अधीनस्थों को भी लिये जा रहा है। इसी प्रकार समस्त सितारे अपने घूमने को क़ायम रखते हुए किसी-न-किसी ओर भाग रहे हैं। किसी के भागने की गति 8 मील प्रति सेकंड है, किसी की 33 मील प्रति सेकंड और किसी की 84 मील प्रति सेकंड। इसी प्रकार समस्त सितारे अत्यंत तीव्र गति के साथ दूर भागे चले जा रहे हैं।

यह सारी गतिविधि आश्चर्यजनक रूप से अति व्यवस्थित और नियमपूर्वक हो रही है। न इनमें कोई परस्पर टकराव होता है और न गति में कोई अंतर पड़ता है। धरती की चाल सूर्य के चारों ओर अत्यंत व्यवस्थित है। इसी प्रकार अपनी धुरी के ऊपर इसका चक्कर इतना सही है कि शताब्दियों के अंदर भी इसमें एक सेकंड का फ़र्क़ नहीं होता। धरती का उपग्रह जिसे चाँद कहते हैं, इसका चक्कर भी पूरी तरह निर्धारित है। इसमें जो थोड़ा-सा फ़र्क़ होता है, वह भी हर 18.5 वर्ष के बाद बड़ी दुरुस्तगी के साथ दोहरा दिया जाता है। यह सभी आकाशीय पिंडों का हाल है, यहाँ तक कि अंतरिक्ष विज्ञानियों के अनुमान के अनुसार अधिकतर अंतरिक्षीय चक्कर के दौरान एक पूरी आकाशगंगीय व्यवस्था, जो अरबों गतिवान ग्रहों पर आधारित होती है, दूसरी आकाशगंगीय व्यवस्था में हरकत करती हुई प्रवेश करती है और फिर इससे निकल जाती है, लेकिन आपस में किसी प्रकार

का टकराव नहीं होता। इस महान आश्चर्यजनक व्यवस्था को देखकर बुद्धि को स्वीकार करना पड़ता है कि यह अपने आप स्थापित नहीं है, बल्कि कोई असाधारण शक्ति है, जिसने इस अथाह व्यवस्था को स्थापित किया है।

यही नियंत्रण और व्यवस्था, जो बड़ी-बड़ी दुनियाओं के बीच नज़र आती है, वही छोटी दुनियाओं में भी अति पूर्ण रूप से मौजूद है। अब तक की जानकारी के अनुसार सबसे छोटी दुनिया एटम है। एटम इतना छोटा होता है कि किसी भी सूक्ष्मदर्शी यंत्र से नज़र नहीं आता, हालाँकि आधुनिक सूक्ष्मदर्शी किसी चीज़ को लाखों गुणा बढ़ाकर दिखाने की क्षमता रखता है। एटम की वास्तविकता इंसान के देखने की शक्ति की दृष्टि से 'कोई चीज़ नहीं' से अधिक नहीं, लेकिन इस अत्यंत छोटे कण के अंदर आश्चर्यजनक रूप से हमारी सौर व्यवस्था की तरह एक ज़बरदस्त परिसंचारणीय व्यवस्था मौजूद है। एटम विद्युत कणों के एक समूह का नाम है, मगर यह विद्युत कण एक-दूसरे से मिले हुए नहीं होते, बल्कि इनके बीच एक रिक्त जगह होती है। सीसे का एक टुकड़ा, जिसमें एटमी कण काफ़ी सख़्त और मज़बूती के साथ आपस में जकड़े हुए होते हैं, यह विद्युत कण सघनता यानी जगह के सौ करोड़ भागों में से एक भाग बड़ी मुश्किल से घेरते हैं, शेष भाग बिल्कुल ख़ाली होते हैं। अगर एटम का न्यूक्लियस एक टेबल टेनिस की गेंद के साइज़ का हो तो इसमें और इलेक्ट्रॉन के बीच में एक किलोमीटर का फ़ासला होगा।

एटम के नकारात्मक विद्युत कण (negative particles) जो इलेक्ट्रॉन कहलाते हैं, वह सकारात्मक विद्युत कणों (positive particles) के चारों ओर घूमते हैं, जिन्हें प्रोटोन कहा जाता है। यह इलेक्ट्रॉन, जो रोशनी की किरण के एक भ्रमात्मक बिंदु से ज़्यादा

हैसियत नहीं रखते अपने केंद्र के गिर्द उसी प्रकार परिक्रमा करता हैं, जैसे धरती अपने दायरे में सूरज के चारों ओर परिक्रमा करती है और यह परिक्रमा इतनी तेज़ होती है कि इलेक्ट्रॉन की किसी एक स्थान पर कल्पना नहीं की जा सकती, बल्कि ऐसा महसूस होता है कि वह एक सेकंड में हज़ारों अरब चक्कर लगा लेता है।

यह अकल्पनीय और अदृश्य प्रबंधन अगर विज्ञान के अनुमान में इसलिए आ जाता है कि इसके बग़ैर एटम की क्रिया की स्पष्टता नहीं की जा सकती, तो ठीक इसी दलील से आख़िर एक ऐसे व्यवस्थापक की कल्पना क्यों नहीं की जा सकती, जिसके बग़ैर एटम के इस प्रबंधन का उपस्थित होना असंभव है।

टेलीफ़ोन की लाइनों में तारों की जटिल व्यवस्था देखकर हमें आश्चर्य होता है, हमें अचंभा होता है, जब हम देखते हैं कि लंदन से मेलबोर्न के लिए एक कॉल कुछ मिनट में पूरी हो जाती है; मगर यहाँ एक और दूरसंचार प्रणाली है, जो इससे कहीं अधिक विशाल और इससे कहीं अधिक जटिल है। यह हमारी अपनी स्नायु प्रणाली (nervous system) है, जिसे क़ुदरत (nature) ने स्थापित किया है। इस संचार तंत्र पर रात-दिन करोड़ों सूचनाएँ इधर-उधर दौड़ती रहती हैं, जो दिल को बताती हैं कि वह कब धड़के, वे विभिन्न अंगों को आदेश देती हैं कि वे कब हरकत करें, वे फेफड़ों से कहती हैं कि वे कैसे अपना काम करें। अगर शरीर के अंदर यह संचार प्रणाली न हो तो हमारा पूरा अस्तित्व अस्त-व्यस्त चीज़ों का समूह बन जाए, जिनमें से हर एक अलग-अलग अपने रास्ते पर चल रहा हो।

इस संचार व्यवस्था का केंद्र इंसान का मस्तिष्क है। आपके दिमाग़ के अंदर लगभग एक हज़ार मिलियन स्नायु कोशिकाएँ (nerve cells) हैं। हर ख़ाने से बहुत बारीक तार निकलकर समस्त शरीर के अंदर फैले

हुए होते हैं, जिन्हें स्नायु तंतु (nerve fibers) कहते हैं। इन पतले तंतुओं पर सूचना प्राप्त करने और आदेश भेजने की एक व्यवस्था लगभग 70 मील प्रति घंटा की रफ़्तार से दौड़ती रहती है। इन्हीं स्नायुओं के द्वारा हम चखते हैं, सुनते हैं, देखते हैं, अनुभूति करते हैं और सारा अमल करते हैं। जीभ में तीन हज़ार स्वाद कलियाँ (taste buds) हैं, जिनमें हर एक अपने अलग स्नायु तार के द्वारा दिमाग़ से जुड़ी हुई है, उन्हीं के द्वारा वह हर प्रकार के स्वादों को महसूस करती हैं। कान में एक लाख की संख्या में श्रवण ख़ाने होते हैं, उन्हीं ख़ानों से एक अत्यंत जटिल क्रिया के द्वारा हमारा दिमाग़ सुनता है। हर आँख में 130 मिलियन लाइट रिसेप्टर्स (light receptors) होते हैं, जो आकृति समूह को मस्तिष्क में भेजते हैं। हमारी समस्त त्वचा में संवेदनशील तंतुओं का एक जाल बिछा हुआ है। अगर एक गर्म चीज़ त्वचा के सामने लाई जाए तो लगभग 30 हज़ार गर्म कोशिकाएँ उसकी अनुभूति करके तुरंत मस्तिष्क को इसकी सूचना देती हैं। इसी प्रकार त्वचा में 2 लाख 50 हज़ार ख़ाने ऐसे हैं, जो ठंडी चीज़ों की अनुभूति करते हैं। जब कोई ठंडी चीज़ शरीर से टकराती है तो दिमाग़ उसकी सूचना से भर जाता है, शरीर काँपने लगता है, शरीर की रगें यानी शिराएँ फैल जाती हैं, तुरंत और अधिक रक्त इन शिराओं में दौड़कर आता है, ताकि अधिक गर्मी पहुँचाई जा सके। अगर हम भीषण गर्मी से दो-चार हों तो गर्मी का सूचनावाहक तंत्र मस्तिष्क को सूचित करता है और 3 मिलियन पसीने की ग्रंथियाँ (glands) एक शीत तरल पदार्थ बाहर निकालना आरंभ कर देती हैं।

स्नायु तंत्र (nervous system) के कई विभाजन हैं। इनमें से एक स्वसंचालित शाख़ा (autonomic branch) है। यह ऐसे कार्य करती है, जो स्वतः ही शरीर के अंदर होते रहते हैं, जैसे— पाचन, साँस लेना और दिल की हरकत आदि। फिर इस स्नायु शाख़ के भी दो भाग हैं— एक

का नाम है संवेदी तंत्रिका तंत्र (sympathetic nervous system), जो कि हरकत पैदा करता है और दूसरा परानुकंपी तंत्रिका तंत्र (para-sympathetic nervous system) है, जो रोक का काम करता है। अगर शरीर पूरा-का-पूरा पहले के क़ाबू में चला जाए, तो उदाहरण के रूप में— हृदय की गति इतनी तेज़ हो जाए तो मौत आ जाए और अगर बिल्कुल दूसरे का अधिकार हो जाए तो हृदय की गति ही रुक जाए। दोनों शाख़ें अत्यंत स्वस्थता के साथ मिलकर अपने-अपने काम करती हैं। जब दबाव के समय तत्काल ताक़त की ज़रूरत होती है तो संवेदी तंत्रिका तंत्र को प्रभुत्व प्राप्त हो जाता है और दिल व फेफड़े तेज़ी से काम करने लगते हैं। इसी प्रकार नींद के समय परानुकंपी तंत्रिका तंत्र का प्रभुत्व होता है, जबकि वह समस्त शारीरिक गतिविधियों को मौन कर देता है। (अधिक विस्तार के लिए रीडर डाइजेस्ट; अक्तूबर, 1956 देखें)

इस प्रकार के असंख्य पहलू हैं और इसी प्रकार ब्रह्मांड की हर चीज़ में एक शक्तिशाली व्यवस्था स्थापित है, जिसके सामने इंसानी मशीनों की श्रेष्ठ से श्रेष्ठ व्यवस्था भी कमतर है और अब क़ुदरत की नक़ल विज्ञान का एक स्थायी विषय बन चुका है। इससे पहले विज्ञान का क्षेत्र सिर्फ़ यह समझा जाता था कि प्रकृति में जो शक्तियाँ छुपी हुई हैं, उनकी खोज करके उनका इस्तेमाल किया जाए, मगर अब क़ुदरत के प्रबंधन को समझकर उनकी यांत्रिक नक़ल को विशेष महत्ता दी जा रही है। इस प्रकार एक नया ज्ञान अस्तित्व में आया है, जिसे बायोनिक्स (bionics) कहते हैं। बायोनिक्स या जैविक प्रणाली (biological system) और तरीक़ों का इस उद्देश्य से अध्ययन करती है कि जो जानकारियाँ प्राप्त हों, उनका इंजीनियरिंग की समस्याओं का निराकरण करने में इस्तेमाल किया जाए।

क़ुदरत की नक़ल करने के इस प्रकार के उदाहरण टेक्नोलॉजी में पाए जाते हैं, जैसे कैमरा वास्तव में मूल रूप से आँख की यांत्रिकी

नक़ल है। कैमरे का लैंस (lens) आँख के गोलक (eye ball) का बाहरी पर्दा है। झिल्ली (diaphram) पर परितारिका या आँख की पुतली (iris) है और प्रकाश से प्रभावित होने वाली फ़िल्म आँख का पर्दा है, जिसमें परछाईं देखने के लिए डोरे और नुकीली शक्लें होती हैं। मास्को यूनिवर्सिटी में सुनाई देने वाली ध्वनि तरंगों (infrasonic vibrations) को मालूम करने और उसे मापने का एक नमूने का यंत्र तैयार किया गया है, जो तूफ़ान आने की सूचना 12 घंटे से 15 घंटे पहले तक दे देता है। यह प्रचलित यंत्रों से 5 गुणा अधिक शक्तिशाली है। इसका विचार किसने पैदा किया? जैली फिश ने। इंजीनियरों ने इसके अंगों की नक़ल की, जो सुनाई देने वाली ध्वनि तरंगों को अनुभूत करने में बड़े संवेदनशील होते हैं। (Soviet Land; December, 1963)

***

कोई समझदार यह कहने की ग़लती नहीं करेगा कि कैमरा इत्तिफ़ाक़ से बनकर तैयार हो गया, मगर इसके बावजूद दुनिया के बहुत से होशमंद या चेतनाशील यह विश्वास रखते हैं कि आँख मात्र संयोग से अस्तित्व में आ गई।

***

इस प्रकार के और बहुत से उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। प्रकृति विज्ञान और टेक्नोलॉजी वास्तव में नई कल्पनाओं की नक़ल क़ुदरत के जीवित नमूनों से प्राप्त करती है। बहुत-सी समस्याएँ जो वैज्ञानिकों के विचारों पर बोझ बनी हुई हैं, क़ुदरत उन्हें मुद्दतों पहले हल कर चुकी है। फिर जिस प्रकार कैमरे और टेलीप्रिंटर की एक व्यवस्था इंसानी दिमाग़ के बग़ैर अस्तित्व में नहीं आ सकती, इसी प्रकार यह भी अकल्पनीय है कि ब्रह्मांड की अति जटिल व्यवस्था किसी बुद्धि या दिमाग़ के बग़ैर अपने आप स्थापित हो। ब्रह्मांड का प्रबंधन प्राकृतिक रूप से एक इंजीनियर और एक प्रबंधक की माँग करता है और इसी का

नाम ईश्वर है। हमें जो बुद्धि मिली है, वह प्रबंधक के बग़ैर प्रबंधन की कल्पना नहीं कर सकती। इसलिए ग़ैर-बुद्धिसम्मत बात यह नहीं है कि हम ब्रह्मांडीय प्रबंध के लिए एक प्रबंधक को स्वीकार करें, बल्कि यह ग़ैर-बुद्धिसम्मत रवैया होगा कि हम इस प्रबंधन के प्रबंधक को मानने से इनकार कर दें। हक़ीक़त यह है कि इंसानी ज़ेहन के पास ईश्वर के इनकार के लिए कोई बौद्धिक आधार नहीं है।

(iii) ब्रह्मांड कूड़ा-करकट के ढेर के जैसा नहीं है, बल्कि इसमें आश्चर्यजनक मौलिकता है। यह बात स्पष्ट रूप से इस बात का सबूत है कि इसकी उत्पत्ति व युक्ति में कोई ज़ेहन काम कर रहा है, ज़ेहनी यानी बौद्धिक क्रिया के बग़ैर किसी चीज़ में ऐसी मौलिकता पैदा नहीं हो सकती। मात्र अंधे भौतिक व्यवहार से इत्तिफ़ाक़ी तौर पर अस्तित्व में आ जाने वाले ब्रह्मांड में निरंतर व्यवस्था और मौलिकता पाए जाने का कोई कारण नहीं हो सकता। ब्रह्मांड इतने आश्चर्यजनक रूप से उपयुक्त और अनुकूल स्थिति में है कि यह अकल्पनीय है कि यह अनुकूलता और उपयुक्तता स्वतः मात्र संयोगवश घटित हो गई हो। चाडवाश के शब्दों में—

"एक व्यक्ति चाहे वह इस ईश्वर को मानने वाला हो या उसका इनकार करने वाला हो, उचित रूप से उससे यह पूछा जा सकता है कि वह दिखाए कि संयोग का संतुलन इसके पक्ष में किस प्रकार हो जाता है।" (The Evidence of God, p.88)

धरती पर जीवन के पाए जाने के लिए भिन्न परिस्थितियों की उपस्थिति आवश्यक है कि गणितीय रूप से यह बिल्कुल असंभव है कि वह अपने विशिष्ट अनुपात में मात्र संयोगवश धरती के ऊपर इकट्ठा हो जाएँ। अब अगर ऐसी परिस्थितियाँ पाई जाती हैं तो अनिवार्यतः यह मानना होगा कि प्रकृति में कोई बदलाव लाने वाला विवेक मार्गदर्शक

के रूप में मौजूद है, जो इन परिस्थितियों को पैदा करने का कारण है।

धरती अपने साइज़ की दृष्टि से ब्रह्मांड में एक कण के बराबर हैसियत नहीं रखती, मगर इसके बाद भी वह हमारी समस्त ज्ञात दुनियाओं में महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसके ऊपर आश्चर्यजनक रूप से वह परिस्थितियाँ उपलब्ध हैं, जो हमारी जानकारी के अनुसार विशाल ब्रह्मांड में कहीं नहीं पाई जातीं।

सबसे पहले धरती के साइज़ को लीजिए। अगर इसका आकार कम या अधिक होता तो इस पर जीवन असंभव हो जाता, जैसे— धरती अगर चाँद जितनी छोटी होती यानी इसका व्यास मौजूदा व्यास की समानता से 1/4 होता तो इसका गुरुत्वाकर्षण बल धरती के वर्तमान गुरुत्वाकर्षण बल का 1/6 रह जाता। गुरुत्वाकर्षण की इस कमी का नतीजा यह होता कि हमारी दुनिया जल और वायु को अपने ऊपर रोक न सकती, जैसा कि आकार की इसी कमी से चाँद में घटित हुआ है। चाँद पर इस समय न तो पानी है और न कोई वायु। वायु का ख़ोल न होने के कारण रात के समय बेहद ठंडा हो जाता है और दिन के समय भट्टी की तरह जलने लगता है। इसी प्रकार कम आकार की धरती जब गुरुत्वाकर्षण की कमी के कारण पानी की उस बड़ी अत्यधिक मात्रा को रोक न सकती, जो धरती पर मौसमी संतुलन को बाक़ी रखने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है और इसी आधार पर एक वैज्ञानिक ने इसे महान संतुलित पहिया (great balanced wheel) का नाम दिया है और वायु का मौजूदा आवरण उड़कर वातावरण में गुम हो जाता तो इसका हाल यह होता कि इसकी सतह का तापमान चढ़ता तो चरम सीमा तक चढ़ जाता और गिरता तो चरम सीमा तक गिर जाता। इसके विपरीत अगर धरती का व्यास वर्तमान की अपेक्षा दोगुना होता तो इसका गुरुत्वाकर्षण बल भी दोगुना हो जाता। गुरुत्वाकर्षण की इस वृद्धि का नतीजा यह होता कि अधिकतर वायु, जो इस समय धरती के ऊपर 10

मील की बुलंदी तक पाई जाती है, वह खिंचकर बहुत नीचे तक सिमट जाती। इसके दबाव में प्रति वर्ग इंच 15 से 30 पौंड की वृद्धि हो जाती, जिसकी प्रतिक्रिया विभिन्न रूपों में जीवन के लिए अति घातक साबित होती और अगर धरती सूरज जितनी बड़ी होती और इसकी सघनता शेष रहती तो इसका गुरुत्वाकर्षण डेढ़ सौ गुणा बढ़ जाता, वायुमंडल की मोटाई 500 मील के बजाय सिर्फ़ चार मील रह जाती। नतीजा यह होता कि वायु का दबाव एक टन प्रति वर्ग इंच तक जा पहुँच जाता। इस असाधारण दबाव के कारण जीवित शरीरों का विकसित होना संभव न रहता। एक पौंड वज़नी जानवर का वज़न 150 पौंड हो जाता। इंसान का शरीर घटकर गिलहरी के बराबर हो जाता और इसमें किसी प्रकार का बौद्धिक जीवन असंभव हो जाता, क्योंकि इंसानी बौद्धिकता प्राप्त करने के लिए अत्यधिक मात्रा में तंत्रिका तंतुओं की उपस्थिति आवश्यक है और इस प्रकार के फैले हुए तंतुओं की व्यवस्था एक विशेष श्रेणी के आकार में ही पाई जा सकती है। (The Evidence of God)

देखने में हम ज़मीन के ऊपर हैं, लेकिन ज़्यादा सही बात यह है कि हम इसके नीचे सिर के बल लटके हुए हैं। धरती मानो अंतरिक्ष में लटकी हुई एक गेंद है, जिसके चारों ओर इंसान बसते हैं। कोई व्यक्ति भारत की धरती पर खड़ा हो तो अमेरिका के लोग बिल्कुल इसके नीचे होंगे और अमेरिका में खड़ा हो तो भारत में इसके नीचे होगा। फिर धरती ठहरी हुई नहीं है, बल्कि एक हज़ार मील प्रति घंटा की गति से निरंतर घूम रही है। ऐसी स्थिति में धरती की सतह पर हमारा अंजाम वही होना चाहिए, जैसे किसी साइकिल के पहिए पर कंकरियाँ रखकर तेज़ी से घुमा दिया जाए, लेकिन ऐसा नहीं होता, क्योंकि एक विशेष अनुपात से धरती का गुरुत्वाकर्षण और वायु का दबाव हमें ठहराए हुए है। धरती के अंदर असाधारण गुरुत्वाकर्षण बल है, जिसके कारण वह समस्त चीज़ों को अपनी ओर खींच रही है और

ऊपर से निरंतर वायु का दबाव पड़ता है। इसी दोतरफ़ा क्रिया ने हमें धरती के गोले पर चारों ओर लटका रखा है। वायु के द्वारा जो दबाव पड़ता है, वह शरीर के प्रत्येक वर्ग इंच पर लगभग साढ़े सात किलो तक मालूम किया गया है यानी एक औसत व्यक्ति के सारे शरीर पर लगभग 280 मन यानी 11 टन से अधिक का दबाव। आदमी इस वज़न को महसूस नहीं करता, क्योंकि वायु शरीर के चारों ओर है। दबाव हर ओर से पड़ता है, इसलिए आदमी को महसूस नहीं होता, जैसे पानी में डुबकी लगाने के दौरान होता है।

इसके अतिरिक्त वायु, जो विभिन्न गैसों के विशिष्ट मिश्रण का नाम है, इसके असंख्य लाभ हैं, जिनका वर्णन किसी पुस्तक में संभव नहीं।

न्यूटन अपने अवलोकन और अध्ययन से इस नतीजे पर पहुँचा था कि समस्त पिंड (celestial bodies) एक-दूसरे को अपनी ओर खींचते हैं, लेकिन पिंड क्यों एक-दूसरे को खींचते हैं, इस प्रश्न का उसके पास कोई उत्तर नहीं था। अतः उसने कहा था कि मैं इसकी कोई कारणता पेश नहीं कर सकता। ए०न० व्हाइटहेड ने इसका हवाला देते हुए कहा है—

"न्यूटन ने यह कहकर एक महान दर्शनशास्त्रीय सच्चाई को अभिव्यक्त किया है कि प्रकृति अगर बग़ैर आत्मा प्रकृति है तो वह हमें औचित्य नहीं दे सकती, वैसे ही जैसे कोई मृत आदमी कोई घटना नहीं बता सकता। समस्त बुद्धिसम्मत और तार्किक स्पष्टीकरण अंतिम रूप से एक उद्देश्य का प्रकटीकरण है, जबकि मृत ब्रह्मांड में ऐसी कोई कल्पना नहीं की जा सकती।" (The Age of Analysis, p.85)

व्हाइटहेड के शब्दों को आगे बढ़ाते हुए मैं कहूँगा कि ब्रह्मांड अगर किसी विवेकी हस्ती के प्रबंधनगत नहीं है तो इसके अंदर इतनी मौलिकता क्यों पाई जाती है।

धरती अपनी धुरी पर 24 घंटे में एक चक्कर पूरा कर लेती है या यूँ कहिए कि वह अपनी धुरी (axis) पर 1,000 मील प्रति घंटा की रफ़्तार से चल रही है। मान लें इसकी रफ़्तार 2 सौ मील प्रति घंटा हो जाए और यह बिल्कुल संभव है, ऐसी स्थिति में हमारे दिन और हमारी रातें वर्तमान की तुलना से 10 गुणा अधिक लंबे हो जाएँगे। गर्मियों का सख़्त सूरज हर दिन वनस्पतियों को जला देगा और जो बचेगा, वह लंबी रात की ठंडक में पाले की भेंट चढ़ जाएगा। सूरज जो इस समय हमारे लिए जीवन का मूल स्रोत है, इसकी सतह पर 12 हज़ार डिग्री फारेनहाइट का टेंपरेचर है और धरती से इसका फ़ासला लगभग 9 करोड़ 30 लाख मील है और यह फ़ासला आश्चर्यजनक रूप से निरंतर क़ायम है। यह घटना हमारे लिए बेहद महत्व रखती है, क्योंकि अगर यह दूरी घट जाए, जैसे सूर्य आधे जितना क़रीब आ जाए तो धरती पर इतनी गर्मी उत्पन्न हो जाएगी कि इस गर्मी से काग़ज़ जलने लगे और अगर वर्तमान फ़ासला दोगुना हो जाए तो इतनी ठंडक पैदा हो कि जीवन बाक़ी न रहे। यही स्थिति उस समय पैदा होगी, जब वर्तमान सूरज की जगह कोई दूसरा असाधारण सितारा आ जाए। जैसे एक बहुत बड़ा सितारा है, जिसकी गर्मी हमारे सूरज से 10 हज़ार गुणा अधिक है, अगर वह सूरज के स्थान पर होता तो धरती को आग की भट्टी बना देता।

धरती 33 डिग्री का कोण बनाती हुई अंतरिक्ष में झुकी हुई है। यह झुकाव हमें मौसम देता है। इसके नतीजे में धरती का अधिक-से-अधिक भाग बसने योग्य हो गया है और विभिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ और पैदावार प्राप्त होती हैं। अगर धरती इस प्रकार झुकी हुई न होती तो उत्तर व दक्षिण ध्रुव पर हमेशा अंधकार छाया रहता। समुद्र का वाष्प उत्तर व दक्षिण की ओर यात्रा करता और धरती पर या तो बर्फ़ के ढेर होते या रेगिस्तानी मैदान। इस प्रकार के और बहुत से प्रभाव होते, जिसके नतीजे में बग़ैर झुकी हुई धरती पर जीवन असंभव था।

यह कितनी अकल्पनीय बात है कि तत्त्व यानी पदार्थ ने स्वयं को अपने आप इतना योग्य और अनुकूल रूप में व्यवस्थित कर लिया!

अगर वैज्ञानिकों का अनुमान सही है कि धरती सूर्य से टूटकर निकली है तो इसका अर्थ यह है कि प्रारंभ में धरती का तापमान वही रहा होगा, जो सूर्य का है यानी 12 हज़ार डिग्री फारेनहाइट। इसके बाद वह धीरे-धीरे ठंडी होनी आरंभ हुई। ऑक्सीजन और हाइड्रोजन का मिलन उस समय तक संभव नहीं हो सकता, जब तक धरती का तापमान घटकर 4 हज़ार डिग्री पर न आ जाए। इसी अवसर पर दोनों गैसों के परस्पर मिलने से पानी बना। इसके बाद करोड़ों वर्ष तक धरती की सतह और वातावरण में ज़बरदस्त क्रांतियाँ होती रहीं, यहाँ तक कि संभवतः 10 लाख वर्ष पहले धरती अपने मौजूदा रूप में तैयार हुई। धरती के वातावरण में जो गैसें थीं, उनका एक बड़ा भाग अंतरिक्ष में चला गया, एक भाग ने पानी के मिश्रण का रूप धारण कर लिया, एक भाग धरती की समस्त चीज़ों में समाहित हो गया और एक भाग वायु के रूप में हमारे वातावरण में बाक़ी रह गया, जिसका अधिकतर अंश ऑक्सीजन और नाइट्रोजन है। यह वायु अपनी सघनता (density) की दृष्टि से धरती का लगभग 10 लाखवाँ भाग है— ऐसा क्यों नहीं हुआ कि सभी गैसें समाहित हो जातीं या ऐसा क्यों नहीं हुआ कि वर्तमान की तुलना में वायु की मात्रा बहुत अधिक होती। दोनों रूपों में इंसान जीवित नहीं रह सकता था या अगर बढ़ी हुई गैसों के हज़ारों पौंड प्रति वर्ग इंच बोझ के नीचे जीवन पैदा भी होता तो यह असंभव था कि वह इंसान के रूप में उन्नति पा सके।

धरती की ऊपरी परत अगर सिर्फ़ 10 फ़ुट मोटी होती तो हमारे वातावरण में ऑक्सीजन का वजूद न होता, जिसके बग़ैर प्राणी जीवन असंभव है। इसी प्रकार अगर समुद्र कुछ फ़ुट गहरे होते तो वे कार्बन-

डाई-ऑक्साइड और ऑक्सीजन को समाहित कर लेते और धरती की सतह पर किसी प्रकार की वनस्पति जीवित नहीं रह सकतीं। अगर धरती के ऊपर का वायुमंडल वर्तमान की तुलना में सौम्य होता तो उल्का पिंड यानी चमकदार टूटते तारे, जो हर दिन औसतन दो करोड़ की संख्या में ऊपरी वातावरण में दाख़िल होते हैं और रात के समय हमें जलते हुए दिखाई देते हैं, वे धरती के हर भाग में गिरते। ये उल्का पिंड 6 से 40 मील प्रति सेकंड की गति से यात्रा करते हैं, वे धरती के ऊपर हर ज्वलनशील तत्त्व को जला देते और धरती की सतह को छलनी कर देते। उल्का पिंड की बंदूक़ की गोली से 90 गुणा अधिक गति आदमी जैसे प्राणी को मात्र अपनी गर्मी से टुकड़े कर देती, मगर वायुमंडल अपने अति उपयुक्त घनत्व के कारण हमें इस अग्नि की बौछारों से सुरक्षित रखता है। वायुमंडल ठीक इतनी सघनता रखता है कि सूरज की रासायनिक महत्ता रखने वाली विकिरणशील किरणें (actinic rays) उसी उपयुक्त मात्रा से धरती पर पहुँचती हैं, जितनी वनस्पतियों को अपने जीवन के लिए आवश्यक हैं, जिससे हानिकारक बैक्टीरिया मर सकते हैं, जिससे विटामिन तैयार हो सकते हैं आदि-आदि।

मात्रा का इस प्रकार ठीक हमारी आवश्यकताओं के अनुकूल होना कितना अद्भुत है। धरती का ऊपरी वातावरण 6 गैसों का समूह है, जिसमें लगभग 78 प्रतिशत नाइट्रोजन और 21 प्रतिशत ऑक्सीजन है। शेष गैसें निम्न अनुपात में पाई जाती हैं। इस वातावरण से धरती की सतह पर लगभग 15 पौंड प्रति वर्ग इंच दबाव पड़ता है, जिसमें ऑक्सीजन का हिस्सा 3 पौंड प्रति वर्ग इंच है। वर्तमान ऑक्सीजन का शेष हिस्सा धरती की तहों में समाहित है और दुनिया के समस्त जल का 8/10 बनाता है। ऑक्सीजन सभी शुष्की के जानवरों के लिए साँस लेने का माध्यम है और इस उद्देश्य को वातावरण के अतिरिक्त कहीं और से प्राप्त नहीं किया जा सकता।

यहाँ यह प्रश्न पैदा होता है कि यह अति गतिशील गैसें किस प्रकार आपस में मिश्रित हुईं और ठीक उस मात्रा और अनुपात में वातावरण के अंदर बाक़ी रह गईं, जो जीवन के लिए आवश्यक था। उदाहरण के लिए— ऑक्सीजन अगर 21 प्रतिशत के स्थान पर 50 प्रतिशत या इससे अधिक मात्रा में वातावरण का अंश होती तो धरातल की समस्त चीज़ों में ज्वलनशीलता का गुण इतना बढ़ जाता कि एक पेड़ में आग लगने से सारा जंगल भक से उड़ जाता। इसी प्रकार अगर इसका अनुपात घटकर 10 प्रतिशत रहता तो संभव है कि जीवन शताब्दियों के बाद इससे सामंजस्य धारण कर लेता, लेकिन इंसानी सभ्यता मौजूदा रूप में प्रगति नहीं कर सकती थी और अगर ऑक्सीजन भी शेष ऑक्सीजन की तरह धरती की चीज़ों में समाहित हो गई होती तो प्राणी जीवन सिरे से असंभव हो जाता।

ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, कार्बन-डाई-ऑक्साइड और कार्बन गैसें अलग-अलग और विभिन्न रूपों में मिश्रित होकर जीवन के अत्यंत प्रमुख तत्त्व हैं। यही वह आधार हैं, जिन पर जीवन क़ायम है। इसकी एक अरब में से एक की भी संभावना नहीं है कि वह समस्त एक समय में किसी एक ग्रह पर इस विशिष्ट अनुपात के साथ इकट्ठा हो जाएँ। एक भौतिकशास्त्री के शब्दों में—

"Science has no explanation to offer for the fact, and to say it is accidental is to defy mathematics."

"विज्ञान के पास इन तथ्यों की स्पष्टता के लिए कोई चीज़ नहीं है और इसे इत्तिफ़ाक़ कहना गणित से कुश्ती लड़ने के समानार्थ है।"

हमारी दुनिया में असंख्य ऐसी घटनाएँ मौजूद हैं, जिनकी स्पष्टता इसके बग़ैर नहीं हो सकतीं कि इसकी उत्पत्ति में एक अत्यंत श्रेष्ठ बुद्धि का दख़ल स्वीकार किया जाए।

पानी की भिन्न अति महत्वपूर्ण विशिष्टताओं में से एक यह है कि बर्फ़ का घनत्व (density) पानी से कम होता है। पानी वह अकेला ज्ञात पदार्थ है, जो जमने के बाद हल्का हो जाता है। यह चीज़ जीवन के स्थायित्व के लिए विशेष महत्व रखती है। इसके कारण यह संभव होता है कि बर्फ़ पानी की सतह पर रहती है और नदियों, झीलों और समुद्रों की तली में नहीं बैठ जाती, वरना सारा पानी ठोस होकर जम जाए। यह पानी की सतह पर एक ऐसी प्रहरी तह बन जाती है कि इसके नीचे का तापमान जमाव बिंदु (freezing point) से ऊपर ही ऊपर रहता है। इस अद्वितीय विशेषता के कारण मछलियाँ और दूसरे जलीय जानवर जीवित रहते हैं। इसके बाद जैसे ही बहार का मौसम आता है, बर्फ़ तुरंत पिघल जाती है। अगर पानी में यह गुण न होता तो विशेष रूप से ठंडे देशों के लोगों को बहुत बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता।

बीसवीं शताब्दी के आरंभ में जब अमेरिका में इनडोथिया नाम का रोग शाहबलूत (chestnut) के पेड़ों पर फैला और बड़ी तेज़ी से फैला तो बहुत से लोगों ने जंगल की छतरी में छेद देखकर कहा, "यह छेद अब नहीं भरेगा।" इन पेड़ों की श्रेष्ठता का अभी तक कोई बदल न था। यह उच्च श्रेणी की देर तक रहने वाली इमारती लकड़ी और इस प्रकार के दूसरे लाभों के लिए मशहूर थे। सन् 1900 में एशिया से इनडोथिया नाम की बीमारी का आगमन हुआ। उस समय तक यह जंगल का राजा माना जाता था, मगर अब जंगलों में यह पेड़ लगभग विलुप्त हो चुका है।

लेकिन जंगलों की यह दरारें जल्द ही भर गईं। कुछ दूसरे पेड़ जैसे ट्यूलिप अपने विकास के लिए शायद इन्हीं दरारों की प्रतीक्षा कर रहे थे। दरार पैदा होने से पहले तक यह पेड़ जंगलों का साधारण-सा अंश थे और कभी-कभार ही बढ़ते और फलते-फूलते थे, लेकिन अब शाहबलूत की अनुपस्थिति का किसी को आभास तक नहीं होता,

क्योंकि अब दूसरी तरह के पेड़ पूरी तरह उनकी जगह ले चुके हैं। यह दूसरे पेड़ साल भर में एक इंच घेरे में और छह फ़ुट लंबाई में बढ़ते हैं। इतनी तेज़ी से बढ़ने के अलावा उत्तम लकड़ी, जो विशेष रूप से बारीक परतों के काम आ सकती है, इनसे प्राप्त की जाती है।

यह इसी शताब्दी की घटना है। नागफनी की एक क़िस्म ऑस्ट्रेलिया में खेतों की बाड़ लगाने के लिए बोई गई। ऑस्ट्रेलिया में इस नागफनी का कोई दुश्मन कीड़ा नहीं था। अतः वह बहुत तेज़ी के साथ बढ़ना शुरू हो गई, यहाँ तक कि इंग्लैंड के बराबर क्षेत्र पर छा गई। वह शहरों और देहातों में आबादी के अंदर घुस गई, खेतों को वीरान कर दिया और कृषि को असंभव बना दिया। कोई भी युक्ति इसके विरुद्ध प्रभावी नहीं हो पा रही थी। नागफनी ऑस्ट्रेलिया के ऊपर एक ऐसी फ़ौज की तरह सवार थी, जिसका ऑस्ट्रेलिया के पास कोई तोड़ नहीं था। अंततः कीट विज्ञान (Entomology) के विद्वान दुनिया भर में इसका इलाज तलाश करने के लिए निकले, यहाँ तक कि उन्होंने एक ऐसे कीड़े की खोज की, जो सिर्फ़ नागफनी खाकर जीवित रहता था। इसके सिवा उसकी कोई ख़ुराक न थी। वह बहुत तेज़ी से अपनी नस्ल बढ़ाता था। इसी कीड़े ने ऑस्ट्रेलिया में नागफनी की पराजित न होने वाली फ़ौज पर क़ाबू पा लिया और अब वहाँ से उस मुसीबत का ख़ात्मा हो गया।

प्रकृति के प्रबंधन में यह नियंत्रण और संतुलन (checks and balance) के महान उपाय क्या किसी विवेकी योजना के बग़ैर स्वतः ही अस्तित्व में आ जाते हैं?

ब्रह्मांड में आश्चर्यजनक रूप से गणितीय अटलता पाई जाती है। यह ठहरा हुआ और विवेकहीन पदार्थ जो हमारे सामने है, इसका अमल अव्यवस्थित और अक्रमिक नहीं, बल्कि निश्चित क़ानूनों का

पाबंद है। 'पानी' का शब्द चाहे दुनिया के जिस क्षेत्र में और जिस समय भी बोला जाए, इसका एक ही अर्थ होगा— एक ऐसा मिश्रण जिसमें 11.1 प्रतिशत हाइड्रोजन और 88.9 प्रतिशत ऑक्सीजन है। एक वैज्ञानिक जब प्रयोगशाला में दाख़िल होकर पानी से भरे हुए एक प्याले को गर्म करता है तो वह थर्मामीटर के बग़ैर यह बता सकता है कि पानी का बॉइलिंग पॉइंट 100 डिग्री सेंटीग्रेड है। जब तक हवा का दबाव 760 mm रहे, अगर हवा का दबाव इससे कम हो तो इस तापमान को अस्तित्व में लाने के लिए कम शक्ति दरकार होगी, जो पानी के अणुओं को तोड़कर वाष्प का रूप देती है, इस प्रकार उबाल बिंदु 100 डिग्री से कम हो जाएगा। इसके विपरीत अगर हवा का दबाव 760 mm से अधिक हो तो उबाल बिंदु (boiling point) इसी लिहाज़ से अधिक हो जाएगा। यह प्रयोग इतनी बार आज़माया गया है कि इसे विश्वसनीय रूप से पहले से बताया जा सकता है कि पानी का बॉइलिंग क्या है। अगर पदार्थ और ऊर्जा की क्रिया में यह व्यवस्था और नियम न होता तो वैज्ञानिक अनुसंधानों और आविष्कारों के लिए कोई आधार न होता, क्योंकि फिर इस दुनिया में मात्र संयोगों की सत्ता होती और भौतिक विज्ञान के विद्वानों के लिए यह बताना संभव न रहता कि फ़लाँ क्रिया-पद्धति को दोहराने से फ़लाँ नतीजा पैदा होगा।

रसायन शास्त्र के क्षेत्र में नव-आगंतुक विद्यार्थी सबसे पहले जिस चीज़ का अवलोकन करता है, वह तत्त्वों में प्रबंधन और आवर्ती है। 100 वर्ष पहले एक रूसी रसायनशास्त्री मेंडलीफ़ ने एटॉमिक नंबरों के लिहाज़ से विभिन्न रासायनिक पदार्थों को क्रम दिया था, जिसे 'पीरियॉडिक टेबल' कहा जाता है। उस समय तक मौजूदा समस्त तत्त्वों की खोज नहीं हुई थी, इसलिए उसके नक़्शे में बहुत से तत्त्व के ख़ाने ख़ाली थे, जो ठीक अनुमान के अनुसार बाद में पूरे हो गए। इन नक़्शों में

सारे तत्त्व एटॉमिक नंबरों के तहत अपने-अपने विशिष्ट वर्गों में दर्ज किए जाते हैं। एटॉमिक क्रम से तात्पर्य सकारात्मक प्रोटोनों की वह संख्या है, जो एटम के केंद्र में मौजूद होती है और यही संख्या एक तत्त्व के एटम और दूसरे तत्त्व के एटम में अंतर पैदा कर देती है। हाइड्रोजन, जो सबसे साधारण तत्त्व है, इसके एटम के केंद्र में एक प्रोटोन होता है। हीलियम में दो और लीथियम में तीन भिन्न पदार्थों की पृष्ठ-सूची तैयार करना इसीलिए संभव हो सका कि इनमें आश्चर्यजनक रूप से एक गणितीय नियम कार्य करता है। प्रबंधन और क्रम का इससे बेहतर उदाहरण और क्या हो सकता है कि पदार्थ नंबर 101 की पहचान मात्र इसके 17 प्रोटोनों के अध्ययन से कर ली गई। प्रकृति के इस आश्चर्यजनक प्रबंधन को हम आवधिक संयोग (periodic chance) नहीं कहते, बल्कि इसे आवधिक नियम (Periodic Law) कहते हैं, लेकिन नक़्शा और नियम जो निश्चित रूप से व्यवस्थापक और योजनाकार की माँग करता हैं, नास्तिक इसका इनकार कर देते हैं। हक़ीक़त यह है कि आधुनिक विज्ञान अगर ईश्वर को न माने तो वह स्वयं अपनी खोज के एक अनिवार्य परिणाम से इनकार करेगा।

"11 अगस्त, 1999 को एक सूर्यग्रहण की घटना होगी, जो कोर्नवाल में पूर्ण रूप से देखा जा सकेगा।" यह मात्र एक काल्पनिक भविष्यवाणी नहीं है, बल्कि अंतरिक्ष विज्ञानी यह विश्वास रखते हैं कि सौर पद्धति की वर्तमान चक्र व्यवस्था के तहत इस ग्रहण का घटित होना निश्चित है।

जब हम आकाश में नज़र डालते हैं तो हम असंख्य सितारों को एक व्यवस्था में जुड़े देखकर चकित हो जाते हैं। अनगिनत शताब्दियों से इस विशाल अंतरिक्ष में जो महान गेंदें लटकी हुई हैं, वे एक ही निर्धारित मार्ग पर परिसंचरण (revolve) करती चली जा रही हैं। वे

अपनी कक्षाओं में इस प्रबंधन के साथ आती-जाती हैं कि इनके घटना स्थल और इनके बीच होने वाली घटनाओं का शताब्दियों पहले बिल्कुल सही रूप से अनुमान किया जा सकता है। पानी की एक तुच्छ बूँद से लेकर विशाल अंतरिक्ष में फैले हुए दूर-दराज़ के सितारों तक एक अद्वितीय व्यवस्था और नियंत्रण पाया जाता है। इनके कार्य में इतनी अधिक समानता है कि हम इस आधार पर नियमों को क्रमबद्ध करते हैं।

न्यूटन का गुरुत्वीय सिद्धांत आकाशीय पिंडों के परिसंचरण की स्पष्टता करता है। इसके नतीजे में ए०सी० एडम्स और यू०ले० वैरियर को वह आधार मिला, जिससे वह देखे बग़ैर एक ग्रह के अस्तित्व की भविष्यवाणी कर सके, जो इस समय तक अज्ञात था। अतः सितंबर, 1846 की एक रात को जब बर्लिन वेधशाला (observatory) की दूरबीन का रुख़ आसमान में इनके बताए हुए स्थान की ओर गया तो वास्तव में नज़र आया कि एक ऐसा ग्रह सौरमंडल में मौजूद है, जिसे हम अब नेपच्यून (Neptune) के नाम से जानते हैं।

यह कितनी अकल्पनीय बात है कि ब्रह्मांड में यह गणितीय अटलता स्वतः ही क़ायम हो गई है।

ब्रह्मांड की सूझ-बूझ व अर्थपूर्णता का एक पक्ष यह भी है कि इसके अंदर ऐसी संभावनाएँ रखी गई हैं कि इंसान आवश्यकता के समय अधिकार में लाकर इसे अपने लिए प्रयोग कर सके। उदाहरण के लिए— नाइट्रोजन के मामले को लीजिए। हवा के हर झोंके में नाइट्रोजन 78 प्रतिशत होता है। इसके अतिरिक्त बहुत से रासायनिक अंश हैं, जिनमें नाइट्रोजन शामिल होता है। उसे हम मिश्रित नाइट्रोजन कह सकते हैं। यही वह नाइट्रोजन है, जिसे पौधे इस्तेमाल करते हैं और जिनसे हमारे आहार का नाइट्रोजनी भाग तैयार होता है। अगर यह न हो तो इंसान और जानवर भूखे मर जाएँ।

सिर्फ़ दो तरीक़े हैं, जिनसे घुलने योग्य नाइट्रोजन मिट्टी में मिलकर खाद बनता है। अगर यह नाइट्रोजन मिट्टी में शामिल न हो तो कोई भी आहारीय पौधा न उगे। एक तरीक़ा जिससे यह नाइट्रोजन मिट्टी में शामिल होता है, वह विशिष्ट जीवाणु क्रिया (bacterial process) है। जीवाणु दाल के पौधों की जड़ों में भी रहते हैं और हवा से नाइट्रोजन लेकर इसे मिश्रित नाइट्रोजन का रूप देते रहते हैं। पौधा जब सूखकर नष्ट हो जाता है तो इस मिश्रित नाइट्रोजन का कुछ भाग ज़मीन में रह जाता है।

दूसरा माध्यम जिससे मिट्टी को नाइट्रोजन मिलता है, वह बिजली का कड़का है। हर बार जब बिजली की धारा वातावरण में से होकर गुज़रती है तो वह थोड़ी-सी ऑक्सीजन का नाइट्रोजन के साथ मिश्रण कर देती है, जो कि वर्षा के द्वारा हमारे खेतों में पहुँच जाता है। इस प्रकार जो नाइट्रोजन आसानी से मिल जाता है, उसका अनुमान वार्षिक एक एकड़ ज़मीन में पाँच पौंड है, जो कि 30 पौंड सोडियम नाइट्रेट के बराबर है।

(The Nature and Properties of Soils, Lyon Bockman and Brady)

यह दोनों तरीक़े बहरहाल अपर्याप्त थे और यही कारण है कि वह खेत जिनमें लंबे समय तक खेती होती रहती है, उनका नाइट्रोजन ख़त्म हो जाता है और इसीलिए किसान फ़सलों का उलटफेर करते रहते हैं। यह कितनी विचित्र बात है कि ऐसे चरण में जबकि जनसंख्या में वृद्धि और खेती की अधिकता के कारण मिश्रित नाइट्रोजन की कमी महसूस की जाने लगी थी और इंसान को भविष्य में अकाल के लक्षण नज़र आने लगे थे और यह सिर्फ़ इस शताब्दी के आरंभ की बात है कि ठीक इस समय उस तरीक़े की खोज कर ली गई, जिससे हवा के द्वारा कृत्रिम रूप से मिश्रित नाइट्रोजन बनाया जा सकता है। मिश्रित नाइट्रोजन बनाने

के लिए जो प्रयत्न किए गए, उनमें से एक यह था कि वातावरण में कृत्रिम रूप से बिजली की कड़क पैदा की गई। कहा जाता है कि हवा में बिजली की चमक पैदा करने के लिए लगभग तीन लाख हॉर्स पावर की शक्ति प्रयोग की गई और जैसा कि पहले से अनुमान किया जा चुका था, अल्प मात्रा में नाइट्रोजन तैयार हो गई; लेकिन अब इंसान की ईश-प्रदत्त बुद्धि (God-given wisdom) ने एक क़दम और आगे बढ़ाया और मानव इतिहास के 10 हज़ार वर्ष बाद ऐसे तरीक़े मालूम कर लिये गए हैं, जिससे वह इस गैस को खाद में परिवर्तित कर सकता है। इसके बाद इंसान इस क़ाबिल हो गया कि अपने आहार के इस अनिवार्य अंश को तैयार कर सके, जिसके बग़ैर वह भूखा मर जाता। यह अति संयोग है कि धरती के इतिहास में पहली बार ठीक समय पर इंसान ने आहार की कमी का हल खोज लिया। यह त्रासदी ठीक उस समय दूर हो गई, जबकि इसके घटित होने की संभावना थी।

ब्रह्मांड में इस प्रकार की सूझ-बूझ व मौलिकता के असंख्य पक्ष हैं। हमारे समस्त विज्ञानों ने हमें सिर्फ़ यह बताया है कि जो कुछ हमने मालूम किया है, इससे बहुत अधिक है वह चीज़, जिसे हमें अभी मालूम करना बाक़ी है। फिर भी इंसान जो कुछ जान सका है, वह भी इतना अधिक है कि उसके शीर्षकों को सूची-क्रम देने के लिए मौजूदा किताब से अधिक बड़ी किताब की आवश्यकता होगी और फिर भी कुछ शीर्षक बच जाएँगे। इंसान की ज़ुबान से ईश्वर की नेमतों और ईश्वर की निशानियों का हर प्रकटीकरण अपूर्ण प्रकटीकरण है। इसका जितना भी विस्तार किया जाए, वहाँ यह अनुभूति अवश्य ही मौजूद होगी कि हमने ‘बयान’ नहीं किया, बल्कि इसे ‘सीमित’ कर दिया। हक़ीक़त यह है कि अगर समस्त विद्याएँ और ज्ञान प्रकट हो जाएँ और इसके बाद सारे इंसान इस प्रकार लिखने बैठ जाएँ कि सारे-के-सारे

संसाधन उनके लिए सहायक हों, तब भी ब्रह्मांड की जानकारियों का वर्णन पूरा नहीं हो सकता।

> “और अगर ज़मीन में जो दरख़्त हैं, वे क़लम बन जाएँ और समुद्र सात अतिरिक्त समुद्रों के साथ स्याही बन जाएँ, तब भी ईश्वर की बातें ख़त्म न होंगी।” (क़ुरआन, 31/27)

जिसने भी ब्रह्मांड का कुछ अध्ययन किया है, वह निःसंदेह स्वीकार करेगा कि ईश्वर की किताब में इन शब्दों में ज़रा भी अतिशयोक्ति नहीं, वह सिर्फ़ वर्तमान का साधारण-सा प्रकटन है।

पिछले पृष्ठों में ब्रह्मांड के प्रबंधन और उसके अंदर असाधारण सूझ-बूझ व मौलिकता का जो हवाला दिया गया है, धर्म-विरोधी इसे घटनाक्रम मानते हुए इसकी दूसरी व्याख्या करते हैं। इसमें उन्हें किसी प्रबंधक व युक्तिकर्ता का संकेत नहीं मिलता, बल्कि यह सब कुछ उनके निकट मात्र ‘संयोग’ से हो गया। टी०एच० हक्सले के शब्दों में, 6 बंदर अगर टाइपराइटर पर बैठ जाएँ और करोड़ों साल तक इसे पीटते रहें तो हो सकता है कि इनके स्याह किए हुए काग़ज़ात के ढेर में से आख़िरी काग़ज़ पर शेक्सपियर की साहित्यिक रचना निकल आए। इसी प्रकार अरबों-खरबों साल तत्त्व के अंधाधुंध परिसंचरण के दौरान वर्तमान ब्रह्मांड बन गया है। (The Mysterious Universe, p.3-4)

यह बात हालाँकि अपने आपमें बिल्कुल झूठ है, क्योंकि हमारी आज तक की समस्त विद्याएँ ऐसे किसी संयोग से पूरी तरह अनजान हैं, जिसके नतीजे में इतनी महान, इतनी अर्थपूर्ण और स्थायी घटना अस्तित्व में आ जाए, जैसा कि यह ब्रह्मांड है। निःसंदेह हम कुछ संयोगों से परिचित हैं, जैसे हवा का झोंका कभी किसी सुर्ख़ गुलाब के पराग (pollen) को उड़ाकर सफ़ेद गुलाब पर डाल देता है, जिसके नतीजे में ज़र्द रंग का फूल खिलता है, लेकिन इस प्रकार

का संयोग सिर्फ़ एक आंशिक और अपवादिक घटना की स्पष्टता करता है। गुलाब का पूरा अस्तित्व ब्रह्मांड के अंदर एक स्थिति में इसकी निरंतर मौजूदगी और समस्त ब्रह्मांडीय व्यवस्था से इसका आश्चर्यजनक संपर्क हवा के संयोगी झोंके से नहीं समझा जा सकता। 'संयोगी घटना' के शब्द में एक आंशिक सच्चाई होने के बाद भी ब्रह्मांड की स्पष्टता की दृष्टि से वह एक झूठ बात है। प्रोफ़ेसर एडविन कौंकलिन के शब्दों में, "जीवन का एक संयोग द्वारा घटित हो जाना ऐसा ही है, जैसे किसी प्रेस में धमाका हो जाने से एक मोटे शब्दकोश का तैयार हो जाना।" (The Evidence of God, p.174.)

कहा जाता है कि 'संयोग' के हवाले से ब्रह्मांड की व्याख्या कोई अललटप बात नहीं है। सर जेम्स जींज़ के शब्दों में, वह शुद्ध गणितीय नियमों के संयोग (purely mathematical law of chance) पर आधारित है। (The Mysterious Universe, p-3)

एक लेखक ने लिखा है—

"संयोग' (probability/chance) मात्र एक बनावटी चीज़ नहीं है, बल्कि एक बहुत ही विकसित गणितीय सिद्धांत है, जिसे उन मामलों पर लागू किया जाता है, जिनकी निश्चित जानकारी संभव नहीं होती। इस सिद्धांत के द्वारा ऐसे खरे नियम हमारे हाथ आ जाते हैं, जिनकी सहायता से हम सही और ग़लत में सरलता से अंतर कर सकते हैं और किसी विशेष अवस्था की घटना के जारी होने की संभावनाओं का हिसाब लगाकर सही अनुमान कर सकते हैं कि संयोगवश उसका पेश आ जाना किस हद तक संभव है।" (The Evidence of God, p.23)

अगर हम यह मान भी लें कि पदार्थ किसी कच्ची स्थिति में स्वयं से ब्रह्मांड में मौजूद हो गया और फिर यह भी मान लें कि इसमें क्रिया और प्रतिक्रिया का क्रम भी अपने आप आरंभ हो गया,

हालाँकि इन परिकल्पनाओं के लिए कोई आधार नहीं है— तब भी ब्रह्मांड की कारणता प्राप्त नहीं होती— क्योंकि यहाँ एक और संयोग धर्म-विरोधियों के मार्ग में बाधक हो गया है। दुर्भाग्य से हमारा गणित विधान जो संयोग के नियम का क़ीमती नुक्ता हमें देता है, वही इस बात का खंडन भी कर रहा है कि संयोग का नियम वर्तमान ब्रह्मांड का रचयिता नहीं हो सकता है, क्योंकि विज्ञान ने मालूम कर लिया है कि हमारी दुनिया की आयु और आकार क्या है और जो आयु और आकार इसने मालूम किया है, वह संयोगी नियम के तहत वर्तमान दुनिया के घटित होने के लिए अपर्याप्त है।

“अब अगर तुम 10 सिक्के लो और उन पर 1 से 10 तक निशान लगा दो, इसके बाद इन्हें अपनी जेब में डाल लो और अच्छी तरह से मिला दो। अब इन्हें 1 से 10 तक क्रमवार इस प्रकार निकालने की कोशिश करो कि एक सिक्के को निकालने के बाद हर बार इसे दोबारा जेब में डाल दो— यह संभावना कि वह नंबर 1 का सिक्का पहली बार तुम्हारे हाथ में आ जाए, 10 में एक है; यह संभावना कि 1 और 2 क्रमवार तुम्हारे हाथ में आ जाएँ, 100 में एक है; यह संभावना कि 1, 2 और 3 नंबर क्रमवार तुम्हारे हाथ में आ जाएँ, 1,000 में एक है और यह संभावना कि 1, 2, 3 और 4 नंबर के सिक्के क्रमवार निकल आएँ, 10,000 में एक है, यहाँ तक कि यह संभावना कि 1 से 10 तक तमाम सिक्के क्रमवार तुम्हारे हाथ में आ जाएँ, 10 बिलियन (10 अरब) में सिर्फ़ एक बार है।”

यह उदाहरण अनुकरण करने के बाद क्रेसी मॉरिसन ने लिखा है—

“The object in dealing with so simple a problem is to show how enormously figures multiply against chance...” (Man Does Not Stand Alone, p.17)

यानी यह साधारण उदाहरण इसलिए दिया गया है, ताकि यह विषय भली-भाँति स्पष्ट हो जाए कि घटनाओं की संख्या के संबंध से संभावनाओं की संख्या कितनी अधिक होती है।

अब अंदाज़ा लगाइए कि अगर सब कुछ मात्र संयोग से हो गया है तो इसके लिए कितनी अवधि आवश्यक होगी। जीवित चीज़ों की विधि जीवित कोशिकाओं (living cells) से होती है। कोशिका एक अतिरिक्त सूक्ष्म और जटिल मिश्रण है, जिसका अध्ययन कोशिका विज्ञान (cytology) में किया जाता है। इन कोशिकाओं के निर्माण में जो पदार्थ काम आते हैं, उनमें एक प्रोटीन है। प्रोटीन एक रासायनिक मिश्रण है, जो पाँच तत्त्वों के मिलने से अस्तित्व में आता है— कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन और गंधक। प्रोटीनी अणु इन तत्त्वों के लगभग 40 हज़ार कणों (atoms) पर आधारित होता है।

ब्रह्मांड में 100 से अधिक रासायनिक तत्त्व बिल्कुल अस्त-व्यस्त और बेतरतीब बिखरे हुए हैं। अब इस बात की संभावना किस हद तक है कि उन समस्त तत्त्वों के अव्यवस्थित ढेर में से निकलकर ये पाँचों तत्त्व इस प्रकार परस्पर मिलें कि एक प्रोटीनी अणु अपने आप अस्तित्व में आ जाएँ। पदार्थ की वह मात्रा, जिसे लगातार हिलाने से संयोगवश यह नतीजा निकल सकता हो और वह अवधि, जिसके अंदर इस काम की पूर्णता संभव हो, हिसाब लगाकर मालूम की जा सकती है।

स्वीट्ज़रलैंड के एक गणितज्ञ प्रोफ़ेसर चार्ल्स यूजीन गुई ने इसका हिसाब लगाया है और उसकी खोज यह है कि इस प्रकार की किसी संयोगी घटना की संभावना 10^{160} में से है। 10^{160} का अर्थ यह है कि 10 को 10 से 160 बार गुणा किया जाए। दूसरे शब्दों में, 10 के आगे 160 ज़ीरो। ज़ाहिर है कि यह एक ऐसी संख्या है, जिसे शब्दों की भाषा में व्यक्त करना कठिन है।

एक प्रोटीनी अणु के संयोग से अस्तित्व में आने के लिए पूरे ब्रह्मांड के मौजूदा पदार्थ से करोड़ों गुणा अधिक मात्रा पदार्थ की ज़रूरत होगी, जिसे इकट्ठा करके हिलाया जाए और इस अमल से कोई नतीजा बरामद होने की संभावना 10^{243} वर्ष है।

प्रोटीन अमीनो एसिड के लंबे सिलसिलों से अस्तित्व में आते हैं। इसमें सबसे अधिक अहमियत उस तरीक़े की है, जिससे यह सिलसिले परस्पर मिलें। अगर यह ग़लत रूप से इकट्ठा हो जाएँ तो जीवन के स्थायित्व का माध्यम बनने के स्थान पर घातक विष बन जाते हैं। प्रोफ़ेसर जे०बी० लीथ्ज़ ने हिसाब लगाया है कि एक साधारण से प्रोटीन के सिलसिलों को अरबों-खरबों 10^{48} तरीक़े से इकट्ठा किया जा सकता है। यह असंभव है कि यह समस्त संभावनाएँ एक प्रोटीनी अणु को अस्तित्व में लाने के लिए मात्र संयोग से इकट्ठा हो जाएँ।

स्पष्ट है कि इस अति दूर की संभावना का अर्थ भी यह नहीं है कि अनगिनत अवधि की पुनरावृत्ति के बाद अनिवार्यतः यह घटना प्रकटन में आ जाएगी। इसका अर्थ सिर्फ़ यह है कि संभव है ऐसा हो जाए। दूसरी ओर यह संभावना भी है कि हमेशा दोहराते रहने के बावजूद कभी कोई ऐसी घटना प्रकटन में न आए।

फिर प्रोटीन स्वयं एक रासायनिक चीज़ है, जिसमें जीवन मौजूद नहीं होता। प्रोटीन की कोशिका का अंश बनने के बाद इसमें जीवन की गर्मी कैसे पैदा हुई, इसका जवाब इस स्पष्टता में नहीं है, फिर यह भी कोशिका के एक मिश्रित अंश प्रोटीन के सिर्फ़ एक अदर्शनीय कण के अस्तित्व में आने की स्पष्टता है, जबकि सिर्फ़ जीवित शरीर के अंदर शंख-महाशंख की संख्या में ऐसे मिश्रण होते हैं।

ले काम्टे डु नुवाए ने इस पर बहुत अच्छी और विस्तृत बहस की है, जिसका सारांश यह है कि इस प्रकार की संभावना के प्रकटन में

आने के लिए जिस समय, जिस तत्त्व-मात्रा और जिस विस्तीर्णता की आवश्यकता होगी, वह हमारे समस्त अनुमानों से अविश्वसनीय सीमा तक अधिक है और इसके लिए एक ऐसी सृष्टि की आवश्यकता है, जिसकी परिधि इतनी बड़ी हो, जिसमें प्रकाश 10^{82} (10 के आगे 82 शून्य) प्रकाश वर्ष यात्रा करके उसे पार कर सकता हो। यह आकार वर्तमान ब्रह्मांड से बहुत अधिक है, क्योंकि हमारी दूर की आकाशगंगा का प्रकाश कुछ बिलियन प्रकाश वर्ष में हम तक पहुँच जाता है। इसका अर्थ यह है कि आइंस्टाइन ने ब्रह्मांड की जो विशालता का अनुमान किया है, वह इस काम के लिए पूर्णतः अपर्याप्त है। फिर इस परिकल्पित ब्रह्मांड में 500 ट्रिलियन प्रति सेकंड की रफ़्तार से तत्त्व की काल्पनिक मात्रा को हिलाया जाए, तब कहीं इस बात की संभावना पैदा होगी कि प्रोटीन का एक ऐसा अणु संयोग से अस्तित्व में आए, जो जीवन के लिए आवश्यक और लाभकारी हो। इस संपूर्ण प्रक्रिया के लिए जिस अवधि की आवश्यकता है, वह 10^{243} (10 के आगे 243 शून्य) बिलियन वर्ष है, लेकिन हमें भूलना नहीं चाहिए कि डु नुवाए ने लिखा है— "धरती सिर्फ़ 14 बिलियन वर्ष से मौजूद है और यह कि जीवन का प्रारंभ सिर्फ़ 1 बिलियन वर्ष पहले हुआ, जबकि धरती ठंडी हुई थी।" (Human Destiny, 30-36)

विज्ञान ने हालाँकि संपूर्ण ब्रह्मांड की आयु मालूम करने का प्रयास किया है, अतः यह अनुमान लगाया गया है कि वर्तमान ब्रह्मांड 14 खरब वर्ष से मौजूद है। ज़ाहिर है कि यह लंबी आयु भी वांछित प्रोटीनी अणु को संयोग से अस्तित्व में लाने के लिए अपर्याप्त है, लेकिन जहाँ तक धरती का संबंध है, जिस पर हमारा ज्ञात जीवन उत्पन्न हुआ, इसकी आयु तो अति निश्चितता के साथ ज्ञात कर ली गई है।

अंतरिक्ष विज्ञानियों के अनुमान के अनुसार धरती सूर्य का एक टुकड़ा है, जो किसी बड़े ग्रह के गुरुत्वाकर्षण से टूटकर वातावरण में चक्कर लगाने लगा था। उस समय धरती सूर्य की तरह एक जलता हुआ पिंड थी, जिसमें किसी भी प्रकार का जीवन पैदा होने का कोई सवाल नहीं था। उसके बाद यह धीर-धीरे ठंडी होकर जम गई। इस जमने के बाद ही यह संभावना पैदा होती है कि इसमें जीवन का आरंभ हो।

धरती की आयु, जब से वह ठोस हुई, विभिन्न तरीक़ों से बिल्कुल सही तौर पर मालूम की जा सकती है। इनमें सही तरीक़ा रेडियोधर्मी तत्त्वों (radio-active elements) के द्वारा मालूम हुआ है। रेडियोधर्मी तत्त्वों के एटम के विद्युत कण एक विशेष अनुपात से निरंतर बाहर निकलते रहते हैं और इसीलिए वे हमें रोशन नज़र आते हैं। इस बाहर निकले या विघटन के कारण इनके विद्युत कणों की संख्या घटती रहती है और धीर-धीरे ग़ैर-रेडियोधर्मी धातु में परिवर्तित होते रहते हैं। यूरेनियम इसी प्रकार का एक रेडियोधर्मी तत्त्व है। वह विघटन की क्रिया के कारण एक विशेष और नियुक्त दर से सीसे में परिवर्तित होता रहता है। यह पाया गया है कि इस परिवर्तन की दर किसी भी कठोरतम गर्मी या दबाव से प्रभावित नहीं होती। हम परिवर्तन की इस रफ़्तार को अटल समझने में सत्यपक्षी हैं। यूरेनियम के टुकड़े विभिन्न चट्टानों में पाए जाते हैं और निःसंदेह ये उस समय से चट्टान का अंश हैं, जबकि हम चट्टान में जमे हुए यूरेनियम के साथ सीसा पाते हैं। हम यह भी नहीं कह सकते कि समस्त सीसा, जो यूरेनियम के साथ पाया जाता है, वह यूरेनियम के विघटन (disintegration of uranium) से अस्तित्व में आया, क्योंकि यूरेनियम से बना हुआ सीसा सामान्य सीसे से कुछ हल्का होता है। इसलिए सीसे के किसी भी टुकड़े के बारे में यह कहना संभव है कि वह यूरेनियम से बना या नहीं। इससे हम

गणना कर सकते हैं कि यूरेनियम चट्टान में उस समय से है, जबकि वह चट्टान जमी। इसलिए हम इसके द्वारा स्वयं चट्टान के जमने का समय मालूम कर सकते हैं।

इस प्रकार के अनुमान बताते हैं कि चट्टान को जमे हुए 14 बिलियन वर्ष बीत चुके हैं। यह अनुमान उन चट्टानों के अध्ययन पर आधारित हैं, जो हमारी जानकारी के अनुसार धरती की प्राचीनतम चट्टानें हैं। कहा जा सकता है कि संभव है कि धरती की आयु इससे बहुत अधिक जैसे दोगुना और तीन गुणा हो, लेकिन भूविज्ञान (geology) के अवलोकनों के दूसरे साक्ष्य इस प्रकार के असाधारण अनुमानों का खंडन करते हैं। अतः जे०डब्ल्यू०एन० सुलिवेन ने धरती की आयु एक बेहतर औसत 2 हज़ार मिलियन क़रार दी है।

(Limitation of Science, p.78)

अब ज़ाहिर है कि जब सिर्फ़ एक निर्जीव प्रोटीनी अणु के मिश्रण को संयोग से अस्तित्व में लाने के लिए शंख-महाशंख से भी अधिक अवधि की ज़रूरत है तो सिर्फ़ 2 हज़ार मिलियन वर्ष में धरती की सतह पर जीवित और पूर्ण शरीरों वाले प्राणियों की 10 लाख से अधिक और वनस्पतियों की 2 लाख से अधिक जातियाँ कैसे अस्तित्व में आ गईं? और हर जाति में असंख्य प्राणी और वनस्पतियाँ पैदा होकर शुष्क और जल में कैसे फैल गईं? और उन्हें निम्न श्रेणी की जीवित चीज़ों से इतनी अल्प अवधि में इंसान जैसी श्रेष्ठ उत्पत्ति संयोग से कैसे अस्तित्व में आ गई, जबकि प्रजातियों में विकास का सिद्धांत संयोगी परिवर्तनों के ऊपर अपना आधार खड़ा करता है। गणितज्ञ पाचू (Patau) के अनुसार— इनमें से हर परिवर्तन का हाल यह है, जो किसी जीवित प्राणी में नए परिवर्तन को पूरा होते-होते 10 लाख पुश्तों के गुज़र जाने की संभावना है (The Evidence of God, p.117)। इससे अनुमान लगाएँ कि अगर

मात्र विकास के अंधी प्रक्रिया के द्वारा कुत्ते की तरह पाँच उंगलियाँ रखने वाले पूर्वज की नस्ल में असंख्य परिवर्तनों के जमा होने से घोड़े जैसा भिन्न जानवर बन गया, तो इसके बनने में कितना समय लगेगा।

इस विस्तार से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अमेरिकी शरीर रचनाशास्त्री (anatomist) एम०बी० क्रीडर के शब्द कितने सही हैं—

"The mathematical probability of a chance occurrence of all the necessary factors in the right proportion is almost nil." (The Evidence of God, p.67)

यानी उत्पत्ति के समस्त कारकों के सही अनुपात के साथ संयोग से इकट्ठा हो जाने की संभावना गणितीय रूप से लगभग न के बराबर है।

यह लंबा विश्लेषण मात्र संयोग से उत्पत्ति के सिद्धांत की व्यर्थता को स्पष्ट करने के लिए किया गया है, वरना हक़ीक़त यह है कि 'संयोग' से न कोई एटम या अणु (molecule) अस्तित्व में आ सकता है और न ही ज़ेहन पैदा हो सकता है, जो यह सोच रहा है कि ब्रह्मांड कैसे अस्तित्व में आया, चाहे इसके लिए कितनी लंबी अवधि क्यों न मानी जाए। यह सिद्धांत न सिर्फ़ गणितीय रूप से असाध्य है, बल्कि तार्किक रूप से भी वह अपने अंदर कोई वज़न नहीं रखता। यह ऐसी ही एक झूठ बात है, जैसे कोई कहे कि एक गिलास पानी फ़र्श पर गिरने से दुनिया का नक़्शा बन सकता है, ऐसे व्यक्ति से उचित रूप से पूछा जा सकता है कि इस संयोग के घटित होने के लिए फ़र्श, गुरुत्वाकर्षण बल, पानी और गिलास कहाँ से अस्तित्व में आ गए।

जीव विज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान हैकल ने कहा था, "मुझे हवा, पानी, रासायनिक तत्त्व और समय दो, मैं एक इंसान बना दूँगा," मगर यह कहते हुए वह भूल गया कि इस संयोग को अस्तित्व में लाने के लिए

एक हैकल और भौतिक परिस्थितियों की उपस्थिति को आवश्यक क़रार देकर वह स्वयं अपने दावे का खंडन कर रहा है। मॉरिसन ने बहुत ख़ूब कहा—

"हैकल ने यह कहते हुए जीव और स्वयं जीवन के विषय को नज़रअंदाज़ कर दिया। इंसान को अस्तित्व में लाने के लिए उसे सबसे पहले अदर्शनीय एटम अर्जित करने होंगे, फिर उन्हें विशिष्ट ढंग से क्रम देकर 'जीन' बनाना होगा और उसे जीवन देना होगा, फिर उसकी संयोगी रचना की संभावना करोड़ों में से एक है और मान लें कि अगर वह सफल भी हो जाए तो उसे वह संयोग नहीं कह सकता, बल्कि वह इसे अपनी बुद्धिमत्ता का एक नतीजा क़रार देगा।"

(Man Does Not Stand Alone, p.87)

मैं इस चर्चा को एक अमेरिकी भौतिकशास्त्री जॉर्ज अर्ल डेविस के शब्दों पर समाप्त करूँगा—

"अगर ब्रह्मांड स्वयं अपने आपको पैदा कर सकता तो इसका मतलब यह होगा कि वह अपने अंदर पैदा करने के गुण रखता है। ऐसी स्थिति में हम यह मानने को विवश होंगे कि ब्रह्मांड स्वयं ईश्वर है। इस तरह हालाँकि हम ईश्वर के अस्तित्व को तो स्वीकार कर लेंगे कि वह निराला ईश्वर होगा, जो एक ही समय अलौकिक भी होगा और भौतिक भी। इस प्रकार किसी भी अस्पष्ट कल्पना को अपनाने के स्थान पर एक ऐसे ईश्वर पर आस्था को प्रधानता देता हूँ, जिसने भौतिक संसार की उत्पत्ति की है और उस संसार का वह स्वयं कोई अंश नहीं, बल्कि उसका शासक, व्यवस्थापक और युक्तिकर्ता है।"

(The Evidence of God, p.71)

परलोक की दलील

धर्म जिन चीज़ को मानने का हमें निमंत्रण देता है, उनमें से एक महत्वपूर्ण चीज़ परलोक का विचार है। इसका अर्थ यह है कि वर्तमान दुनिया के बाद एक और दुनिया है, जहाँ हमें हमेशा रहना है। वर्तमान दुनिया इंसान का परीक्षा-स्थल है, यहाँ एक विशेष अवधि के लिए इंसान को रखा गया है। इसके बाद एक समय ऐसा आने वाला है, जब इसका मालिक इसे तोड़कर दूसरी दुनिया दूसरे ढंग से बनाएगा। वहाँ सभी इंसान दोबारा जीवित किए जाएँगे। हर एक ने वर्तमान दुनिया में जो अच्छे-बुरे कर्म किए हैं, वे सब-के-सब वहाँ ईश्वर की अदालत में पेश होंगे और हर एक को उसके कर्म यानी अमल के अनुसार पुरस्कार या दंड दिया जाएगा।

यह दृष्टिकोण सही है या ग़लत, इसे जाँचने के लिए हम इस पर कुछ पहलुओं से ग़ौर करेंगे।

संभावना

पहली बात यह है कि ब्रह्मांड की वर्तमान व्यवस्था में क्या इस प्रकार के किसी परलोक का घटित होना संभव नज़र आता है? क्या यहाँ कुछ ऐसी घटनाएँ और संकेत पाए जाते हैं, जो इस दावे की पुष्टि कर रहे हों?

यह विचार सबसे पहले यह चाहता है कि इंसान और ब्रह्मांड अपने वर्तमान रूप में अनादि न हों और यह दोनों चीज़ें हमारी अब तक

की जानकारी के अनुसार बिल्कुल निश्चित हैं। हम अच्छी तरह जानते हैं कि यहाँ इंसान के लिए मौत भी है और ब्रह्मांड के लिए भी, दोनों में से कोई भी मौत के ख़तरे से ख़ाली नहीं।

जो लोग दूसरी दुनिया को नहीं मानते, वे प्राकृतिक रूप से यह चाहते हैं कि इसी दुनिया को अनंत ख़ुशियों की दुनिया बनाएँ। उन्होंने इस बात की बहुत खोज की कि मौत क्यों आती है, ताकि उन कारणों को रोककर जीवन को हमेशा रहने वाला बनाया जा सके, लेकिन उन्हें इस सिलसिले में पूरी तरह से नाकामी ही मिली। हर अध्ययन ने अंततः यही बताया कि मृत्यु निश्चित है, इससे कोई छुटकारा नहीं।

'मौत क्यों आती है'— इसके लगभग 200 उत्तर दिए गए हैं। शरीर नाकारा हो जाता है, रचना-तत्त्व धीमे पड़ जाते हैं, रगें पथरा जाती हैं, गतिशील एल्ब्यूमिन (dynamic albumin) की जगह पर कम गतिशील एल्ब्यूमिन आ जाते हैं, जोड़ने वाले ऊतक (tissues) बेकार हो जाते हैं, शरीर में आँतों के बैक्टीरिया का ज़हर दौड़ जाता है आदि-आदि।

शरीर के निष्क्रिय होने की बात प्रत्यक्ष में सही मालूम होती है, क्योंकि मशीन, जूते, कपड़े, सभी एक विशेष अवधि के बाद नाकारा हो जाते हैं, इसलिए हो सकता है कि पोस्तीन (जानवरों की खाल के मुलायम कपड़े, जैसे कोट) की तरह हमारा शरीर भी जल्दी या देर से पुराना होकर ख़त्म हो जाता हो, लेकिन विज्ञान इसकी पुष्टि नहीं करता। वैज्ञानिक व्याख्या के अनुसार, इंसानी शरीर न पोस्तीन की तरह होता है और न मशीन से मिलता-जुलता और न चट्टान के समान। अगर इसे समानता दी जा सकती है तो दरिया से, जो हज़ारों वर्ष पहले भी बहा करता था और आज भी उसी तरह बह रहा है और कौन कह सकता है कि दरिया पुराना होता है या नाकारा हो जाता है। इसी आधार पर

कैमिस्ट्री के नोबल पुरस्कार प्राप्त डॉक्टर लाईनुस पॉलिंग ने कहा है कि सैद्धांतिक रूप से इंसान बड़ी हद तक अनश्वर है। इसके शरीर की कोशिकाएँ (cells) ऐसी मशीन हैं, जो स्वतः अपनी ख़राबी दूर कर लेती हैं, लेकिन इसके बावजूद इंसान बूढ़ा हो जाता है और मर जाता है— इसके कारक अभी तक राज़ बने हुए हैं।

हमारे जीवन का निरंतर नवीनीकरण होता रहता है। हमारी कोशिकाओं में एल्ब्यूमिन के अणु बनते और नष्ट होते रहते हैं। कोशिकाएँ भी (स्नायु कोशिका के अतिरिक्त) बराबर नष्ट होती रहती हैं और इनके स्थान पर नई बनती रहती हैं। अनुमान लगाया गया है कि कोई 4 महीने की अवधि में इंसान का ख़ून बिल्कुल ही नया हो जाता है और कुछ वर्ष की अवधि में इंसानी शरीर के समस्त एटम पूरी तरह बदल जाते हैं। इसका अर्थ यह है कि इंसान की विशेषता एक ढाँचे की नहीं, बल्कि दरिया की-सी है यानी वह एक क्रिया है। ऐसी स्थिति में शरीर के पुराने और नाकारा होने से समस्त सिद्धांत आधारहीन हो जाते हैं। वह समस्त चीज़ें, जो जीवन के प्रारंभिक वर्षों में ख़राब हो गई थीं, विषैली और बेकार हो चुकी थीं, वे शरीर से कब की बाहर निकल चुकीं, फिर इन्हें मौत का सबब क़रार देने का क्या अर्थ है— इसका अर्थ यह हुआ कि मृत्यु का कारण आँतों, नसों और हृदय में नहीं है, बल्कि इसका कारण कहीं और है।

एक व्याख्या यह है कि स्नायु कोशिकाएँ (nerve cells) मृत्यु का कारण हैं, क्योंकि स्नायु कोशिकाएँ जीवन भर वही रहती हैं, वे कभी नहीं बदलतीं। अतः इंसान के अंदर स्नायु कोशिकाएँ वर्ष-दर-वर्ष कम होती जाती हैं और सामूहिक रूप से स्नायु तंत्र कमज़ोर होता जाता है। अगर यह व्याख्या सही है और स्नायु तंत्र ही शारीरिक तंत्र का कमज़ोर हिस्सा है तो हम कह सकते हैं कि वह शारीरिक व्यवस्था सबसे अधिक दिनों तक जीवित रहनी चाहिए, जिसमें स्नायु तंत्र होता ही नहीं।

लेकिन अवलोकन इसका समर्थन नहीं करता। वृक्ष में स्नायु तंत्र नहीं होता और वह सबसे अधिक दिनों तक जीवित रहता है, लेकिन गेहूँ में भी स्नायु तंत्र नहीं होते, मगर वह वर्ष भर जीवित रहता है और इसी प्रकार अमीबा (amoeba) कीड़े में भी स्नायु नहीं होते, लेकिन वह आधा घंटा जीवित रहता है। इस प्रकार इस स्पष्टीकरण का अर्थ यह है कि उच्च वंश के प्राणियों की आयु, जिनका स्नायु तंत्र पूर्ण होता है, सबसे अधिक होनी चाहिए, मगर ऐसा कुछ नहीं। मगरमच्छ, कछुआ और पाटक मछली सबसे लंबी आयु पाते हैं।

इस प्रकार मौत को अविश्वसनीय बनाने के लिए इसके कारणों की जितनी छानबीन की गई है, वह सब असफलता पर समाप्त हुई और संभावना अब भी ज्यों-की-त्यों बाक़ी है कि सारे इंसानों को एक निर्धारित अवधि पर मरना है और ऐसी कोई संभावना अब तक साबित न हो सकी कि मौत नहीं आएगी। डॉक्टर एलेक्सिस कैरल ने इसी विषय पर 'आंतरिक समय' (Inward Time) के शीर्षक से लंबी बहस की है और इस सिलसिले की कोशिशों की असफलता का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है—

"इंसान जीवन के स्थायित्व की तलाश और जिज्ञासा से कभी नहीं उकताएगा, मगर उसे कभी यह चीज़ प्राप्त नहीं हो सकती, क्योंकि वह शारीरिक संरचना के कुछ नियमों का पाबंद है। वह शरीर तंत्रीय काल (physiological time) कैसे रोकने और संभवतः एक हद तक इसे पीछे हटाने में सफल हो सकता है यानी जीवन की अवधि को बढ़ाने और बुढ़ापे को विलंब करने में, लेकिन वह मौत पर कभी विजय नहीं पा सकता।" (Man The Unknown, p.175)

इस प्रकार ब्रह्मांडीय व्यवस्था के वर्तमान रूप का अस्त-व्यस्त होना भी एक ऐसी चीज़ है, जो बिल्कुल घटनाक्रम की दृष्टि से समझ में

आती है। इसका अर्थ सिर्फ़ यह है कि ब्रह्मांड में हम जिन छोटी-छोटी क़यामतों से परिचित हैं, वह आगे किसी समय बड़े स्तर पर प्रकट होने वाली है, यह सिर्फ़ कुछ मौजूदा स्थानीय क़यामतों के ब्रह्मांडीय स्तर पर घटित होने की भविष्यवाणी है।

सबसे पहला अनुभव, जो हमें क़यामत* की संभावना से अवगत कराता है, वह भूकंप है। धरती का भीतरी भाग अत्यंत गर्म तरल पदार्थ के रूप में है, जिसका अवलोकन ज्वालामुखी पहाड़ों से निकलने वाले लावा के रूप में होता है। यह पदार्थ भिन्न रूपों में धरती की सतह को प्रभावित करता है, जिसके कारण अधिकांश समय धरती के ऊपर ज़बरदस्त गड़गड़ाहट की आवाज़ महसूस होती है और दुविधा के कारण झटके पैदा होते हैं— इसी का नाम भूकंप है। यह भूकंप आज भी इंसान के लिए सबसे अधिक डरावना शब्द है। यह इंसान के ऊपर प्रकृति का ऐसा आक्रमण है, जिसमें फ़ैसले का अधिकार पूरी तरह से दूसरे पक्ष को होता है। भूकंप के मुक़ाबले में इंसान बिल्कुल विवश है। यह भूकंप हमें याद दिलाते हैं कि हम एक सुर्ख़ पिघले हुए बहुत ही गर्म पदार्थ के ऊपर आबाद हैं, जिसके ऊपर 50 किमी० की एक पतली-सी चट्टान की तह हमें अलग करती है, जो धरती के मुक़ाबले में वैसी ही है, जैसे सेब के ऊपर उसका बारीक छिलका। एक भूगोल विज्ञानी के शब्दों में, हमारे आबाद शहरों और नीले समुद्रों के नीचे एक भौतिक नरक (physical Hell) दहक रहा है या यूँ कहना चाहिए कि हम एक अत्यंत विशाल डायनामाइट के ऊपर खड़े हैं, जो किसी भी समय फटकर सारी धरती के प्रबंधन को अस्त-व्यस्त कर सकता है।

(George Gamow...Biography of the Earth, p.82)

---

* सृष्टि के विनाश और अंत का दिन।

यह भूकंप दुनिया के लगभग हर हिस्से में और हर रोज़ आते हैं, लेकिन भौगोलिक दृष्टि से वह अधिक संख्या में वहाँ महसूस होते हैं, जहाँ ज्वालामुखी के पहाड़ हैं। सबसे प्राचीन विनाशकारी भूकंप जिससे इतिहास परिचित है, वह चीन के प्रांत शेंसी का भूकंप है, जो 1556 ईस्वी में आया था। इस बड़े भूकंप में 8 लाख से अधिक लोग मारे गए थे। इसी प्रकार नवंबर, 1755 ईस्वी में पुर्तगाल में भूकंप आया, जिसने लिस्बन का पूरा शहर तबाह कर दिया। इस भूकंप में 6 मिनट के अंदर 30 हज़ार लोग मारे गए और सारी इमारतें ढह गईं। अनुमान किया गया है कि इस भूकंप में यूरोप के क्षेत्र का चौगुना भाग हिल गया था। इसी अवस्था का एक भीषण भूकंप 1897 ईस्वी में आसाम में आया था, जो दुनिया के 5 सबसे बड़े भूकंपों में गिना जाता है। इससे उत्तरी आसाम में भयानक तबाही आई थी। इस भूकंप ने ब्रह्मपुत्र नदी की दिशा बदल दी और एवरेस्ट की चोटी उभरकर 100 फ़ुट ऊपर चली गई।

भूकंप वास्तव में छोटे स्तर की क़यामत है। जब भयभीत करने वाली गड़गड़ाहट से धरती फट जाती है, जब पक्के मकान ताश के पत्तों के घरौंदों की तरह गिरने लगते हैं, जब धरती का ऊपरी भाग धँस जाता है और भीतरी भाग ऊपर आ जाता है, जब बसे-बसाए शहर कुछ क्षणों में डरावने खंडहर का रूप धारण कर लेते हैं, जब इंसान की लाशें इस तरह ढेर हो जाती हैं मानो मरी हुई मछलियाँ धरती के ऊपर पड़ी हों— यह भूकंप का समय होता है। उस समय इंसान महसूस करता है कि वह प्रकृति की तुलना में कितना विवश है। यह भूकंप बिल्कुल अचानक आते हैं। वास्तव में भूकंप की त्रासदी इस मामले में छुपी है कि कोई भी व्यक्ति यह भविष्यवाणी नहीं कर सकता कि भूकंप कब और कहाँ आएगा। यह भूकंप मानो अचानक

आने वाली क़यामत की अग्रिम सूचना है। यह हमें बताते हैं कि धरती का मालिक किस प्रकार धरती की वर्तमान व्यवस्था को तोड़ने पर कितना प्रभुत्वशाली (The All Powerful) है।

यही स्थिति बाहरी ब्रह्मांड की है। ब्रह्मांड नाम है एक ऐसे असीमित अंतरिक्ष का, जिसमें बेहद बड़े-बड़े आग के अलाव (सितारें) अनगिनत संख्या में अंधाधुंध परिसंचरण कर रहे हैं, जैसे अनगिनत लट्टू किसी फ़र्श पर हमारी समस्त सवारियों से अधिक तेज़ी के साथ निरंतर नाच रहे हों।

यह परिसंचरण किसी भी समय ज़बरदस्त टकराव का रूप धारण कर सकता है। उस समय ब्रह्मांड की स्थिति बहुत बड़े पैमाने पर ऐसी होगी, जैसे करोड़ों बमवर्षक विमान बमों से लदे हुए वातावरण में उड़ रहे हों और अचानक ही सब-के-सब आपस में टकरा जाएँ। आकाशीय पिंडों का इस प्रकार का टकराव किसी भी दर्जे में आश्चर्यजनक नहीं है, बल्कि यह बात आश्चर्यजनक है कि वह आख़िर टकरा क्यों नहीं जाते। अंतरिक्ष विज्ञान का अध्ययन भी बताता है कि सितारों का आपस में टकरा जाना संभव है, अतः सौर पद्धति के अस्तित्व में आने की एक स्पष्टता इसी प्रकार के टकराव पर की गई है। इस टकराव का अगर हम बड़े पैमाने पर अनुमान कर सकें तो बहुत ही सरलता से विचाराधीन संभावना को समझ सकते हैं, क्योंकि वास्तव में इसी घटना का नाम 'क़यामत' है। परलोक के सिद्धांत का यह दावा कि ब्रह्मांड की वर्तमान व्यवस्था एक दिन अस्त-व्यस्त हो जाएगी, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है कि जो घटना ब्रह्मांड के अंदर प्रारंभिक रूप में मौजूद है, वही एक दिन चरम रूप में घटने वाली है— क़यामत का आना हमारे लिए एक ज्ञात वास्तविकता है— अंतर सिर्फ़ यह है कि आज हम इसे संभावना की सीमा तक जानते हैं और कल इसे घटना के रूप में देखेंगे।

परलोक की संभावना के सिलसिले में दूसरा मामला मृत्यु के बाद जीवन का मामला है। 'क्या मरने के बाद कोई जीवन है'— मौजूदा बुद्धि अपने आपसे प्रश्न करती है और फिर स्वयं ही इसका उत्तर देती है— नहीं, मृत्यु के बाद कोई जीवन नहीं; क्योंकि जिस जीवन से हम परिचित हैं, वह भौतिक पदार्थों के एक विशेष क्रम के भीतर पाया जा सकता है। मृत्यु के बाद यह क्रम बाक़ी नहीं रहता, इसलिए मृत्यु के बाद कोई जीवन भी नहीं हो सकता।"

टी०आर० माइल्ज़ मरने के बाद जीवन को मात्र एक उपमात्क वास्तविकता (symbolic truth) क़रार देता है और इसे एक शाब्दिक सच्चाई (literal truth) के रूप में मानने से इनकार करता है। "मेरे निकट," वह कहता है, "यह एक मज़बूत मुक़दमा है कि मरने के बाद आदमी ज़िंदा रहता है। यह बिल्कुल सही हो सकती है और इस योग्य है कि परीक्षण से इसका ग़लत या सही होना मालूम किया जा सके। मुश्किल सिर्फ़ यह है कि जब तक हमें मौत न आए, इसका निश्चित जवाब मालूम करने का कोई माध्यम नहीं है, लेकिन यह अनुमान करना संभव है।" अब चूँकि अनुमान इसके विरुद्ध है, इसलिए उसके निकट यह शाब्दिक वास्तविकता नहीं। वह कल्पना या अनुमान यह है—

"स्नायु विज्ञान (neurology) के अनुसार, बाह्य संसार और उससे संबंधों की जानकारी सिर्फ़ उस समय संभव है, जबकि इंसानी दिमाग़ नियम के अनुसार कार्य कर रहा हो और मृत्यु के बाद जबकि दिमाग़ की व्यवस्था बिखर जाती है, इस प्रकार का बोध (awareness) असंभव है।" (Religion and the Scientific Outlook, p.206)

लेकिन इससे मज़बूत दूसरे अनुमान मौजूद हैं, जो यह प्रकट करते हैं कि शरीर के भौतिक कणों का विघटन जीवन को समाप्त नहीं करता। जीवन एक पृथक और स्थायी अस्तित्व वाली चीज़ है, जो कणों के परिवर्तन के बाद भी शेष रहता है।

हम जानते हैं कि मानव शरीर कुछ विशेष प्रकार के तत्त्वों से मिलकर बना है, जिसकी सामूहिक इकाई को कोशिका (cell) कहते हैं। यह कोशिका अति जटिल संरचना के छोटे-छोटे कण हैं, जिनकी संख्या एक औसत क़द के इंसान में लगभग 26 पदम होती है। यह मानो असंख्य छोटी-छोटी ईंटें हैं, जिनके द्वारा हमारे शरीर की इमारत का निर्माण हुआ है। अंतर यह है कि इमारत की ईंटें जीवन भर वही रहती हैं, जो शुरू में उसके अंदर लगाई गई थीं, लेकिन शरीर की ईंटें हर समय बदलती रहती हैं। जिस प्रकार हर चलने वाली मशीन के अंदर घिसाव (degeneration) की क्रिया होती है, उसी प्रकार हमारी शारीरिक मशीन भी घिसती है और इसकी ईंटें यानी कोशिकाएँ निरंतर टूट-टूटकर कम होती रहती हैं। यह कमी आहार से पूरी होती है। आहार पचकर हमारे शरीर के लिए वह समस्त ईंटें उपलब्ध कराता है, जो टूट-फूट के कारण हर दिन हमारे शरीर को चाहिए होती हैं मानो शरीर नाम है कोशिकाओं के एक ऐसे मिश्रण का, जो हर क्षण अपने आपको बदलता रहता है। इसका उदाहरण बहते हुए दरिया के एक घाट का है, जो हर समय पानी से भरा रहता है, लेकिन हर समय वही पानी नहीं होता, जो पहले था, बल्कि हर क्षण वह अपने पानी को बदल देता है। घाट वही होता है, लेकिन पानी वही नहीं होता।

***

कोशिका को ईंट यहाँ मात्र प्रत्यक्ष समानता के आधार पर कहा गया है, वरना वास्तविकता यह है कि कोशिका एक बहुत ही पेचीदा चीज़ है, जो अपने आपमें एक पूर्ण शरीर रखती है और इसके अध्ययन के लिए एक पृथक विद्या अस्तित्व में आ चुकी है, जिसका नाम कोशिका विज्ञान (cytology) है।

***

इस प्रकार हर क्षण हमारे शरीर में एक परिवर्तन होता रहता है, यहाँ तक कि एक समय आता है, जब शरीर की पिछली समस्त ईंटें टूटकर निकल जाती हैं और उनका स्थान पूर्ण रूप से नई ईंटें ले लेती हैं। बच्चे के शरीर में यह क्रिया जल्दी-जल्दी होती है और आयु बढ़ने से इसकी रफ़्तार धीमी होती रहती है। अगर पूरी आयु का औसत लगाया जाए तो यह कहा जा सकता है कि हर 10 वर्ष के अंदर शरीर में यह परिवर्तन घटित होता है। प्रत्यक्षतः शरीर के ख़ात्मे की यह क्रिया बराबर होती रहती है, लेकिन भीतर का इंसान उसी प्रकार अपनी असल स्थिति में मौजूद रहता है। उसका ज्ञान, उसकी स्मरण शक्ति, उसकी अभिलाषाएँ, उसकी आदतें, उसके समस्त विचार पहले की तरह बाक़ी रहते हैं। वह अपनी आयु के हर चरण में अपने आपको वही 'पूर्व इंसान' (former self) प्रतीत करता है, जो पहले था। हालाँकि उसकी आँख, कान, नाक, हाथ, पाँव मतलब नाख़ून से लेकर बाल तक हर चीज़ बदल चुकी होती है।

अब अगर शरीर के ख़ात्मे के साथ उस शरीर का इंसान भी मर जाता हो तो कोशिकाओं के परिवर्तन से उसे भी प्रभावित होना चाहिए, लेकिन हम जानते हैं कि ऐसा नहीं होता। यह घटना साबित करती है कि इंसान या इंसानी जीवन शरीर से कोई अलग चीज़ है, जो शरीर के परिवर्तन और मृत्यु के बाद भी अपना अस्तित्व बाक़ी रखता है। वह एक घाट है, जिसकी गहराई में शरीरों या दूसरे शब्दों में कोशिकाओं का एक निरंतर आना-जाना जारी है। अतः एक वैज्ञानिक ने जीवन या इंसानी हस्ती को एक ऐसी पृथक स्थायी चीज़ क़रार दिया है, जो निरंतर परिवर्तनों के अंदर अपरिवर्तनीय स्थिति में अपना अस्तित्व बाक़ी रखती है। उसके शब्द यह हैं—

"Personality is changelessness in change."

अगर मृत्यु मात्र शरीर के अंत का नाम हो तो हम कह सकते हैं कि ऐसी हर क्रिया की पूर्णता के बाद मानो इंसान एक बार मर गया, अब अगर हम उसे देखते हैं तो यह वास्तव में उसका दूसरा जीवन है, जो उसने मरकर प्राप्त किया है। इसका अर्थ यह है कि 50 वर्ष की आयु का एक जीवित व्यक्ति, जिसे हम अपनी आँखों से चलता-फिरता देखते हैं, वह आपने इस अल्प जीवन (short life span) में कम-से-कम 5 बार पूर्ण रूप से मर चुका है। 5 बार की शारीरिक मृत्यु से अगर एक इंसान नहीं मरा तो छठी बार की मृत्यु के बारे में आख़िर क्यों विश्वास कर लिया गया कि इसके बाद वह अवश्य ही मर जाएगा। इसके बाद उसके लिए जीवन की कोई स्थिति ही नहीं।

कुछ लोग इस दलील को स्वीकार नहीं करेंगे। वे कहेंगे कि वह ज़ेहन या आंतरिक अस्तित्व, जिसे तुम इंसान कहते हो, वह वास्तव में कोई अलग चीज़ नहीं है, बल्कि बाहरी दुनिया के साथ शरीर के संबंध से पैदा हुआ है। समस्त भावनाएँ और विचार भौतिक क्रिया के दौरान इसी प्रकार पैदा होते हैं, जिस प्रकार धातु के दो टुकड़ों की रगड़ से ऊर्जा पैदा होती है। आधुनिक अध्ययनशास्त्र आत्मा के स्थायी अस्तित्व का घोर विरोधी है। जेम्स का कहना है कि विवेक एक हस्ती (entity) के रूप में मौजूद नहीं, बल्कि एक प्रायोजन (function) के रूप में मौजूद है। वह एक प्रक्रिया (process) है। हमारे युग के दार्शनिकों की बहुत बड़ी संख्या ने आग्रह किया है कि विवेक इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं कि वह बाहर से पैदा होने वाले आवेश या कोलाहल का स्नायिक उत्तर (nervous response) है। इस कल्पना के अनुसार मौत यानी शारीरिक व्यवस्था के अव्यवस्थित होने के बाद इंसान की मौजूदगी का कोई प्रश्न ही नहीं, क्योंकि वह स्नायु केंद्र ही इसके बाद बाक़ी नहीं रहा, जो बाहरी दुनिया के अंतर्व्यवहार से जीवन का उत्तर व्यक्त करे।

नतीजा यह निकला कि जीवन के बाद मृत्यु की कल्पना बिल्कुल बुद्धि से परे की कल्पना है, इसका असलियत से कोई संबंध नहीं।

मैं यह कहूँगा कि इंसान की हैसियत अगर यही है तो निश्चित रूप से हमारे लिए संभव होना चाहिए कि हम एक जीवित और विवेकी इंसान को पैदा कर सकें। आज हम अच्छी तरह जानते हैं कि इंसान का शरीर किन तत्त्वों से मिलकर बनता है। यह समस्त तत्त्व बहुत अधिक मात्र में धरती के अंदर और इसके वातावरण में प्राप्ति योग्य स्थिति में मौजूद हैं। हमने शरीर की आंतरिक व्यवस्था को अति सूक्ष्मता के साथ मालूम कर लिया है। आज हम जानते हैं कि इंसानी शरीर का ढाँचा और इसके रग व रेशे किस प्रकार बनाए गए हैं। हमारे पास ऐसे असंख्य माहिर आर्टिस्ट मौजूद हैं, जो दक्षता की श्रेणी की अनुकूलता के साथ इंसान की तरह एक शरीर बनाकर खड़ा कर दें। आत्मा-विरोधियों को अगर अपने सिद्धांत पर विश्वास है तो वे ऐसा क्यों नहीं करते कि बहुत से इंसानी शरीरों का निर्माण करके धरती के विभिन्न क्षेत्रों में खड़ा कर दें और समय की प्रतीक्षा करें, जब बाहरी दुनिया के प्रभावों के पड़ने से यह ढाँचे चलने और बोलने लगें।

यह जीवन के शेष रहने की संभावना पर बहस थी। अब इस उद्देश्य की दृष्टि से ग़ौर कीजिए, जिसके लिए धर्म दूसरे जीवन के ऊपर आस्था रखता है। धार्मिक विचार के अनुसार जीवन का स्थायित्व नीत्शे के 'आने-जाने' का नाम नहीं है, जो बालू की घड़ी (sand glass) की तरह बस ख़ाली होती रहे और भरती रहे। इससे आगे इसका और कोई उद्देश्य न हो, बल्कि दूसरे जीवन का एक महान उद्देश्य है और वह यह कि वर्तमान दुनिया की अच्छाइयों का बदला दिया जाए।

परलोक की आस्था का यह मामला भी उस समय बिल्कुल संभव नज़र आने लगता है, जब हम देखते हैं कि ब्रह्मांड में आश्चर्यजनक

रूप से हर व्यक्ति का रिकार्ड रात-दिन एक क्षण के विराम के बग़ैर दर्ज किया जा रहा है। इंसान तीन रूपों में अपनी हस्ती ज़ाहिर करता है— नीयत यानी इरादा, कथन और कर्म— यह तीनों चीज़ें पूर्ण रूप से सुरक्षित की जा रही हैं। हमारा हर विचार और हमारी ज़ुबान से निकला हुआ हर शब्द और हमारी समस्त कार्रवाइयाँ ब्रह्मांड के पर्दे पर इस प्रकार चित्रित हो रही हैं कि किसी भी समय इन्हें बहुत ही सही ढंग से दोहराया जा सके और यह मालूम हो सके कि दुनिया के जीवन में किसने क्या कहा, किसका जीवन बुराई का जीवन था और किसका जीवन भलाई का जीवन।

जो विचार हमारे दिल में गुज़रते हैं, हम बहुत जल्द उन्हें भूल जाते हैं। इससे प्रत्यक्षतः मालूम होता है कि वे हमेशा के लिए समाप्त हो गए, लेकिन जब हम मुद्दतों की एक भूली हुई बात को सपने में देखते हैं या मानसिक रुकावट के बाद आदमी ऐसी बातें बोलने लगता है, जो इसके भूले हुए अतीत से संबंधित हैं, तो यह घटना बताती है कि इंसान की स्मरणशक्ति इतनी ही नहीं है, जितना विवेकी रूप से वह महसूस करता है। स्मृति के कुछ ख़ाने ऐसे भी हैं, जो प्रत्यक्षतः विवेक की गिरफ़्त में नहीं रहते, लेकिन वे मौजूद होते हैं।

यह और इस प्रकार के दूसरे अनुभवों से साबित हुआ है कि हमारे समस्त विचार स्थायी रूप से अपने पूरे रूप में सुरक्षित रहते हैं, यहाँ तक कि हम चाहें भी तो उन्हें भुला नहीं सकते। यह खोज बताती है कि इंसान का व्यक्तित्व सिर्फ़ वही नहीं है, जिसे हम चेतन (विवेक) कहते हैं, बल्कि इसके विपरीत इंसानी अस्तित्व का एक भाग ऐसा भी है, जो हमारे चेतन की सतह के नीचे मौजूद रहता है। यह भाग, जिसे फ्राइड ने अवचेतन (sub-conscious) या अचेतन (unconscious) का नाम दिया है। यह हमारे व्यक्तित्व का बहुत

बड़ा भाग है। मानव-अस्तित्व की मिसाल समुद्र में तैरते हुए हिमखंडों (iceberg) की-सी है, जिसका सिर्फ़ नौवाँ भाग पानी के ऊपर दिखाई देता है और शेष 8 भाग समुद्र की सतह के नीचे रहते हैं। यही अवचेतन है, जो हमारे समस्त विचारों और हमारे इरादों को सुरक्षित रखता है। फ्राइड ने अपने इकत्तीसवें लैक्चर में कहा है—

"तर्क के क़ानून, बल्कि परस्पर विपरीत नियम भी अचेतन की क्रिया पर प्रभावी नहीं होते। विरोधी इच्छाएँ एक-दूसरे को नष्ट किए बग़ैर इसमें पहलू-दर-पहलू मौजूद रहती हैं... अचेतन में कोई ऐसी चीज़ नहीं, जो नकार (negation) से अनुरूपता रखती हो और हमें यह देखकर आश्चर्य होता है कि अचेतन की दुनिया में दार्शनिकों का यह दावा ग़लत हो जाता है कि हमारे समस्त दिमाग़ी क्रियाकलाप, टाइम एंड स्पेस के दरम्यान घटित होते हैं। अचेतन के अंदर कोई ऐसी चीज़ नहीं, जो समय की कल्पना से अनुकूलता रखती हो। अचेतन में समय के गुज़रने का कोई चिह्न नहीं और यह आश्चर्यजनक है, जिसके अर्थ समझने की ओर अभी तक दार्शनिकों ने पूरा ध्यान नहीं दिया कि समय के गुज़रने से मानसिक प्रक्रिया (mental process) में कोई परिवर्तन नहीं होता। ऐसे विचार (conative impulses) जो कभी अचेतन से बाहर नहीं आए, बल्कि वह मानसिक विचार भी जिन्हें रोककर अचेतन में दबा दिया गया हो, वस्तुतः अनश्वर होते हैं और 10 वर्ष तक इस प्रकार सुरक्षित रहते हैं, जैसे अभी कल ही अस्तित्व में आए हों।
(New Introductory Lectures on Psycho-analysis, London, 1969, p.99)

अवचेतन का यह सिद्धांत अब मनोविज्ञान में सामान्य रूप से स्वीकार किया जा चुका है। इससे मालूम होता है कि हर बात जो आदमी सोचता है और हर अच्छा या बुरा विचार जो उसके दिल में

गुज़रता है, वह सब-का-सब मानव-मन में इस प्रकार चित्रित हो जाता है कि फिर कभी नहीं मिटता। समय का गुज़रना या हालात का बदलना उसके अंदर ज़र्रा बराबर कोई परिवर्तन पैदा नहीं करता— यह घटना इंसानी इरादे के बग़ैर होती है, चाहे इंसान इसे चाहे या न चाहे।

फ्राइड यह समझने में असमर्थ है कि इरादों और कर्मों की इस सतर्कता और सुरक्षा के साथ अवचेतन मन पर नियंत्रण रहना प्रकृति के कारख़ाने के अंदर कौन से उद्देश्य को पूरा करता है। इसलिए वह दार्शनिकों को इस विषय पर सोचने का निमंत्रण देता है। अगर इस घटना को परलोक के दृष्टिकोण के साथ मिलाकर देखा जाए तो तुरंत इसकी मौलिकता समझ में आ जाती है। यह घटना स्पष्ट रूप से इस संभावना को प्रकट करती है कि जब दूसरा जीवन आरंभ होगा तो हर व्यक्ति अपने पूरे कर्म-पत्र के साथ वहीं मौजूद होगा, आदमी का स्वयं अपना अस्तित्व गवाही दे रहा होगा कि किन इरादों और किन विचारों के साथ उसने दुनिया में जीवन बसर किया था।

> "और हमने बनाया इंसान को और हम जानते हैं, जो बातें आती रहती हैं इसके मन में और हम इसकी गर्दन की रग से भी ज़्यादा क़रीब हैं।" (क़ुरआन, 50:16)

अब कथन के विषय को लीजिए। परलोक का सिद्धांत यह कहता है कि इंसान अपने कथनों का उत्तरदायी है। आप चाहे भली बात कहें या किसी को गाली दें। आदमी अपनी ज़ुबान को सच्चाई का संदेश पहुँचाने के लिए प्रयोग करे या वह शैतान का प्रचारक बन जाए, हर हाल में एक ब्रह्मांडीय व्यवस्था के तहत उसके मुँह से निकले हुए शब्दों का पूरा लेखा-जोखा तैयार किया जा रहा है और यह रिकॉर्ड परलोक की अदालत में हिसाब के लिए पेश होगा।

यह भी ऐसी चीज़ है, जिसके घटित होने की संभावना होने की हमारी ज्ञात दुनिया के यथानुरूप है। हम जानते हैं कि जब कोई व्यक्ति बोलने के लिए अपनी ज़ुबान को हरकत देता है तो इस हरकत से हवा में लहरें पैदा होती हैं, जिस प्रकार ठहरे हुए पानी में पत्थर फेंकने से लहरें पैदा होती हैं। अगर आप एक बिजली की घंटी को शीशे के अंदर पूरी तरह बंद कर दें और बिजली के द्वारा इसे बजाएँ तो आँख को वह घंटी बजती हुई नज़र आएगी, लेकिन वह आवाज़ सुनाई नहीं देगी, क्योंकि शीशा बंद होने के कारण उसकी लहरें हमारे कानों तक नहीं पहुँच रही हैं। यही लहरें जो 'आवाज़' के रूप में हमारे कानों के पर्दे से टकराती हैं और कान के अंग इन्हें एकत्र करके इन्हें हमारे दिमाग़ तक पहुँचा देते हैं और इस प्रकार हम बोले हुए शब्दों को समझने लगते हैं, जिसे 'सुनना' कहा जाता है।

इन लहरों के बारे में यह साबित हो चुका है कि ये एक बार उत्पन्न होने के बाद स्थायी रूप से वातावरण में शेष रहती हैं और यह संभव भी है कि किसी भी समय इन्हें दोहराया जा सकता है। हालाँकि विज्ञान अभी इस योग्य नहीं हुआ है कि इन आवाज़ों को या उचित शब्दों में इन लहरों को पकड़ सके, जो प्राचीन युग से वातावरण में हरकत कर रही हैं और न अभी तक इस शृंखला में कोई विशेष प्रयास हुआ है। फिर भी सैद्धांतिक रूप से यह स्वीकार कर लिया गया है कि एक ऐसा यंत्र बनाया जा सकता है, जिससे प्राचीन युग की आवाज़ें वातावरण से लेकर उसी प्रकार सुनी जा सकें, जिस प्रकार हम रेडियो के द्वारा इन लहरों को वातावरण से प्राप्त करके सुनते हैं, जो किसी ब्रॉड कास्टिंग स्टेशन यानी प्रसारण केंद्र से भेजी गई हों।

फ़िलहाल इस सिलसिले में जो मुश्किल है, वह उन्हें पकड़ने की नहीं है, बल्कि अलग करने की कोशिश की है। ऐसा यंत्र बनाना आज

भी संभव है, जो पुरानी आवाज़ों को पकड़ सके, लेकिन अभी हमें ऐसी कोई युक्ति मालूम नहीं हुई, जिसके द्वारा असंख्य मिली-जुली आवाज़ों को अलग करके सुना जा सके। यही कठिनाई रेडियो प्रसारण में भी है, लेकिन इसे एक कृत्रिम तरीक़ा धारण करके हल कर लिया गया है। दुनिया भर में सैकड़ों रेडियो स्टेशन हैं, जो हर समय विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम प्रसारित करते रहते हैं। यह सारे प्रोग्राम 1 लाख 86 हज़ार मील प्रति सेकंड की गति से हर समय हमारे चारों ओर गुज़रते रहते हैं। प्रत्यक्ष में यह होना चाहिए कि जब हम रेडियो खोलें तो एक ही समय बहुत-सी समझ न आने लायक़ आवाज़ें हमारे कमरे में गूँजने लगें, लेकिन ऐसा नहीं होता। इसका कारण यह है कि सभी प्रसारण केंद्र अपनी-अपनी 'आवाज़' को विविध आयामी तरंगों पर प्रसारित करते हैं। कोई छोटी तो कोई बड़ी, इस प्रकार भिन्न प्रसारण केंद्रों से निकली हुई आवाज़ें भिन्न आयाम की तरंगों में वातावरण के अंदर फैलती हैं। अब जहाँ आवाज़ जिस मीटर बैंड पर प्रसारित की जाती है, उस पर अपने रेडियो सेट की सूई घुमाकर हम वहाँ की आवाज़ सुन लेते हैं।

इसी प्रकार अकृत्रिम आवाज़ों को अलग करने का कोई तरीक़ा अभी प्राप्त नहीं हुआ है, वरना हम हर युग के इतिहास को उसकी अपनी आवाज़ में सुन सकते थे। फिर भी इससे यह संभावना पूरी तरह से साबित हो जाती है कि आगे कभी ऐसा हो सकता है। इस अनुभव की रोशनी में परलोक के सिद्धांत का यह भाग हमारे लिए समझ से बाहर नहीं रहता कि इंसान जो कुछ बोलता है, वह सब कुछ रिकॉर्ड होता रहा और इसके अनुसार एक दिन व्यक्ति को जवाब देना होगा। ईरान के पूर्व प्रधानमंत्री डॉक्टर मुसद्दिक़ 1953 ईस्वी में जब मुक़दमे के दौरान नज़रबंद थे तो उनके कमरे में ख़ुफ़िया रूप से ऐसी रिकॉर्डिंग मशीन लगा दी गई थी, जो हर समय चालू रहती थी और उनकी ज़ुबान से निकले हुए एक-एक शब्द को रिकॉर्ड कर लेती थी, ताकि

अदालत में उसे सबूत के रूप में पेश किया जा सके। हमारा अध्ययन बताता है कि इस प्रकार हर व्यक्ति के साथ ईश्वर के फ़रिश्ते या दूसरों शब्दों में बहुत से अदृश्य रिकॉर्डर लगे हुए हैं, जो हमारे मुँह से निकले हुए एक-एक शब्द को बहुत ही सही तरीक़े से ब्रह्मांड की प्लेट पर नक़्श कर रहे हैं।

अब कर्म के विषय को लीजिए। इस शृंखला में भी हमारी जानकारियाँ आश्चर्यजनक रूप से इसके घटित होने की संभावना होना साबित करती हैं। विज्ञान बताता है कि हमारे सारे कर्म चाहे वह अँधेरे में किए गए हों या उजाले में, एकांत में किया गया अपराध हो या समूह के अंदर, सब-के-सब वातावरण में तस्वीरी हालत में मौजूद हैं और किसी भी समय उन्हें इकट्ठा करके हर व्यक्ति का पूरा कर्म-पत्र मालूम किया जा सकता है।

आधुनिक अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि हर चीज़ चाहे वह अँधेरे में हो या उजाले में, ठहरी हुई हो या हरकत कर रही हो, वह जहाँ जिस हालत में हो, अपने अंदर से निरंतर ऊष्मा बाहर निकालती रहती है। यह ऊष्मा चीज़ों की दूरी व आकार की दृष्टि से इस प्रकार निकलती है कि वह ठीक उस चीज़ का प्रतिबिंब होती है, जिससे वह निकली है। जिस प्रकार ध्वनि तरंगें उस विशिष्ट थरथराहट का प्रतिरूप होती हैं, जो किसी ज़ुबान पर जारी हुई थीं। अतः ऐसे कैमरों का आविष्कार किया गया है, जो किसी चीज़ से निकली हुई ऊष्म तरंगों (heat waves) को ग्रहण करके उसकी उस विशिष्ट स्थिति का चित्र तैयार कर देते हैं, जबकि वह तरंगें उससे बाहर निकली थीं, जैसे मैं इस समय मस्जिद में बैठा हुआ लिख रहा हूँ। इसके बाद मैं यहाँ से चला जाऊँगा, लेकिन अपनी उपस्थिति के दौरान मैंने जो ऊष्म तरंगें निकाली हैं, वे यथावत उपस्थित रहेंगी और ऊष्मा देखने वाली मशीन की सहायता से रिक्त स्थान से मेरा पूर्ण चित्र प्राप्त किया जा सकता है; लेकिन इस समय जो कैमरे बने हैं, वे

कुछ घंटे बाद ही तक किसी तरंग या लहर का फ़ोटो ले सकते हैं। उसके बाद कई लहरों की छाया उतारने की शक्ति इनमें नहीं है।

इन कैमरों में अवरक्त किरणों (infra-red rays) से काम लिया जाता है, इसलिए वे अँधेरे व उजाले में समान फ़ोटो ले सकती हैं। अमेरिका और इंग्लैंड में इस खोज से काम लेना .आरंभ हो गया है। कुछ वर्ष पहले की बात है। न्यूयॉर्क के ऊपर एक रहस्यमय वायुयान चक्कर लगाकर चला गया। उसके तुरंत बाद उपरोक्त कथित कैमरे के द्वारा वातावरण से उसका ऊष्मीय चित्र लिया गया। इस अध्ययन से मालूम हो गया कि उड़ने वाला यान किस बनावट का था (रीडर डाइजेस्ट; नवंबर, 1960)। इस कैमरे को वाष्पीय ग्राफ़ (evapograph) कहते हैं। इसकी चर्चा करते हुए 'हिंदुस्तान टाइम्स' ने लिखा था कि इसका अर्थ यह है कि आगे हम इतिहास को फ़िल्मी पर्दे के ऊपर देख सकेंगे और हो सकता है कि पिछले युगों के बारे में ऐसे-ऐसे राज़ खुलें, जो वर्तमान ऐतिहासिक सिद्धांतों को बिल्कुल बदल डालें।

यह एक आश्चर्यजनक खोज है। इसका अर्थ यह है कि जिस प्रकार फ़िल्म स्टूडियो में बहुत ही तेज़ रफ़्तार वाले कैमरे अभिनेताओं और अभिनेत्रियों की समस्त गतिविधियों के चित्र लेते रहते हैं, इसी प्रकार वैश्विक स्तर पर हर व्यक्ति का जीवन चित्रित किया जा रहा है। आप चाहे किसी को थप्पड़ मारें या किसी ग़रीब का बोझ उठा दें, अच्छे काम में व्यस्त हों या बुरे काम के लिए दौड़-धूप कर रहे हों, अँधेरे में हों या उजाले में, जहाँ और जिस हाल में हों, हर समय आपका सारा कार्य सृष्टि के पर्दे पर चित्रित हो रहा है, आप इसे नहीं रोक सकते और जिस प्रकार फ़िल्म स्टूडियो में दोहराई हुई कहानी को उसके बाद और उससे बहुत दूर रहकर एक व्यक्ति स्क्रीन पर इस प्रकार देखता है मानो वह ठीक घटना-स्थल पर मौजूद हो। ठीक इसी प्रकार हर व्यक्ति ने जो कुछ किया है और जिन घटनाओं के बीच उसने जीवन गुज़ारा है, उसी

की पूरी तस्वीर एक रोज़ उसके सामने इस प्रकार आ सकती है कि उसे देखकर वह पुकार उठेगा—

> "यह कैसी किताब है, जिसने मेरा कोई छोटा-बड़ा काम भी दर्ज किए बग़ैर नहीं छोड़ा।" (क़ुरआन, 18:49)

ऊपर के विवरणों से मालूम हुआ कि दुनिया में हर इंसान का पूर्ण कर्म-पत्र तैयार किया जा रहा है। जो विचार भी आदमी के दिल में गुज़रता है, वह हमेशा के लिए महफ़ूज़ हो जाता है। इसकी ज़ुबान से निकला हुआ एक-एक शब्द बहुत ही सही-सही रिकॉर्ड हो रहा है। हर आदमी के इर्द-गिर्द ऐसे कैमरे लगे हुए हैं, जो अँधेरे और उजाले का अंतर किए बग़ैर दिन-रात इसकी फ़िल्म तैयार कर रहे हैं। इस आश्चर्यजनक स्थिति की कारणता इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकती कि ईश्वर की अदालत में हर इंसान का जो मुक़दमा पेश होने वाला है, यह सब उसकी गवाही एकत्र करने के प्रबंधन हैं, जो स्वयं अदालत की ओर से किए गए हैं। कोई भी व्यक्ति इन घटनाओं की इससे अधिक बुद्धिसम्मत कारणता प्रस्तुत नहीं कर सकता। अब अगर यह स्पष्ट घटना भी आदमी को परलोक में होने वाली पूछताछ का विश्वास नहीं दिलाती तो मुझे नहीं मालूम कि वह कौन-सी घटना होगी, जो इसकी आँख खोलेगी।

तक़ाज़ा यानी माँग

ऊपर हमने परलोक की कल्पना पर इस हैसियत से चर्चा की है कि मौजूदा ब्रह्मांड में क्या इस प्रकार के परलोक का घटित होना संभव है, जिसका धर्म में दावा किया गया है। इससे यह साबित हो जाता है कि परलोक की घटना निश्चित रूप से घटित होने की संभावना है। अब यह देखिए कि क्या हमारी दुनिया को इस प्रकार के परलोक की कोई

आवश्यकता भी है? क्या ब्रह्मांड अपने मौजूदा ढाँचे की दृष्टि से माँग करता है कि परलोक (life after death) अनिवार्यतः घटित हो।

सबसे पहले मनोवैज्ञानिक पक्ष को लीजिए— कनिंघम ने अपनी पुस्तक 'प्लातोस अपोलोजी'(Plato's apology) में मृत्यु के बाद जीवन की आस्था को प्रसन्नचित्त अज्ञेयवाद (cheerful agnosticism) कहा है। यही वर्तमान युग में समस्त अनीश्वरवादियों का दृष्टिकोण है। उनका यह विचार है कि दूसरे जीवन की आस्था इंसान की उस मानसिकता ने पैदा की है कि वह अपने लिए एक ऐसी दुनिया तलाश करना चाहता है, जहाँ वह वर्तमान दुनिया की सीमितताओं और कठिनाइयों से स्वतंत्र होकर ख़ुशी और विश्राम का एक दिलपसंद जीवन प्राप्त कर सके। यह आस्था इंसान की मात्र एक परिकल्पित ख़ुशफ़हमी है, जिसके द्वारा वह उस काल्पनिक संतुष्टि में ग्रस्त रहना चाहता है कि मरने के बाद वह अपने प्रिय जीवन को पा लेगा, वरना जहाँ तक घटना की सच्चाई का संबंध है, तो ऐसी कोई दुनिया वास्तव में मौजूद नहीं है, लेकिन इंसान की यह तलब अपने आपमें परलोक का एक मनोवैज्ञानिक सबूत है। जिस प्रकार प्यास का लगना पानी की मौजूदगी और पानी और इंसान के बीच के जुड़ाव का एक आंतरिक सबूत है, इसी प्रकार एक बेहतर दुनिया की तलब इस बात का सबूत है कि एक ऐसी दुनिया वास्तव में मौजूद है और हमसे इसका सीधा संबंध है। इतिहास बताता है कि प्राचीनतम युग से वैश्विक स्तर पर यह माँग इंसान के अंदर मौजूद रही है। अब यह बात अकल्पनीय है कि एक अवास्तविक चीज़ इतने बड़े पैमाने पर और इस क़द्र अनादि रूप में इंसान को प्रभावित कर दे। यह एक ऐसी घटना है, जो हमारे लिए इस संभावना की समानता पैदा करती है कि कोई दूसरी दुनिया मौजूद होनी चाहिए। स्वयं इसी घटना को फ़र्ज़ी क़रार देना साफ़ हठधर्मी के सिवा कुछ नहीं।

जो लोग इतने बड़े मनोवैज्ञानिक तक़ाज़े को यह कहकर नज़रअंदाज़ कर देते हैं कि यह अवास्तविक है, मुझे नहीं मालूम कि फिर इस धरती पर वह कौन-सी घटना है, जिसे वे वास्तविक समझते हैं। तो फिर इसके लिए उनके पास क्या दलील है? ये विचार अगर सिर्फ़ माहौल का नतीजा हैं तो इंसानी भावनाओं के साथ इतनी अनुकूलता क्यों रखते हैं? क्या दूसरी किसी ऐसी चीज़ की मिसाल दी जा सकती है, जो हज़ारों वर्षों के दौरान इतनी निरंतरता के साथ इंसानी भावनाओं के साथ अपनी अनुकूलता बाक़ी रख सकी हो? क्या कोई बड़े से बड़ा योग्य व्यक्ति यह क्षमता रखता है कि एक काल्पनिक चीज़ गढ़े और उसे इंसानी मानसिकता में इस प्रकार शामिल कर दे, जिस प्रकार ये संवेदनाएँ इंसानी मन में समाई हुई हैं?

इंसान की बहुत-सी इच्छाएँ हैं, जो इस दुनिया में पूरी नहीं होतीं। इंसान एक ऐसी दुनिया चाहता है, जहाँ सिर्फ़ जीवन हो, लेकिन उसे एक ऐसी दुनिया मिली, जहाँ जीवन के साथ मृत्यु का क़ानून भी लागू है। यह कितनी विचित्र बात है कि आदमी अपने ज्ञान, अनुभव और संघर्ष के नतीजे में जब अपने सफलतम जीवन के आरंभ के योग्य होता है, उसी समय इसके लिए मौत का संदेश आ जाता है। लंदन के सफल व्यापारियों के संबंध में जो आँकड़े हैं, उनसे मालूम हुआ कि 45-65 वर्ष की आयु के बीच जब वे अपना व्यापार ख़ूब जमा लेते हैं और 5 हज़ार से 10 हज़ार पौंड (एक लाख रुपये से अधिक) वार्षिक कमा रहे होते हैं, उस समय अचानक एक दिन इनके दिल की गति बंद हो जाती है और वे अपने फैले हुए कारोबार को छोड़कर इस दुनिया से चले जाते हैं। विनवुड रीड ने लिखा है—

"यह हमारे लिए एक विचारणीय विषय है कि क्या ईश्वर से हमारा कोई निजी संबंध है? क्या इस दुनिया के अतिरिक्त कोई और दुनिया है, जहाँ हमारे कर्मों के अनुसार हमें बदला दिया जाएगा? यह

न सिर्फ़ दर्शनशास्त्र की एक बहुत बड़ी समस्या है, बल्कि यह स्वयं हमारे लिए सबसे बड़ा व्यावहारिक प्रश्न है। एक ऐसा प्रश्न, जिससे हमारा हित बहुत अधिक जुड़ा हुआ है। वर्तमान जीवन बहुत ही छोटा है और इसकी ख़ुशियाँ बहुत साधारण हैं। जब हम कुछ प्राप्त कर लेते हैं, जो हम चाहते हैं तो मृत्यु का समय निकट आ चुका होता है। अगर यह स्पष्ट हो सके कि एक विशेष शैली पर जीवन बसर करने से स्थायी ख़ुशी प्राप्त हो सकती, मूर्ख या पागल व्यक्ति के अलावा कोई भी व्यक्ति उस प्रकार जीवन गुज़ारने से इनकार नहीं करेगा।"

(Martyrdom of Man, p.414)

लेकिन यही लेखक प्रकृति की इतनी बड़ी पुकार को मात्र साधारण से संदेहों के आधार पर रद्द कर देता है—

"यह दृष्टिकोण उस समय बड़ा बुद्धिसम्मत नज़र आता था, जब तक गहराई के साथ हमने इसकी तहक़ीक़ नहीं की थी, लेकिन जब ऐसा किया गया तो मालूम हुआ कि यह मात्र एक विसंगत (absurd) बात है और इसकी विसंगति को सरलता से साबित किया जा सकता है—बुद्धिविहीन आदमी, जो कि अपने गुनाहों का ज़िम्मेदार नहीं है, वह तो स्वर्ग में जाएगा, मगर जे०डब्लू० गोएथ और रूसो जैसे लोग जहन्नुम में जलेंगे। इसलिए बुद्धिविहीन पैदा होने से अच्छा है कि आदमी गेटे और रूसो के रूप में पैदा हो और यह बात बिल्कुल झूठ है।"

(Martyrdom of Man, p.415)

यह वैसी ही बात है, जैसे लॉर्ड केल्विन ने मैक्सवेल की खोज को मानने से इनकार कर दिया था। लॉर्ड केल्विन का कहना था कि जब तक मैं किसी चीज़ का मशीनी मॉडल (mechanical model) नहीं बना लेता, मैं इसे समझ नहीं सकता। इस आधार पर उसने प्रकाश से संबंधित मैक्सवेल के विद्युत चुंबकीय सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया, क्योंकि वह उसके भौतिक फ्रेम में नहीं आता था। भौतिकी की

दुनिया में आज यह एक विचित्र बात मालूम होती है। जे०डब्ल्यू०एन० सुलीवेन के शब्दों में— "एक व्यक्ति क्यों ऐसा विचार करे कि प्रकृति को एक ऐसी अवस्था की चीज़ होना चाहिए, जिसे उन्नीसवीं शताब्दी का एक इंजीनियर अपने कारख़ाने में ढाल सकता हो।"
(The Limitations of Science, p.9)

यही बात मैं विनवुड की उपरोक्त आपत्ति के बारे में कहूँगा— "बीसवीं शताब्दी का एक दार्शनिक आख़िर यह समझने का क्या अधिकार रखता है कि बाहरी दुनिया को उसकी अपनी कल्पनाओं के अनुसार होना चाहिए?"

विनवुड की समझ में इतनी मोटी बात नहीं आई कि किसी घटना के पीछे जो सच्चाई है, वह उस पर आश्रित नहीं होती, जो दिखाई दे, बल्कि स्वयं 'किसी चीज़ का दिखाई देना अदृश्य सच्चाई पर आश्रित होता है। जब सच्चाई यह है कि इस ब्रह्मांड का एक ईश्वर है और उसके सामने हिसाब-किताब के लिए हमें हाज़िर होना है, तो फिर हर व्यक्ति को चाहे वह रूसो हो या एक साधारण नागरिक, ईश्वर का वफ़ादार बनकर जीवन गुज़ारना चाहिए। हमारी सफलता सच्चाई से अनुकूलता करने में है, न कि इसके विरुद्ध चलने में। विनवुड रूसो और गेटे से यह नहीं कहता कि वे अपने आपको सच्चाई के अनुसार बनाएँ, बल्कि स्वयं सच्चाई से चाहता है कि वह अपने आपको बदल डाले और जब सच्चाई अपने अंदर परिवर्तन के लिए तैयार नहीं होती तो उसे बकवास और बेतुका क़रार देता है। हालाँकि यह एक ऐसी बात है, जैसे कोई जंगी राज़ के सुरक्षा क़ानून को इस आधार पर बकवास और बेतुका क़रार कर दिया जाता है कि उसकी बुनियाद एक साधारण सिपाही का काम प्रशंसनीय कहलाता है और रोज़नबर्ग जैसे प्रतिष्ठित वैज्ञानिक और उसकी नौजवान और शिक्षित पत्नी को बिजली की कुर्सी पर बैठाकर मृत्युदंड दे दिया जाता है।

समस्त ज्ञात संसार के अंदर सिर्फ़ इंसान एक ऐसा अस्तित्व है, जो कल (tomorrow) की कल्पना रखता है। यह सिर्फ़ इंसान की विशिष्टता है कि वह भविष्य के बारे में सोचता है और अपने आगामी हालात को बेहतर बनाना चाहता है। इसमें संदेह नहीं कि बहुत से जानवर भी 'कल' के लिए अमल करते हैं, जैसे चींटियाँ गर्मी के मौसम में जाड़े के लिए ख़ुराक जमा करती हैं या 'बया' अपने पैदा होने वाले बच्चों के लिए घोंसला बनाती है, लेकिन जानवरों का इस प्रकार का व्यवहार मात्र नैसर्गिक प्रवृत्ति (instinctive behaviour) के अधीन अविवेकी रूप से होता है। वे 'कल' की आवश्यकता को सोचकर अपने इरादे से ऐसा नहीं करते, बल्कि बिना इरादे स्वाभाविक रूप से अंजाम देते हैं और बतौर नतीजा वह इनके भविष्य में काम आता है। 'कल' को ज़ेहन में रखकर उसकी ख़ातिर सोचने के लिए वैचारिक संकल्पना (conceptual thought) की आवश्यकता है और यह सिर्फ़ इंसान की विशिष्टता है, किसी दूसरे प्राणी को वैचारिक संकल्पना की विशिष्टता प्राप्त नहीं।

इंसान और दूसरे प्राणियों का यह अंतर प्रकट करता है कि इंसान को दूसरी समस्त चीज़ों से अधिक अवसर मिलने चाहिए। जानवरों का जीवन सिर्फ़ आज का जीवन है। वे जीवन का कोई 'कल' नहीं रखते, लेकिन इंसान का अध्ययन स्पष्ट रूप से बताता है कि उसके लिए कोई 'कल' होना चाहिए। ऐसा न होना प्रकृति की व्यवस्था के विरुद्ध है।

कुछ लोगों का कहना है कि वर्तमान जीवन में हमारी असफलताएँ सामान्य रूप से हमें इससे बेहतर जीवन की आशा की ओर ले जाती है। एक संपन्न वातावरण में ऐसी आस्था बाक़ी नहीं रह सकती। रोम के ग़ुलाम— उदाहरण के रूप में— बहुत बड़ी संख्या में ईसाई हो

गए, क्योंकि ईसाइयत उन्हें मरने के बाद ख़ुशी हासिल होने की उम्मीद दिलाती थी। यह विश्वास किया जाता था कि विज्ञान की प्रगति से इंसान की ख़ुशी और खुशहाली बढ़ेगी और अंततः दूसरे जीवन की कल्पना समाप्त हो जाएगी।

लेकिन विज्ञान और टेक्नोलॉजी का 400 वर्षीय इतिहास इसकी पुष्टि नहीं करता। टेक्नोलॉजी की प्रगति ने सबसे पहले दुनिया को जो चीज़ दी, वह यह थी कि पूँजी रखने वाले सीमित दल के हाथ में ऐसे संसाधन आ गए, जिसके बल पर वे छोटे कारीगरों और पेशेवरों को समाप्त करके दौलत का समस्त बहाव अपनी ओर कर लें और सामान्य नागरिकों को मात्र अपन मोहताज मज़दूर बनाकर रख दें। इस परिणाम के भयावह दृश्य मार्क्स की किताब 'कैपिटल' में विस्तार के साथ देखे जा सकते हैं, जो मानो अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के उस मज़दूर वर्ग की पुकार है, जिसे मशीनी व्यवस्था ने अपने प्रारंभिक दौर में जन्म दिया था। उसके बाद प्रतिक्रिया आरंभ हुई और मज़दूर आंदोलनों के एक शताब्दी के प्रयासों से अब हालात बहुत कुछ बदल चुके हैं, लेकिन यह परिवर्तन सिर्फ़ प्रत्यक्ष का परिवर्तन है। निःसंदेह आज का मज़दूर पहले के मज़दूर के मुक़ाबले में अधिक मज़दूरी पाता है, लेकिन जहाँ तक असल ख़ुशी की दौलत का संबंध है, इस मामले में वह अपने पूर्वजों से भी अधिक वंचित है— विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने जो व्यवस्था बनाई है, वह कुछ भौतिक प्रकटन इंसान को दे दे, लेकिन ख़ुशी और हृदय की संतुष्टि की दौलत फिर भी उसे नहीं देता। आधुनिक सभ्यता के बारे में 'ब्लेक' के यह शब्द बहुत ही सही हैं—

"A mark in every face I meet marks of weakness, marks of woe."

बर्ट्रेंड रसेल ने स्वीकार किया है—“हमारी दुनिया के जानवर ख़ुश हैं। इंसानों को भी ख़ुश होना चाहिए, लेकिन आधुनिक संसार में उन्हें यह नेमत प्राप्त नहीं।” (Conquest of Happiness, p.11)

बल्कि रसेल के शब्दों में अब स्थिति यह है कि लोग कहने लगे हैं कि इसकी प्राप्ति संभव ही नहीं।

Happiness in the modern world has become an impossibility. (p.93)

न्यूयॉर्क जाने वाला एक पर्यटक एक तरफ़ तो स्टेट बिल्डिंग जैसी इमारतों को देखता है, जिसकी 102 मंज़िलें हैं और जो इतनी ऊँची हैं कि उसकी ऊपरी मंज़िल का तापमान नीचे के मुक़ाबले काफ़ी ठंडा हो जाता है। इसे देखकर उतरें तो कठिनाई से विश्वास आएगा कि आप इस पर गए थे (जबकि आज इससे बहुत ऊँची इमारतें बनाई जा चुकी हैं)। 1250 फ़ुट ऊँची इमारत में चढ़ने के लिए लिफ़्ट से सिर्फ़ 3 मिनट लगते हैं। उन भव्य इमारतों को देखकर वह ‘क्लब’ में जाता है, वहाँ वह देखता है कि हर स्त्री और पुरुष सब मिलकर ख़ूब नाच रहे हैं। ‘कितने भाग्यशाली हैं ये लोग,’ वह सोचता है, लेकिन ज़्यादा देर नहीं होती कि इस झुंड में से एक नवयुवती आकर उसके पास सीट पर बैठ जाती है, वह बहुत दुखी है।

“पर्यटक! क्या मैं बहुत बदसूरत हूँ?” स्त्री कहती है।

“मुझे तो नहीं लगता।”

“मुझे ऐसा मालूम होता है कि मुझमें लुभावनापन नहीं है।”

“मेरे ख़्याल में तो तुममें ग्लैमर है।”

“शुक्रिया, लेकिन अब न मुझे नौजवान टैप (tap) करते हैं और न डेट (date) माँगते हैं। मुझे ज़िंदगी वीरान नज़र आने लगी है।”

यह आधुनिक काल के इंसान की एक हल्की-सी झलक है। हक़ीक़त यह है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी की उन्नति ने सिर्फ़ मकानों को तरक़्क़ी दी है। उसने रहने वालों के दिल का सुकून छीन लिया है। उसने शानदार मशीनें खड़ी की हैं, मगर इन मशीनों में काम करने वाले इंसानों को चैन से वंचित कर दिया है। यह साइंस और टेक्नोलॉजी के 400 वर्षीय इतिहास का अंतिम परिणाम है। फिर किस आधार पर यह विश्वास कर लिया जाए कि साइंस और टेक्नोलॉजी वह शांति और प्रसन्नता की दुनिया बनाने में सफल होगी, जिसकी इंसान को तलाश है।

अब आप नैतिकता की माँग को लीजिए। इस हैसियत से जब हम देखते हैं तो दुनिया के हालात कठोर रूप से इस बात की माँग करते हैं कि उसका एक परलोक हो। इसके बग़ैर सारा इतिहास बिल्कुल निर्थरक मालूम होता है।

यह हमारी एक प्राकृतिक अनुभूति है कि हम भलाई और बुराई, अत्याचार व न्याय में भेद करते हैं। इंसान के अतिरिक्त किसी भी प्राणी में यह विशिष्टता नहीं पाई जाती, लेकिन इंसान ही की दुनिया वह दुनिया है, जिसमें इस अनुभूति को सबसे अधिक पैरों तले रौंदा जा रहा है। इंसान ही इंसान पर अत्याचार करता है। वह उसे लूटता है, उसी को क़त्ल करता है और तरह-तरह से उसे तकलीफ़ पहुँचाता है। हालाँकि जानवरों तक का यह हाल है कि वे अपनी जाति के साथ बेरहमी नहीं करते। भेड़िये और शेर अपनी जाति के लिए भेड़िये और शेर नहीं हैं, मगर इंसान स्वयं इंसान के लिए भेड़िया बना हुआ है। निःसंदेह मानव इतिहास में सत्य की पहचान की चिंगारियाँ भी मिलती हैं और वह बहुत आदर योग्य भी है, मगर उसका एक बड़ा हिस्सा अधिकारों के हनन की कथाओं से भरा हुआ है। इतिहासकार

को बड़ी निराशा होती है, जब वह देखता है कि इंसान की अंतरात्मा जो कुछ चाहती है, दुनिया के हालात इसके विरुद्ध हैं। यहाँ मैं कुछ कथनों का अनुकरण करूँगा—

वॉल्टेयर— "मानव इतिहास मात्र अपराधों और मुसीबतों की एक तस्वीर है।" (Story of Philosophy by Will Durant, p.220)

हरबर्ट स्पेंसर— "इतिहास मात्र बे-फ़ायदा गप है।"

नेपोलियन— "सारा-का-सारा इतिहास निरर्थक क़िस्से का नाम है।"

एडवर्ड गिब्सन— "मानवता का इतिहास अपराधों, मूर्खता और दुर्भाग्य के रजिस्टर से कुछ ही अधिक है।"

हैकल— "जनता और शासन ने इतिहास के अध्ययन से जो एकमात्र चीज़ सीखी है, वह सिर्फ़ यह कि इन्होंने इतिहास से कुछ नहीं सीखा।"

(Western Civilization by Edward McNall Burns, p.871)

क्या मानवता का यह भव्य नाटक इसीलिए खेला गया था कि वह इस प्रकार की भयावह कहानी वजूद में लाकर हमेशा के लिए समाप्त हो जाए? हमारी प्रकृति जवाब देती है कि नहीं, इंसान के अंदर इंसाफ़ का अहसास माँग करता है कि ऐसा नहीं हो सकता और न ही ऐसा होना चाहिए। एक दिन ऐसा आना ज़रूरी है, जब सत्य और असत्य अलग हों, ज़ालिम को उसके ज़ुल्म का और मज़लूम को उसकी मज़लूमियत का बदला मिले। यह एक ऐसी तलब है, जिसे उसी प्रकार इतिहास से अलग नहीं किया जा सकता, जिस प्रकार इसे इंसान से अलग नहीं किया जा सकता।

प्रकृति और घटना का यह टकराव बताता है कि इस ख़ालीपन को

अनिवार्य रूप से भरना चाहिए— जो कुछ हो रहा है और जो कुछ होना चाहिए, दोनों का फ़र्क़ साबित करता है कि अभी जीवन के प्रकटन की कोई स्टेज बाक़ी है। यह ख़ालीपन पुकार रहा है कि एक समय ऐसा होना चाहिए, जब दुनिया की पूर्णता हो। मुझे आश्चर्य है कि लोग 'हार्डी' के फ़लसफ़े पर ईमान लाकर दुनिया को अत्याचार और निर्दयता की जगह समझने लगते हैं, लेकिन यही क्रूर स्थिति इन्हें इस विश्वास की ओर नहीं ले जाती कि जो कुछ आज मौजूद नहीं है, अक़्ल का तक़ाज़ा है कि उसे कल वजूद में आना चाहिए।

"क़यामत न हो तो इन अत्याचारियों का सिर कौन तोड़े"— यह वाक्य अक्सर एक दर्दनाक आह के साथ उस समय मेरी ज़ुबान से निकल जाता है, जब मैं अख़बार पढ़ता हूँ। अख़बार मानो दुनिया के रोज़ाना के हालात की एक तस्वीर है, मगर अख़बार हमें दुनिया के हालात के बारे में क्या बताते हैं? वे अपहरण और हत्या की ख़बरें देते हैं, चोरी और दोषारोपण की कहानियाँ सुनाते हैं, राजनीतिक व्यापार और व्यापारिक राजनीति के झूठे प्रचार हमारे दिमाग़ों में भरते हैं। वे बताते हैं कि अमुक शासक ने अपने मातहत कमज़ोरों को दबा लिया, अमुक क़ौम ने क़ौमी स्वार्थों के लिए अमुक इलाक़े पर क़ब्ज़ा कर लिया, अभिप्राय यह कि अख़बार, संत-फ़क़ीर और शासकों के छल-कपटों की दास्तान के अतिरिक्त और कुछ नहीं और निकट भविष्य में भारत में होने वाली दुर्घटनाओं, विशेष रूप से जबलपुर, कलकत्ता, जमशेदपुर और राउरकेला के रक्तपात के बाद तो ऐसा मालूम होता है कि इस दुनिया में किसी भी कल्पनीय या अकल्पनीय निकृष्टतम बुराई को असंभव नहीं समझना चाहिए। एक राष्ट्र धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र और अहिंसा का झंडा उठाकर बर्बरतापूर्ण सांप्रदायिकता, रक्तपात से पूर्ण आदेशों और निकृष्टतम हिंसा के अपराध करा सकता है। एक लीडर जिसे मानवता पर उपकार करने वाला, शांति और सुरक्षा के

संदेशवाहक की उपाधि दी गई हो, ठीक उसके शासन में मानवता के ऊपर ऐसे शर्मनाक अत्याचार किए जा सकते हैं, जिनसे चीते, भेड़िये और जंगली सुअर भी पनाह माँगें, यहाँ तक कि प्रकाशन व प्रसारण के इस दौर में यह भी संभव है कि दुनिया के एक बहुत बड़े देश में बहुत बड़े पैमाने पर खुले तौर पर एक दल को लूटने, जलाने व क़त्ल करने की बहुत ही भयानक घटनाएँ बेहद संगठित तरीक़े से घटित हों और महीनों-सालों होती रहें, मगर इसके बावजूद दुनिया की प्रैस इनसे बेख़बर हो और इतिहास के पन्नों से वे इस प्रकार मिट जाएँ, जैसे कुछ हुआ ही नहीं— हक़ीक़त यह है कि एक ऐसी दुनिया स्वयं अपने संपूर्ण अस्तित्व के साथ इस बात की घोषणा है कि वह अपूर्ण है और इसका अपूर्ण होना इस बात का सबूत है कि एक समय आना चाहिए, जब वह पूर्ण हो जाए।

इस बात को एक और पक्ष से देखिए। प्राचीनकाल से इंसान के सामने यह समस्या रही है कि लोगों को सत्य-पथ पर कैसे स्थापित रखा जाए। अगर इस उद्देश्य के लिए सभी लोगों की तुलना में कुछ लोगों को राजनीतिक अधिकार दिया जाए तो हो सकता है कि उनके मातहत उनकी पकड़ के डर से ज़्यादतियाँ न करें, लेकिन इस उपाय में स्वयं इन आधिकारिक लोगों को न्याय पर क़ायम रखने का कोई प्रेरक उपस्थित नहीं। अगर इस उद्देश्य के लिए क़ानून बनाया जाए और पुलिस का विभाग क़ायम हो तो उन स्थानों और अवसरों पर आदमी को कौन कंट्रोल करे, जहाँ पुलिस और क़ानून नहीं पहुँचते और न ही पहुँच सकते। अगर अपील और प्रोपेगंडा की मुहिम चलाई जाए तो प्रश्न पैदा होता है कि मात्र किसी अपील के आधार पर कोई व्यक्ति अपने मिलते हुए फ़ायदे को क्यों छोड़ देगा। दुनिया की सज़ा का ख़ौफ़ भ्रष्टता को बिल्कुल रोक नहीं सकता, क्योंकि हर व्यक्ति अच्छी तरह जानता है कि झूठ, रिश्वत, सिफ़ारिश, प्रभावों का अनुचित इस्तेमाल और इसी

प्रकार के दूसरे बहुत से ज़रिये मौजूद हैं, जो सज़ा की हर संभावना को निश्चित रूप से समाप्त कर सकते हैं।

हक़ीक़त यह है कि कोई ऐसा प्रेरक ही भ्रष्टता को रोकने में कारगर हो सकता है, जो इंसान के अपने अंदर मौजूद हो, जो इंसान के अपने इरादे में शामिल हो जाए। बाह्य प्रेरक (external motivation) कभी इस मामले में सफल नहीं हो सकता और यह बात सिर्फ़ परलोक के विचार में संभव है। परलोक यानी इंसाफ़ का दिन (Day of Judgement) के सिद्धांत में एक ऐसा प्रेरक मौजूद है, जो भ्रष्टताओं से बचने के मामले को हर व्यक्ति का अपना मामला बना देता है। वह हर व्यक्ति के लिए समान महत्व रखता है, चाहे वह अधीनस्थ हो या अधिकारी, अँधेरे में हो या उजाले में। हर व्यक्ति यह सोचने लगता है कि उसे ईश्वर के सामने जाना है और हर व्यक्ति यह समझता है कि ईश्वर उसे देख रहा है और उससे अनिवार्य रूप से पूछताछ करेगा। धार्मिक आस्था के इसी महत्व के आधार पर सत्रहवीं शताब्दी के एक प्रसिद्ध जज मैथ्यू हेल्स ने कहा है—

"यह कहना कि धर्म एक फ़रेब है, उन समस्त ज़िम्मेदारियों और पाबंदियों को निरस्त करना है जिनसे सामाजिक व्यवस्था को बरक़रार रखा जाता है।" (Religion without Revelation, p.115)

परलोक के दृष्टिकोण का यह पहलू कितना महत्वपूर्ण है, इसका अनुमान इससे कीजिए कि बहुत से लोग जो ईश्वर पर यक़ीन नहीं रखते, जो इस बात को बतौर एक सच्ची घटना नहीं मानते कि कोई फ़ैसले का दिन आने वाला है, वे इतिहास के अनुभव के आधार पर मानने पर विवश हुए हैं कि इसके अतिरिक्त कोई चीज़ नहीं है, जो इंसान को क़ाबू में रख सकती हो और हर हाल में उसे न्याय की शैली पर क़ायम रहने के लिए विवश कर सके। प्रख्यात जर्मन दार्शनिक कांट

ने ईश्वर के विचार को यह कहकर रद्द कर दिया है कि इसकी मौजूदगी का कोई संतोषजनक सबूत हमें नहीं मिलता। उसके निकट सैद्धांतिक औचित्य (theoretical reason) तो यक़ीनन मज़हब के पक्ष में नहीं है, मगर नैतिक पक्ष से मज़हब के व्यावहारिक औचित्य (practical reason) को वह स्वीकार करता है (Story of Philosophy, New York. 1954, p.279)। वॉल्टेयर किसी अलौकिक वास्तविकता को नहीं मानता, मगर उसके निकट, "ईश्वर और दूसरे जीवन के विचार की महत्ता इस लिहाज़ से बहुत अधिक है कि वह नैतिकता के लिए औचित्य (postulates of the moral feeling) का काम देते हैं। उसके निकट सिर्फ़ इसी के द्वारा ही उत्तम नैतिकता का माहौल पैदा किया जा सकता है। अगर यह आस्था समाप्त हो जाए तो अच्छे कार्य करने के लिए कोई प्रेरक बाक़ी नहीं रहता और इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था का बरक़रार रहना संभव हो जाता है।"

(History of Philosophy by Windelband, p.496)

जो लोग परलोक को फ़र्ज़ी विचार कहते हैं, उन्हें सोचना चाहिए कि परलोक अगर फ़र्ज़ी है तो हमारे लिए इतना ज़रूरी क्यों है? क्यों ऐसा है कि इसके बग़ैर हम सही अर्थों में कोई सामाजिक व्यवस्था बना ही नहीं सकते? इंसानी ज़ेहन से इस विचार को निकालने के बाद क्यों हमारा सारा जीवन दुर्दशाग्रस्त हो जाता है? क्या कोई फ़र्ज़ी चीज़ जीवन के लिए इतनी आवश्यक हो सकती है? क्या इस सृष्टि में ऐसी कोई मिसाल पाई जाती है कि एक चीज़ वास्तव मौजूद न हो, मगर इसके बावजूद इतनी वास्तविक बन जाए कि जीवन से उसका कोई संबंध न हो, मगर इसके बाद भी वह जीवन से इतनी संबंधित नज़र आए? जीवन के सही और न्यायिक प्रबंधन के लिए परलोक के विचार का इतना आवश्यक होना स्वयं यह प्रकट करता है कि परलोक इस दुनिया की सबसे बड़ी वास्तविकता है, बल्कि अगर मैं यह कहूँ तो इसमें कोई

अतिशयोक्ति न होगी कि परलोक के विचार के पक्ष में तार्किकता का एक ऐसा पक्ष है, जो इस सिद्धांत को प्रयोगशाला के परीक्षण के स्तर पर सही साबित कर रहा है।

अब एक और पहलू से देखिए, जिसे मैं 'ब्रह्मांडीय माँग' कहता हूँ। पिछले अध्याय में मैंने ब्रह्मांड में ईश्वर के अस्तित्व पर चर्चा की है। उससे यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि ठीक ज्ञानात्मक और बौद्धिक अध्ययन ही की यह माँग है कि हम इस ब्रह्मांड का एक ईश्वर मानें। अब अगर इस दुनिया का कोई ईश्वर है तो निश्चित ही बंदों के साथ इसके संबंध को ज़ाहिर होना चाहिए। यह कब ज़ाहिर होगा, जहाँ विद्यमान संसार का संबंध है, विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि आज यह संबंध ज़ाहिर नहीं हो रहा है। आज जो व्यक्ति ईश्वर का इनकार करता है और खुलेआम यह ऐलान करता है— "मैं ईश्वर से नहीं डरता"— उसे नेतृत्व और सत्ता प्राप्त हो जाती है। इसके विपरीत जो ईश्वर के बंदे ईश्वर का काम करने के लिए उठते हैं, उनकी सक्रियताओं को समय की सत्ता ग़ैर-क़ानूनी क़रार दे देती है। जो लोग ईश्वर का मज़ाक़ उड़ाते हैं और कहते हैं कि "हमारा रॉकेट चाँद तक पहुँच गया और रास्ते में उसे कोई ईश्वर नहीं मिला।" उनके विचारों को फैलाने के लिए असंख्य संस्थान काम कर रहे हैं और पूरे-पूरे देशों के संसाधन व माध्यम उनकी सेवा के लिए समर्पित हैं और जो लोग ईश्वर और धर्म की बात पेश कर रहे हैं, उन्हें समस्त विशेषज्ञ और समय के विद्वान पीछे जाने वाले और अतीत के अँधेरे में भटकने वाला कहकर रद्द कर देते हैं। लोग पैदा होते हैं और मर जाते हैं, क़ौमें बनती हैं और बिगड़ती हैं, क्रांतियाँ आती हैं और चली जाती हैं, सूरज निकलता है औ डूब जाता है, मगर ईश्वर के ईश्वरत्व का प्रकटन नहीं होता। ऐसी स्थिति में प्रश्न यह है कि हम ईश्वर को मानते हैं या नहीं। अगर हम ईश्वर को मानते हैं

तो हमें परलोक को भी मानना पड़ेगा, क्योंकि ईश्वर और बंदों का संबंध प्रकट होने की इसके सिवा कोई स्थिति नहीं।

डार्विन इस दुनिया का एक उत्पत्तिकर्ता स्वीकार करता है, लेकिन उसने जीवन की जो व्याख्या की है, उसके अंदर उत्पत्तिकर्ता और उत्पत्ति (Creator and Creation) के बीच कोई संबंध साबित नहीं होता और न ब्रह्मांड के किसी ऐसे अंजाम की आवश्यकता मालूम होती है, जहाँ यह संबंध प्रकट हो। मुझे नहीं मालूम कि डार्विन अपने जैविकी दृष्टिकोण की इस रिक्तता को कैसे भरेगा, मगर मेरी बुद्धि को यह बात बहुत ही अधिक विचित्र मालूम होती है कि उसके ब्रह्मांड का एक ईश्वर तो हो, मगर दुनिया से उसका कोई संबंध न हो और बंदरों की तुलना में उसकी जो मालिकाना हैसियत है, वह कभी सामने न आए। इतनी बड़ी सृष्टि पैदा होकर समाप्त हो जाए और यह प्रकट न हो कि इसके अस्तित्व में आने का उद्देश्य क्या था और जिसने इसे बनाया था, वह किस प्रकार के गुण रखने वाली हस्ती थी।

हक़ीक़त यह है कि अगर बुद्धिमत्ता से विचार किया जाएगा तो दिल पुकार उठेगा कि निःसंदेह क़यामत आने वाली है, बल्कि आपको बिल्कुल घटती हुई नज़र आएगी। आप देखेंगे कि गर्भवती के पेट में जिस प्रकार इसका गर्भ बाहर आने के लिए व्याकुल होता है, इसी प्रकार क़यामत सृष्टि के अंदर बोझिल हो रही है और निकट है कि किसी भी सुबह व शाम इंसानों के ऊपर फट पड़े—

> "लोग यह पूछते हैं कि कहाँ है क़यामत, कहो इसका ज्ञान तो सिर्फ़ ईश्वर को है। वही अपने समय पर उसे प्रकट करेगा। वह धरती व आकाश में बोझिल हो रही है, वह बिल्कुल अचानक तुम पर आ पड़ेगी।" (क़ुरआन, 7:187)

अनुभवात्मक गवाही

अब हम इस चर्चा के आख़िरी हिस्से पर आते हैं। “क्या इसकी कोई अनुभवात्मक गवाही मौजूद है कि मृत्यु के बाद दूसरा जीवन है?” इसका उत्तर यह है कि हमारा पहला जीवन स्वयं इसका सबसे बड़ा सबूत है। जो लोग दूसरे जीवन का इनकार करते हैं, वे निश्चित रूप से पहले जीवन का इक़रार कर रहे हैं। फिर जो जीवन एक बार संभव है, वह दूसरी बार क्यों प्रकटन में नहीं आ सकता? एक अनुभव जिससे आज हमारा सामना हो रहा है, वही अगर दोबारा हमारे साथ पेश आए तो इसमें असंभावना होने की कौन-सी बात है? हक़ीक़त यह है कि इस ब्रह्मांड में इससे अधिक अक़्ल के ख़िलाफ़ बात और कोई नहीं हो सकती कि एक घटना को आप वर्तमान में स्वीकार करें, लेकिन भविष्य के लिए इसी घटना का इनकार कर दें।

यह वर्तमान इंसान की अजीब हठ है कि ब्रह्मांड की कारणता के लिए स्वयं उसने जो ‘ईश्वर’ गढ़े हैं, उनके बारे में तो पूरे विश्वास के साथ प्रकटीकरण करता है कि वे घटनाओं को दोबारा पैदा कर सकते हैं, मगर धर्म जिस ईश्वर का विचार प्रस्तुत करता है, उसके संबंध में इसे यह स्वीकार नहीं है कि वह घटनाओं को दोबारा अस्तित्व में ले आएगा। जेम्स जींज़ ने यह बताते हुए कहा है कि वर्तमान धरती और इसके समस्त प्रदर्शन एक ‘घटना’ के पैदा किए हुए हैं। इस सिद्धांत के समर्थकों की स्पष्टता मैं इन शब्दों में करता हूँ—

“इसमें कोई हैरानी की बात नहीं, अगर हमारी धरती मात्र कुछ घटनाओं के नतीजे में अस्तित्व में आई हो, अगर ब्रह्मांड इसी प्रकार लंबी अवधि तक क़ायम रहे तो किसी भी कल्पनीय घटना का घटित हो जाना संभव है।” (Modern Scientific Thought, p.3)

विकास के सिद्धांत का दावा है कि प्राणियों की विभिन्न प्रजातियाँ एक ही प्रारंभिक जाति से उन्नति करके अस्तित्व में आई हैं। अतः डार्विन की स्पष्टता के अनुसार वर्तमान जिराफ़ दूसरे खुर वाले चौपायों की तरह था, लेकिन प्रजनन की दीर्घ प्रक्रिया के बीच छोटे-छोटे परिवर्तनों (variations) के इकट्ठा होने से अंततः वह असाधारण रूप से एक लंबा ढाँचा प्राप्त करने में सफल हो गया। इसकी स्पष्टता करते हुए उसने अपनी किताब के सातवें अध्याय में लिखा है—

"मेरे निकट यह लगभग विश्वसनीय है कि (अगर दीर्घ अवधि तक वांछित क्रिया जारी रहे तो) एक साधारण खुर वाले चौपाए को जिराफ़ के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है।"

(Origin of Species, p.169)

इसी प्रकार जिसने भी जीवन और ब्रह्मांड की कोई व्याख्या की है, बिल्कुल प्राकृतिक रूप से उसे यह भी मानना पड़ेगा कि परिस्थितियों की उपस्थिति को वह जीवन और ब्रह्मांड का सबब क़रार देता है। वही परिस्थिति अगर दोबारा अर्जित हो सके तो निश्चित ही यही घटनाएँ दोबारा अस्तित्व में आ सकती हैं। हक़ीक़त यह है कि बौद्धिक रूप से दूसरे जीवन की संभावना उतनी ही है, जितनी पहले जीवन की। ब्रह्मांड या ब्रह्मांड का जो भी सृजनकर्ता हम स्वीकार करें, हमें मानना पड़ेगा कि वह सृजनकर्ता उन्हीं घटनाओं को दोबारा अस्तित्व में ला सकता है, जिसे उसने एक बार पैदा किया है। इस स्वीकृति से हम सिर्फ़ उसी स्थिति में बच सकते हैं, जबकि हम पहले जीवन का इनकार कर दें। पहले जीवन को मान लेने के बाद हमारे पास दूसरे जीवन को न मानने का कोई आधार शेष नहीं रहता।

मनोवैज्ञानिक खोज, जिसका हमने ऊपर वर्णन किया है, उसके अनुसार अवचेतन या दूसरे शब्दों में इंसान की स्मृति के ख़ाने में उसके

समस्त विचार हमेशा के लिए सुरक्षित रहते हैं। यह बात स्पष्ट रूप से प्रमाणित करती है कि इंसान का मस्तिष्क उसके शरीर का हिस्सा नहीं है। शरीर का यह हाल है कि इसके कण प्रत्येक कुछ वर्षों के बाद बिल्कुल बदल जाते हैं, लेकिन अवचेतन के दफ़्तर में 100 वर्ष बाद भी कोई बदलाव, कोई धुँधलापन, कोई भूल या संदेह पैदा नहीं होता। अगर यह स्मृति का दफ़्तर शरीर से संबंधित है तो वह कहाँ रहता है, शरीर के किस भाग में है और शरीर के कण जब कुछ वर्ष बाद ग़ायब हो जाते हैं तो वह क्यों ग़ायब नहीं होता? यह कौन-सा रिकॉर्ड है कि रिकॉर्ड की तख़्ती टूटकर समाप्त हो जाती है, लेकिन वह समाप्त नहीं होता? आधुनिक मनोविज्ञान का यह अध्ययन स्पष्ट रूप से साबित करता है कि इंसानी अस्तित्व वास्तव में उस शरीर का नाम नहीं है, जिस पर घिसाव और मृत्यु की क्रिया छा जाती है, बल्कि इसके अलावा उसके अंदर एक और चीज़ है, जिसके लिए समाप्त होना नहीं है और जो पतन में ग्रस्त हुए बग़ैर अपने अस्तित्व को स्थायी रूप से समान स्थिति में शेष रखती है।

इससे यह भी मालूम हुआ कि टाइम एंड स्पेस के क़ानून सिर्फ़ हमारी वर्तमान दुनिया के अंदर लागू हैं और अगर मौत के बाद कोई और दुनिया है तो वह इन कानूनों की परिधि क्रिया से बाहर है। वर्तमान जीवन में हमारा हर विवेकी कार्य टाइम एंड स्पेस के विधानों के अनुसार घटित होता है, लेकिन अगर फ्राइड के सिद्धांत के अनुसार हमारा कोई ज़ेहनी जीवन ऐसा है, जो इन विधानों की पाबंदी से बरी है तो इसका अर्थ स्पष्ट रूप से यह है कि यह जीवन मृत्यु के बाद भी जारी रहेगा। हम मृत्यु के बाद भी जीवित रहेंगे। हमारी मृत्यु स्वयं टाइम एंड स्पेस के कानूनों के अमल का नतीजा है। चूँकि हमारी असल हस्ती या फ्राइड के शब्दों में, हमारा अवचेतन इन विधानों के अमल से आज़ाद है, इसलिए ज़ाहिर है कि मृत्यु इस पर नहीं आती, बल्कि सिर्फ़ भौतिक

या तात्त्विक शरीर पर आती है। अवचेतन, जो असल में इंसान है, वह इसके बाद भी शेष रहता है— जैसे एक घटना, जो 25 वर्ष पहले गुज़री थी या एक विचार, जो मेरे दिमाग़ में 20 वर्ष पहले आया था और अब मैं उसे बिल्कुल भूल चुका था, उसे आज मैं सपने में देखता हूँ। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से इसका अर्थ यह है कि वह मेरी स्मृति (अचेतन या अवचेतन) के ख़ाने में वैसे-का-वैसा मौजूद था। अब प्रश्न यह है कि यह स्मृति या स्मरणशक्ति कहाँ है? अगर वह कोशिकाओं के ऊपर अंकित थी, जैसे ग्रामोफ़ोन के रिकॉर्ड के ऊपर आवाज़ अंकित रहती है, तो वे कोशिकाएँ जो 25 वर्ष पहले उन विचारों का रिकॉर्ड बनी थीं, वे बहुत पहले टूटकर और मृत होकर मेरे शरीर से निकल गईं। अब न उन कोशिकाओं का बा-हैसियत कोशिका कहीं अस्तित्व है और न मेरा उससे कोई संबंध है। फिर यह विचार मेरे शरीर के किस स्थान पर था, यह एक अनुभवात्मक गवाही इस बात की है कि शरीर से अलग एक और दुनिया है, जो स्वयं अपना अस्तित्व रखती है, जो शरीर के समाप्त होने से समाप्त नहीं होती।

इसी प्रकार मनोवैज्ञानिक अनुसंधान (psychical research) के परिणाम जो सामने आए हैं, वे भी शुद्ध अनुभवात्मक और अवलोकनीय स्तर पर मृत्यु के बाद जीवन के अस्तित्व को साबित करते हैं। इसमें हमारे नुक्ता-ए-नज़र से और अधिक रुचि की बात यह है कि ये केवल मौत के बाद की ज़िंदगी को साबित नहीं करते, बल्कि यह भी साबित करते हैं कि जिस इंसान के अंदर मरने से पहले जो शख़्सियत थी, वही शख़्सियत मरने के बाद भी बाक़ी रहेगी।

इंसान की बहुत-सी ऐसी विशिष्टताएँ हैं, जो अपने आपमें स्वयं तो पहले से विद्यमान थीं, मगर उन पर वैज्ञानिक शैली से चिंतन-मनन नहीं हुआ था, जैसे सपने देखना इंसान की प्राचीनतम विशेषता है, लेकिन

आधुनिक काल में सपने के अध्ययन से जो मनोवैज्ञानिक वास्तविकताएँ मालूम की गई हैं, इनसे प्राचीनकाल के लोग अनजान थे। इसी प्रकार कई और प्रकटन हैं, जिनके संबंध में वर्तमान समय में विधिवत आँकड़े जमा किए गए और वैज्ञानिक शैली से उनका विश्लेषण किया गया। इस प्रकार आधुनिक अध्ययन के द्वारा उन घटनाओं से अति महत्वपूर्ण परिणाम बरामद हुए हैं। उसी में से एक 'मनोवैज्ञानिक अनुसंधान' है, जो आधुनिक मनोविज्ञान की एक शाख़ है और जिसका उद्देश्य इंसान की अप्राकृतिक योग्यताओं का अनुभवात्मक अध्ययन है। इस प्रकार के अनुसंधान के लिए सबसे पहली संस्था 1882 ईस्वी में इंग्लैंड में स्थापित हुई और 1889 ईस्वी में उसने 17 हज़ार व्यक्तियों से संपर्क स्थापित करके विस्तृत पैमाने पर अपनी खोज आरंभ कर दी। अब यह 'मनोविज्ञान के अध्ययन का संस्थान' (Society for Psychical Research) के नाम से मौजूद है और इसी विशेषता के दूसरे संस्थान दूसरे देशों में काम कर रहे हैं। इन संस्थानों ने विभिन्न प्रदर्शनों और परीक्षणों के द्वारा साबित किया है कि मरने के बाद इंसान का व्यक्तित्व किसी रहस्यमय रूप में बाक़ी रहता है।

एक एजेंट मिसौरी, अमेरिका में सेंट जोज़फ़ होटल के एक कमरे में बैठा हुआ अपने ऑर्डर नोट कर रहा था कि 'अचानक' वह लिखता है, मुझे अहसास हुआ कि मेरी दाईं ओर कोई बैठा हुआ है। मैंने तेज़ी से मुड़कर देखा तो साफ़ तौर पर मुझे नज़र आया कि वह मेरी बहन है। उसकी यह बहन 9 वर्ष पहले मर चुकी थी। कुछ देर बाद बहन की यह आकृति उसके सामने से ग़ायब हो गई, मगर इस घटना से वह इतना प्रभावित हुआ कि अपनी यात्रा जारी रखने के बजाय वह दूसरी ट्रेन से अपने वतन सेंट लुईस वापस चला गया। घर आकर उसने इस घटना का पूरा विवरण अपने संबंधियों को बताया। जब वह कहते-कहते इस वाक्य

पर पहुँचा कि "मैंने बहन के चेहरे की दाईं ओर सुर्ख़ रंग की एकदम साफ़ रगड़ का निशान देखा" तो उसकी माँ सहसा काँपते हुए क़दमों से खड़ी हो गई और उसने बताया कि लड़की की मौत के बाद एक संयोगी कारण से मुझसे यह रगड़ उसके चेहरे पर पड़ गई थी। इस कुरूपता का मुझे सख़्त अहसास हुआ और तुरंत पाउडर लगाकर मैंने रगड़ के सारे लक्षण उसके चेहरे से मिटा दिए और फिर किसी से इसकी चर्चा नहीं की।... (इस प्रकार की घटनाएँ सिर्फ़ यूरोप और अमेरिका की विशिष्टता नहीं हैं, बल्कि दुनिया की हर आबादी में इसके उदाहरण पाए जाते हैं। चूँकि वर्तमान काल की अधिकतर खोज यूरोप और अमेरिका के क्षेत्र में हुई हैं, इसलिए ज्ञानात्मक तथ्यों के सिलसिले में अधिकतर इनका वर्णन आता है। अगर कुछ साहसी लोग हमारे क्षेत्र में इस कार्य को आरंभ करें तो अधिकता से अति विश्वसनीय और मज़बूत गवाहियाँ एकत्र हो सकती हैं। मुझे व्यक्तिगत रूप से स्वयं भी कुछ ऐसी घटनाओं की जानकारी है, जो इस सिलसिले में बहुत आश्चर्यजनक साक्ष्य उपलब्ध कराती हैं— अफ़सोस हमारी क़ौम में न तो किसी को इस प्रकार के कार्यों में पूँजी लगाने का जज़्बा है और न अपना समय देने का।)
(Human Personality and its survival of Bodily Death by F.W.H. Myers (New York. 1930, V.2, p.27-30)

इस प्रकार की बहुत-सी घटनाएँ हैं, जो मरने के बाद व्यक्तित्वों की उपस्थिति का प्रमाण उपलब्ध कराती हैं। इस प्रकार की घटनाओं को भ्रम व कल्पना नहीं कहा जा सकता, क्योंकि चेहरे की ख़राश यानी रगड़ की जानकारी या तो माँ को थी या मुर्दा लड़की को, तीसरा कोई भी व्यक्ति इसे बिल्कुल नहीं जानता था।

दूसरी तरह की घटनाएँ, जो मृत्यु के बाद जीवन का अनुभवात्मक सबूत अर्जित करती हैं। वे ऐसे लोग हैं, जिन्हें स्वतः

प्रवृत्त (automatists) कहा जाता है। यह वह पुरुष व स्त्री हैं, जिनसे ऐसे कार्य संपन्न होते हैं, जो यह साबित करते हैं कि किसी मरने वाले की आत्मा उसके अंदर रहती है। ऐसा आदमी अपने परीक्षण करने वाले के सामने कुछ ऐसी आंशिक घटनाएँ पेश करता है, जिन्हें सिर्फ़ मरा हुआ आदमी जानता है और जो कुछ दिन बाद सही साबित होती हैं। इसी प्रकार जैसे देखा जाता है कि वह किसी व्यक्ति से बात कर रहा है और इसी के साथ हाथ में पेंसिल लिये हुए बिल्कुल दूसरे शीर्षक पर लिख रहा है, जिसके विषय की उसे स्वयं भी उस समय तक ख़बर नहीं होती। जब तक वह लिखने के बाद उसे पढ़ न ले मानो उसके अंदर इसके सिवा कोई और व्यक्तित्व है, जो उसके हाथ से लिखवा रहा है।

(A Philosophical Scrutiny of Religion, p.407-10)

इस तर्क को स्वीकार करने में बहुत से आधुनिक ज़ेहनों को संकोच है। सी०डी० ब्रॉड ने लिखा है—

“साइकिकल रिसर्च के संदेहजनक अपवाद के अलावा विज्ञान की भिन्न शाख़ों में से कोई शाख़ मृत्यु के बाद जीवन की छोटी-सी संभावना भी साबित नहीं करती।”

(Religion Philosophy and Psychical Research. London 1953, p.235)

लेकिन यह दलील देना ऐसा ही है, जैसे कहा जाए कि ‘सोचना’ एक संदिग्ध काम है, क्योंकि इंसान के सिवा कोई ऐसा अस्तित्व इस ब्रह्मांड में हमारे अनुभव में नहीं आया, जो ‘सोचने’ की प्रक्रिया की पुष्टि करता हो। ज़ाहिर है कि जीवन का शेष रहना या न रहना एक मनोवैज्ञानिक समस्या है, इसलिए मनोविज्ञान ही से इसका सबूत मिलेगा या सबूत नहीं मिलेगा। किसी और विज्ञान में इसकी पुष्टि ढूँढना ऐसा ही है, जैसे सोचने के प्राकृतिक प्रकटन को समझने के लिए वनस्पतियों

और खनिज तत्त्वों से पुष्टि की माँग की जाए। यही नहीं, बल्कि स्वयं इंसान के शारीरिक अंगों के अध्ययन को भी इसकी पुष्टि या खंडन के लिए आधार नहीं बनाया जा सकता, क्योंकि जिस चीज़ के अस्तित्व का दावा किया गया है, वह वर्तमान भौतिक शरीर नहीं, बल्कि वह आत्मा है, जो शरीर से अलग शरीर के अंदर मौजूद रहती है।

अतः दूसरे बहुत से विद्वान, जिन्होंने उन साक्ष्यों का निष्पक्ष अध्ययन किया है, वे मृत्यु के बाद जीवन को विधिवत घटना स्वीकार करने पर विवश हुए हैं। ब्राउन यूनिवर्सिटी में दर्शनशास्त्र के प्रोफ़ेसर सी०जे० डूकास ने अपनी किताब के सत्रहवें अध्याय में मृत्यु के पश्चात जीवन के विचार का दर्शनशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक जायज़ा लिया है। प्रोफ़ेसर महोदय हालाँकि धर्म के अर्थों में पारलौकिक जीवन की कल्पना पर आस्था नहीं रखते, मगर उनका विचार है कि ऐसे साक्ष्य मौजूद हैं कि धर्म की आस्था से अलग करके जीवन के स्थायित्व को हमें मानना पड़ता है। इस अध्याय के अंतिम भाग में उन्होंने साइकिकल रिसर्च की खोज का जायज़ा लेने के बाद लिखा है—

"कुछ बहुत ही बुद्धिमान और बहुत ही ज्ञानी लोग, जिन्होंने वर्षों तक अत्यंत आलोचनात्मक दृष्टि से संबंधित साक्ष्यों का बड़ा गहरा अध्ययन किया है। वे अंततः इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि कम-से-कम कुछ साक्ष्य ऐसे ज़रूर हैं, जिनमें सिर्फ़ आत्मा के स्थायित्व की परिकल्पना (survival hypothesis) ही बुद्धिसम्मत और संभव नज़र आती है। इनका कोई दूसरा स्पष्टीकरण नहीं किया जा सकता। इस सूची में प्रसिद्ध लोगों में से कुछ नाम यह हैं—

1. अलफ़्रेड रसेल वेलेस (Alfred Russel Wallace)
2. सर विलियम क्रुक्स (Sir William Crookes)

3. एफ़०डब्ल्यू०एच० मेयर्स (F.W.H. Myers)
4. कैसारे लोंब्रोसो (Casare Lombroso)
5. कैमिल फ्लेमेरियन (Camille Flammarion)
6. सर ऑलिवर लॉज (Sir Oliver Lodge)
7. डॉक्टर रिचर्ड हॉजसन (Dr. Richard Hodgson)
8. मिसेज़ हेनरी सिडविक (Mrs Henry Sidgwick)
9. प्रोफ़ेसर हिसलोप (Professor Hyslop)

इससे मालूम होता है कि मृत्यु के बाद के जीवन में आस्था, जिसे बहुत से लोग धार्मिक रूप से मानते हैं, न केवल यह सही हो सकता है, बल्कि यह एक ऐसी आस्था है, जिसे साबित किया जा सकता है और अगर ऐसा है तो इससे अलग जो मनगढ़ंत आस्था मृत्यु के बाद के जीवन के बारे में धार्मिक लोगों ने बना ली है, अंततः इसके बारे में निश्चित जानकारी प्राप्त हो सकेगी, मगर ऐसी स्थिति में इसकी धार्मिक विशेषता को मानना ज़रूरी नहीं होगा।

(A Philosophical Scrutiny of Religion, p.412)

यहाँ तक पहुँचने के बाद मृत्यु के बाद जीवन होने के संबंध में धार्मिक आस्था को न मानना ऐसा ही है, जैसे किसी ग्रामीण आदमी का आग्रह हो कि ऐसी कोई स्थिति नहीं हो सकती कि 2 हज़ार मील दूर बैठे हुए आपस में बात करें। इसके बाद उसके एक संबंधी को दूर के शहर से टेलीफ़ोन करके रिसीवर उसके कान पर लगा दिया जाए, मगर जब वह बात कर चुके तो कहे, "क्या ज़रूरी है कि वह मेरे किसी प्रिय की आवाज़ हो? संभव है कोई मशीन बोल रही हो।"

पैग़ंबरी का प्रमाण

ईश्वर के बाद धर्म की दूसरी अहम आस्था रिसालत या ईश-संदेश व आकाशवाणी है यानी यह आस्था कि ईश्वर इंसानों में से किसी इंसान पर अपना संदेश उतारता है और उसके द्वारा सभी इंसानों को अपनी इच्छा से अवगत कराता है। अब चूँकि प्रत्यक्ष में हमें ईश्वर और ईश-संदेश को प्राप्त करने वाले के बीच ऐसा कोई 'तार' नज़र नहीं आता, जिस पर ईश्वर का पैग़ाम सफ़र करके इंसानों तक पहुँचता हो, इसलिए बहुत से लोग इस दावे के सही होने से इनकार कर देते हैं। हालाँकि यह एक ऐसी चीज़ है, जिसे हम अपनी ज्ञात मालूमात की सहायता से आसानी से समझ सकते हैं।

हमारे चारों ओर ऐसी घटनाएँ मौजूद हैं, जो हमारी सीमित श्रवण शक्ति के दायरे से कहीं ऊँची हैं, मगर इसके बाद भी उन्हें प्राप्त किया जा सकता है। इंसान ने आज ऐसे यंत्रों का आविष्कार कर लिया है, जिनसे वह एक मक्खी के चलने की आवाज़ मीलों दूर से इस प्रकार सुन सकता है, जैसे वह उसके कान के पर्दे पर रेंग रही हो, यहाँ तक कि वह ब्रह्मांडीय किरणों (cosmic rays) के टकराव तक को रिकॉर्ड कर लेता है। इस प्रकार के यंत्र अब अधिकता से इंसान को प्राप्त हो चुके हैं, जो यह साबित करते हैं कि ग्रहण करने और सुनने की ऐसी परिस्थितियाँ भी संभव हैं, जो साधारण इंद्रियों के द्वारा एक व्यक्ति के लिए असंभव और अकल्पनीय हों।

फिर अनुभूति के ये विशिष्ट माध्यम सिर्फ़ एक मशीनी यंत्र तक सीमित नहीं, बल्कि प्राणीशास्त्र का अध्ययन बताता है कि प्रकृति ने स्वयं प्राणियों के भीतर ऐसी शक्तियाँ रखी हैं। निःसंदेह सामान्य इंसान की इंद्रियाँ बहुत सीमित हैं, मगर जानवरों की इंद्रियों का मामला इससे भिन्न है। कुत्ता अपनी खोजी नाक से उस जानवर की गंध सूँघ लेता है, जो रास्ते से निकल गया। अतः कुत्ते की इस योग्यता को अपराधों की जाँच में इस्तेमाल किया जाता है। चोर जिस ताले को तोड़कर कमरे में घुसा है, उस ताले को जासूसी कुत्ते को सुँघाया जाता है और इसके बाद उसे छोड़ दिया जाता है। वह सैकड़ों लोगों के बीच ठीक उस व्यक्ति को तलाश करके उसका हाथ पकड़ लेता है, जिसने अपने हाथ से ताले को छुआ था। कितने जानवर हैं, जो ऐसी आवाज़ें सुनते हैं, जो हमारी श्रवण शक्ति से बाहर हैं।

शोध से मालूम हुआ कि जानवरों में टेलीपैथी की योग्यता पाई जाती है। एक मादा पतंगे (moth) को कमरे में खुली खिड़की के पास रख दीजिए। वह कुछ विशेष संकेत करेगी। यह संकेत इसी जाति के नर पतंगे आश्चर्यजनक दूरी से सुन लेंगे और उसका जवाब भी देंगे। झींगुर अपने पाँव या पर एक-दूसरे पर रगड़ता है। रात के सन्नाटे में आधा मील दूर तक यह आवाज़ सुनाई देती है। यह 600 टन वायु को हिलाता है और इस प्रकार अपने जोड़े को बुलाता है। इसकी मादा जो प्रत्यक्ष में बिल्कुल ख़ामोश होती है, मगर रहस्यमय तरीक़े पर कोई ऐसा बे-आवाज़ जवाब देती है, जो नर तक पहुँच जाता है और नर इस रहस्यमय जवाब को, जिसे कोई नहीं सुनता, आश्चर्यजनक रूप से सुन लेता है और ठीक इसी दिशा में उसके स्थान पर जाकर उससे मिल जाता है। अनुमान लगाया गया है कि एक साधारण टिड्डे की श्रवण शक्ति इतनी तेज़ होती है कि हाइड्रोजन बम के अणु के व्यास के आधे के बराबर की हरकत तक को वह महसूस कर लेता है।

इस प्रकार के उदाहरण अधिकता से मौजूद हैं, जो यह बताते हैं कि ऐसे संचार माध्यम संभव हैं, जो प्रत्यक्षतः नज़र न आते हों, मगर इसके बाद भी बतौर घटना मौजूद हों और विशिष्ट इंद्रियाँ रखने वाले जीव उसका बोध कर लेते हों। इन हालात में अगर कोई व्यक्ति यह दावा करता है कि "मुझे ईश्वर की ओर से ऐसी आवाज़ें सुनाई देती हैं, जिन्हें सामान्य लोग नहीं सुनते" तो इसमें हैरानी की क्या बात है। अगर इस दुनिया में ऐसी आवाज़ें संभव हैं, जिन्हें यंत्र सुनते हों, मगर इंसान न सुनते हों; अगर यहाँ ऐसा संदेश भेजा जा रहा है, जिसे एक विशिष्ट जानवर तो सुन लेता है, मगर कोई दूसरा उसे नहीं सुनता तो आख़िर इस घटना में हैरानी की क्या बात है कि ईश्वर अपने उद्देश्य के तहत कुछ गुप्त माध्यमों से अपना एक संदेश एक इंसान तक भेजता है और उसके अंदर ऐसी योग्यताएँ पैदा कर देता है कि वह उसे ग्रहण कर सके और उसे पूरी तरह समझकर स्वीकार कर ले। हक़ीक़त यह है कि ईश-संदेश व आकाशवाणी की कल्पना और हमारे अवलोकनों व अनुभवों में कोई टकराव नहीं है, बल्कि यह उसी प्रकार के अवलोकनों की विशिष्ट स्थिति है, जिनका भिन्न रूपों में हम अनुभव कर चुके हैं। यह संभावना को घटना के रूप में स्वीकार करना है।

फिर टेलीपैथी से परोक्ष ज्ञान के अनुभव का पता चलता है कि यह चीज़ें सिर्फ़ जानवरों तक ही सीमित नहीं, बल्कि इंसान के अंदर भी संभवतः इसकी विशिष्टताएँ मौजूद हों। डॉक्टर एलेक्सिस कैरल के शब्दों में, "व्यक्ति की मानसिक सीमाएँ स्थान व समय के अंदर मात्र काल्पनिक (suppositions) होती हैं" (p.244)। अतः एक सम्मोहनकर्ता (hypnotist) किसी आवाज़ और बाहरी माध्यम के बग़ैर अपने अधीन (सम्मोहित) पर ध्यान देता है, जिसके नतीजे में वह उस पर कृत्रिम नींद (hypnotic sleep) ला सकता है, उसे हँसा या

रुला सकता है, उसके दिमाग़ में विशिष्ट विचारों को डाल सकता है। यह एक ऐसी क्रिया है, जिसमें न कोई प्रत्यक्ष यंत्र या उपकरण का प्रयोग होता है और न सम्मोहनकर्ता व सम्मोहित के अतिरिक्त कोई व्यक्ति इसे महसूस करता है, फिर इसी अवस्था की घटना ईश्वर और बंदे के बीच क्यों हमारे लिए अकल्पनीय हो? ईश्वर को मानने और इंसानी जीवन में टेलीपैथी शक्ति का परीक्षण कर लेने के बाद हमारे लिए ईश-संदेश व आकाशवाणी से इनकार का कोई आधार नहीं रहता।

दिसंबर, 1950 की घटना है। बैवेरिया के अधिकारियों ने एक सम्मोहन विशेषज्ञ फ्रंटर स्ट्रोबिल पर रेडियो प्रोग्राम 'टेलीपैथी के द्वारा लोप' के आरोप में मुक़दमा दायर कर दिया। म्यूनिख़ के रेजीना होटल में अपने कौशल का प्रदर्शन करते हुए स्ट्रोबिल ने एक दर्शक को ताश का एक पत्ता उठाकर दिया और उससे कहा कि इसका नाम अपनी इच्छा से क्रम के साथ अपने दिल में सोच ले। सम्मोहन विशेषज्ञ ने दावा किया कि वह इस पत्ते का नाम क्रमवार (जो कि पत्ते उठाने वाले ने अपने दिल में सोच रखा था) स्वयं जाने बग़ैर रेडियो के उस अनाउंसर यानी उद्घोषक की ओर स्थानांतरित कर दिया, जो उस समय रेडियो पर ख़बरें सुना रहा था। कुछ सेकंड बाद आश्चर्यचकित श्रोताओं ने म्यूनिख़ रेडियो के अनाउंसर की लड़खड़ाती ज़ुबान में सुना— "रेजीना होटल, हुक्म की रानी।" पत्ते का नाम भी सही था और क्रम भी पत्ता उठाने वाले की सोच के यथानुसार था।

अनाउंसर का डर उसकी आवाज़ से स्पष्ट व्यक्त हो रहा था, फिर भी वह ख़बरें सुनाए चला गया। उधर सैकड़ों रेडियो सुनने वाले इस विचित्र घटना का कारण जानने के लिए ब्रॉडकास्टिंग स्टेशन को टेलीफ़ोन कर रहे थे, क्योंकि उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि ख़बरों के प्रोग्राम के बीच "रेजीना होटल, हुक्म की रानी" के

शब्दों का क्या अर्थ है। डॉक्टर जाँच के लिए आया तो उसने पाया कि अनाउंसर बहुत ही ज़्यादा बेचैन है। अनाउंसर ने बताया कि ख़बरें पढ़ते-पढ़ते उसके सिर में अचानक एक दर्द-सा उठा, उसके बाद उसे कुछ याद नहीं कि क्या हुआ। (परोक्ष ज्ञान और टेलीपैथी के इन सिद्ध प्रदर्शनों की कारणता के लिए विभिन्न दृष्टिकोण पेश किए गए हैं, जैसे यह कि मस्तिष्क से किसी प्रकार की तरंगें निकलती हैं, जो बहुत ही तेज़ी से संसार में फैल जाती हैं। अतः इसे 'मस्तिष्कीय तरंगों का सिद्धांत' (Brain Wave Theory) कहा जाता है।
(Religion, Philosophy and Psychical Research, by. C.D. Broad, p.47-48, अधिक जानकारी के लिए देखें एलेक्सिस कैरल की किताब, p.244-49)

मैं कहूँगा कि अगर इंसान को यह शक्ति प्राप्त है कि वह एक इंसान के विचारों को दूसरे इंसान में बिल्कुल वैसे ही स्थानांतरित कर दे, जबकि दोनों के बीच असाधारण दूरी हो और उसके लिए कोई प्रत्यक्षतः साधन प्रयोग न किया गया हो तो बातों के अवतरित होने की घटना सृष्टा (The Creator) की ओर से अस्तित्व में क्यों नहीं आ सकती। इंसानी योग्यताओं का यह प्रकटन, जिसके उदाहरण अधिकता से मौजूद हैं, यह एक अनुभवात्मक समानता है जिससे हम इस संभावना को आसानी से समझ सकते हैं कि ईश्वर और बंदे के बीच किसी माध्यम के बग़ैर किस प्रकार शब्दों और अर्थों का संबंध स्थापित होता है और एक के विचारों को दूसरे को ज्यों-का-त्यों स्थानांतरित हो जाते हैं। टेलीपैथी के द्वारा संदेश भेजना, जो बंदों के बीच एक प्रमाणित घटना है, एक ऐसी समानता है, जिससे हम उस टेलीपैथी को समझ सकते हैं, जो बंदे और ईश्वर के बीच होती है और जिसके पूर्ण और नियुक्त रूप को धर्म की परिभाषा में 'वह्य' (Revelation) कहा जाता है। हक़ीक़त यह है कि 'वह्य' अपनी विशेष अवस्था की दृष्टि से इसी प्रकार की

एक विशिष्ट ब्रह्मांडीय टेलीपैथी (Divine Telepathy) है, जिसका अनुभव सीमित पैमाने पर हम इंसानी जीवन में बार-बार कर चुके हैं और करते रहते हैं।

'वह्य' यानी ईश-संदेश और आकाशवाणी को संभव मानने के बाद अब हमें यह देखना है कि इसकी ज़रूरत भी है या नहीं कि ईश्वर किसी इंसान से संबोधित हो और उसके द्वारा अपना संदेश भेजे। इसकी ज़रूरत का सबसे बड़ा सबूत यह है कि पैग़ंबर आदमी को जिस चीज़ से अवगत कराता है, वह आदमी की बहुत ही बड़ी ज़रूरत है, मगर वह स्वयं अपने प्रयास से इसे प्राप्त नहीं कर सकता। हज़ारों वर्ष से इंसान सच्चाई की तलाश में है। वह समझना चाहता है कि यह ब्रह्मांड क्या है? इंसान का आरंभ व अंत क्या है? बुराई क्या है और भलाई क्या है? इंसान को कैसे क़ाबू में लाया जाए? जीवन को कैसे व्यवस्थित किया जाए कि मानवता की सारी माँगें अपने सही मुक़ाम को पाते हुए संतुलित रूप से प्रगति कर सकें, मगर अभी तक इस तलाश में कोई सफलता नहीं मिली, कुछ समय की तलाश और जिज्ञासा के बाद हमने लोहे और पेट्रोल का विज्ञान बिल्कुल ठीक-ठाक जान लिया और इस प्रकार प्राकृतिक संसार के सैकड़ों विज्ञानों के बारे में उचित जानकारी प्राप्त कर ली, मगर इंसान का विज्ञान अभी तक प्राप्त नहीं हुआ। दीर्घ अवधि के बीच श्रेष्ठ दिमाग़ों के असंख्य प्रयत्नों के बाद भी यह विज्ञान अभी तक अपने विषय की प्रारंभिकताओं को भी स्पष्ट न कर सका। इससे बड़ा सबूत और क्या हो सकता है कि इस मामले में हमें ईश्वर की सहायता की ज़रूरत है, इसके बग़ैर हम अपना 'धर्म' मालूम नहीं कर सकते।

यह बात आधुनिक इंसान को स्वीकार है कि जीवन का राज़ अभी तक उसे मालूम न हो सका, मगर इसी के साथ वह यह विश्वास रखता

है कि वह कभी-न-कभी इस राज़ को मालूम कर लेगा। विज्ञान और उद्योग के पैदा किए हुए माहौल का इंसान के लिए अनुकूल न होने का कारण जहाँ एक ओर जड़ तत्त्व की विद्याओं की व्यापक स्तर पर उन्नति का होना है तो वहीं दूसरी ओर ज़िंदा हस्तियों की विद्याओं का बिल्कुल प्रारंभिक स्थिति पर रुके रहना है। इस दूसरे विभाग पर जिन लोगों ने काम किया, वे सच्चाई को न पा सके और अपनी कल्पनाओं की दुनिया में भटक रहे हैं। नोबेल पुरस्कार प्राप्त डॉक्टर एलेक्सिस कैरल के शब्दों में—

"फ्रांसीसी क्रांति के नियम और मार्क्स और लेनिन के सिद्धांत मात्र ज़ेहनी और काल्पनिक इंसानों पर लागू हो सकते हैं। इस बात को स्पष्ट रूप से महसूस करना चाहिए कि इंसानी संबंधों के नियम (law of human relations) अब तक मालूम नहीं हो सके हैं। समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र की विद्याएँ मात्र अनुमान हैं और अस्वीकार्य सबूत हैं।" (Man the Unknown, p.37)

निःसंदेह वर्तमान युग में विद्याओं ने बहुत प्रगति की है, मगर इन प्रगतियों ने समस्या को और उलझा दिया है। इसने किसी भी दर्जे में उसका समाधान करने में कोई सहायता नहीं की है। जे०डब्ल्यू०एन० सुलिवान ने लिखा है—

"विज्ञान ने वर्तमान में जिस ब्रह्मांड को खोजा है, वह समस्त वैचारिक इतिहास की तुलना में बहुत अधिक रहस्यमय है। हालाँकि प्रकृति के बारे में हमारी जानकारियाँ सभी पिछले युगों की तुलना में बहुत अधिक हैं, मगर इसके बाद भी यह अधिक जानकारी एक दृष्टि से बहुत कम सांत्वना प्रदान करती है, क्योंकि हर दिशा में हम संदिग्धताओं (ambiguities) और विपरीतता (contradiction) से सामना कर रहे हैं।" (Limitations of Science, p.1)

जीवन के राज़ को भौतिक विज्ञान में तलाश करने का यह बहुत ही सख़्त अंजाम बताता है कि जीवन का राज़ इंसान के लिए खोजना असंभव है। (विस्तृत जानकारी के लिए डॉक्टर एलेक्सिस कैरल की किताब के पृष्ठ 16-19 देखें)। एक ओर परिस्थिति यह है कि जीवन की सच्चाई को जानना आवश्यक है, इसके बग़ैर हम कोई कार्य नहीं कर सकते। हमारी श्रेष्ठ भावनाएँ इसे जानना चाहती हैं। हमारी हस्ती का उच्चतर अंश, जिसे हम चिंतन या ज़ेहन कहते हैं, वह इसके बग़ैर संतुष्ट होने के लिए किसी भी प्रकार राज़ी नहीं। हमारे जीवन का सारा अंजाम इसके बग़ैर अस्त-व्यस्त है और जटिल पहेली बना हुआ है। दूसरे शब्दों में, यह हमारी सबसे बड़ी ज़रूरत है, मगर यही सबसे बड़ी ज़रूरत हम ख़ुद से पूरी नहीं कर सकते।

क्या यह स्थिति इस बात की पर्याप्त दलील नहीं है कि इंसान 'वह्य' का मोहताज है? ज़िंदगी की हक़ीक़त (reality of life) का अति आवश्यक होने के बावजूद इंसान के लिए जीवन का भेद मालूम न कर पाना इस बात को ज़ाहिर करता है कि इसका प्रबंधन उसी प्रकार बाहर से किया जाना चाहिए, जैसे प्रकाश और उष्णता इंसान के लिए आवश्यक होने के बाद भी उसके अपने वश से बाहर है, मगर प्रकृति ने आश्चर्यजनक रूप से सूर्य के द्वारा इसका प्रबंधन कर दिया है। (इस विषय पर अधिक जानकारी अगले अध्याय में मिलेगी)।

ईश-संदेश और आकाशवाणी को संभव और आवश्यक स्वीकार कर लेने के बाद अब हमें यह देखना है कि जो व्यक्ति इसका दावा कर रहा है, क्या वास्तव में उस पर संदेश आता है या नहीं। हमारी आस्था और ईमान के अनुसार इस प्रकार के ईशदूत (Messengers of God) बहुत बड़ी संख्या में इस धरती पर पैदा हो चुके हैं, मगर इस अध्याय में हम विशेष रूप से अंतिम ईशदूत हज़रत मुहम्मद साहब की पैग़ंबरी के दावे पर वार्ता करेंगे। इसलिए आपके पैग़ंबरी के दावे

का साबित होना वास्तव में समस्त पैग़ंबरों की पैग़ंबरी का साबित होना है, क्योंकि आप दूसरे पैग़ंबरों का इनकार नहीं करते, बल्कि उनकी पुष्टि करने वाले हैं और इसलिए भी कि अब वर्तमान और आगामी नस्लों के लिए आप ही ईश्वर के पैग़ंबर हैं। आपके बाद कोई दूसरा पैग़ंबर आने वाला नहीं है। इसलिए व्यवहारतः अब इंसानी नस्ल के मोक्ष (salvation) व क्षति का मामला आप ही के पैग़ंबरी के दावे को मानने या न मानने से संबंधित है।

सन् ईस्वी के लिहाज़ से 29 अगस्त, 570 ईस्वी की सुबह को मक्का में एक बच्चा पैदा हुआ। 40 वर्ष की आयु को पहुँचने के बाद उसने यह घोषणा की कि ईश्वर ने मुझे अंतिम ईशदूत बनाया है और मेरे पास अपना संदेश भेजकर मुझे इस सेवा के लिए नियुक्त किया है कि मैं उसका संदेश समस्त इंसानों तक पहुँचा दूँ। जो मेरी आज्ञा का पालन करेगा, वह ईश्वर के यहाँ सम्मानित होगा और जो मेरी अवज्ञा करेगा, उसे हलाक कर दिया जाएगा।

यह आवाज़ पूरी शिद्दत के साथ हमारे सिरों पर गूँज रही है। यह ऐसी आवाज़ नहीं है कि कोई व्यक्ति इसे सुने और नज़रअंदाज़ कर दे, बल्कि यह एक ज़बरदस्त माँग है। इस आवाज़ की माँग है कि हम इसके ऊपर विचार करें। उसके बाद अगर इसे ग़लत पाएँ तो खुले दिल से इसे रद्द कर दें और सही पाएँ तो खुले दिल से इसे स्वीकार कर लें।

किसी चीज़ को ज्ञानात्मक तथ्य बनने के लिए उसे तीन चरणों से गुज़रना होता है—

(1) परिकल्पना (hypothesis)

(2) अवलोकन (observation)

(3) पुष्टि (verification)

पहले एक परिकल्पना या विचार ज़ेहन में आता है, फिर अवलोकन किया जाता है। इसके बाद अगर अवलोकन से उसकी पुष्टि हो जाए तो उस परिकल्पना को सच स्वीकार कर लिया जाता है। इस क्रम में कभी अंतर भी हो जाता है यानी पहले कुछ अवलोकन सामने आते हैं और उन अवलोकनों से एक विचार या परिकल्पना दिमाग़ में क़ायम हो जाती है, फिर जब यह साबित हो जाता है कि अवलोकन वास्तव में इस परिकल्पना की पुष्टि कर रहे हैं तो वह ज्ञानात्मक तथ्य क़रार पा जाता है।

इस नियम के अनुसार पैग़ंबर का एक पैग़ंबरी का दावा मानो एक 'परिकल्पना' के रूप में हमारे सामने है। अब हमें यह देखना है कि अवलोकन इसकी पुष्टि कर रहे हैं या नहीं। अगर अवलोकन इसके पक्ष में गवाही दे दें तो इसकी हैसियत एक प्रमाणित तथ्य (verified fact) की हो जाएगी और हमारे लिए ज़रूरी हो जाएगा कि हम इसे स्वीकार करें।

अब देखिए कि वह क्या अवलोकन हैं, जो उस 'परिकल्पना' की पुष्टि के लिए आवश्यक हैं, जिनके आधार पर हम पैग़ंबर के दावे को जाँचें और उसके दावे के अनुसार, दावे का सही या ग़लत होना मालूम करें। दूसरे शब्दों में, वह कौन से बाहरी प्रदर्शन हैं, जिसके प्रकाश में यह नियुक्त होता है कि आप वास्तव में ईश्वर के पैग़ंबर थे। पैग़ंबर की हस्ती में इकट्ठा होने वाली वह कौन-सी विशिष्टताएँ हैं, जिनकी स्पष्टता इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकती कि हम उन्हें ईश्वर का पैग़ंबर मानें। मेरे निकट वह विशिष्टताएँ निम्नानुसार हैं— जो व्यक्ति पैग़ंबर होने का दावा करे, उसके अंदर दो विशिष्टताएँ अनिवार्य रूप से होनी चाहिए—

(1) एक यह कि वह असाधारण रूप से आदर्श इंसान हो, क्योंकि वह व्यक्ति जिसे समस्त मानव जाति में इसलिए चुना जाए कि वह ईश्वर से बात करे और जीवन की दुरुस्तगी का प्रोग्राम उसके द्वारा खोला जाए। निश्चित रूप से उसे मानव जाति का श्रेष्ठ व्यक्ति होना चाहिए और

उसके जीवन में उसके आदर्शों को समस्त अच्छाइयों और गुणों का प्रकटीकरण करना चाहिए। अगर उसका जीवन इन गुणों से सुसज्जित है तो यह उसके दावे की सच्चाई का खुला हुआ सबूत है, क्योंकि उसका दावा अगर झूठा हो तो वह उनके जीवन में इतनी बड़ी सच्चाई बनकर प्रकट नहीं हो सकता कि उसे नैतिकता व चरित्र में समस्त मानवता से बुलंद कर दे।

(2) दूसरी यह कि उस व्यक्ति का कथन और उसका संदेश ऐसे पहलुओं से भरा हुआ होना चाहिए, जो आम इंसान के वश से बाहर हो, जिसकी उम्मीद किसी ऐसे ही इंसान से की जा सकती है, जिस पर ब्रह्मांड के मालिक का साया पड़ा हो, आम इंसान ऐसा कथन पेश करने में समर्थ नहीं हो सकता।

ये दो कसौटी हैं, जिन पर हमें पैग़ंबर की पैग़ंबरी के दावे को जाँचना है। पहली बात के विषय में इतिहास की नितांत गवाही यह है कि हज़रत मुहम्मद साहब एक असाधारण चरित्र के आदमी थे। हठधर्मी के द्वारा तो किसी भी वास्तविकता से इनकार संभव है और धाँधली की भाषा में हर उलटी बात का दावा किया जा सकता है। यह दृश्य हम स्वयं अपने देश में देख चुके हैं कि कम्युनिस्ट चीन ने स्पष्ट रूप से भारत की सीमा का उल्लंघन किया और जब विरोध किया गया तो उलटा उसने भारत के ऊपर आरोप लगाना आरंभ कर दिया कि वह उसकी सीमा के अंदर घुस आया है। भारत के नाम चीनी हुकूमत का पत्र जो जनवरी, 1960 में प्रकाशित किया गया, उसमें भारतीय सीमा के भीतर स्थित 2 लाख 30 हज़ार वर्ग किलोमीटर पर चीन का अधिकार जताया गया और चीनी प्रधानमंत्री का कहना है कि चीनी फ़ौजों की पेशक़दमी चीन के क्षेत्र से भारतीय फ़ौज को पीछे धकेलने के लिए अमल में आई है; मगर जो व्यक्ति इस प्रकार के

पक्षपात का रोगी न हो और खुले दिल से अध्ययन करने की योग्यता रखता हो, वह आवश्यक रूप से स्वीकार करेगा कि आपका जीवन नैतिक हैसियत से अति उच्च व श्रेष्ठ है।

हज़रत मुहम्मद साहब को 40 वर्ष की आयु में पैग़ंबरी मिली। इससे पहले आपका पूरा दौर नैतिक दृष्टि से इतना अलग था कि आपको लोग सच्चा और ईमानदार कहकर पुकारने लगे थे। 'अल-सादिक़ अल-अमीन' आपकी प्रसिद्ध उपाधि बन गया था। आपके बारे में यह बात सारी आबादी में एकमत थी कि आप एक बहुत ही ईमानदार व्यक्ति हैं और कभी झूठ नहीं बोल सकते।

पैग़ंबरी के दावे से 5 वर्ष पहले की घटना है कि 'क़ुरैश', जो अरब का एक क़बीला था, ने 'काबा' यानी अरब के 'मक्का' नगर स्थित स्थान, जहाँ मुसलमान हर वर्ष 'हज' करने के लिए जाते हैं, के नव-निर्माण का इरादा किया। जब निर्माण होने लगा तो इस बात पर कड़ा मतभेद पैदा हो गया कि 'हिजरे-असवद', जो कि एक काला पवित्र पत्थर है, को नवीन निर्माण में कौन व्यक्ति उसके स्थान पर रखे। 4-5 दिन तक यह विरोध जारी रहा और निकट था कि तलवारें चल जाएँ। अंततः तय पाया गया कि इस झगड़े का फ़ैसला वह व्यक्ति करेगा, जो कल सुबह सबसे पहले 'काबा' में प्रवेश करेगा। दूसरे दिन लोगों ने जब सबसे पहले प्रवेश करने वाले इंसान को देखा तो पुकार उठे, "अमीन आ गया, हम इसके फ़ैसले पर सहमत हैं।"

(अल-तबक़ात अल-कुबरा, इब्ने-साद V.1, p.116)

हमें इतिहास में ऐसे किसी व्यक्ति की जानकारी नहीं मिलती, जिसका जीवन वाद-विवाद का विषय बनने से 40 वर्ष जैसी लंबी अवधि तक लोगों के सामने रहा हो और उसके जानने वाले उसके आचरण और चरित्र के बारे में इतनी असाधारण राय रखते हों।

पहली बार आपको 'हिरा' नामी गुफा में 'वह्य' यानी ईश-संदेश मिला तो आपके लिए यह असाधारण घटना थी, जिसका आपको पहले कभी अनुभव नहीं हुआ था। आप प्रचंड अनुभूति के साथ घर लौटे और अपनी पत्नी से, जो आयु में आपसे बड़ी थीं, इस घटना का ज़िक्र किया। पत्नी का जवाब था, "ऐ अबुल क़ासिम! ईश्वर यक़ीनन आपकी रक्षा करेगा, क्योंकि आप सच बोलते हैं, आप ईमानदार हैं, आप बुराई का बदला भलाई से देते हैं और लोगों का हक़ अदा करते हैं।"

अबू तालिब पैग़ंबर हज़रत मुहम्मद के चाचा थे। उन्हें आपने इस्लाम का निमंत्रण दिया तो उन्होंने यह कहकर उसे मानने से इनकार कर दिया कि मैं अपने बाप-दादा के धर्म के मार्ग को नहीं छोड़ सकता, मगर इसके बाद जब उन्हें अपने लड़के अली से मालूम हुआ कि वह हज़रत मुहम्मद पर ईमान ला चुके हैं तो अबू तालिब ने कहा, "बेटे! तुम इसके लिए आज़ाद हो, क्योंकि मुझे विश्वास है कि मुहम्मद तुम्हें भलाई के अतिरिक्त किसी चीज़ की ओर नहीं बुलाएँगे।"

(Ideal Prophet, p.68)

पैग़ंबरी मिलने के बाद जब आपने पहली बार 'सफ़ा' पहाड़ी की घाटी में लोगों को इकट्ठा करके ईश्वर का संदेश प्रस्तुत किया, उस समय हज़रत मुहम्मद ने अपना आह्वानीय भाषण आरंभ करने से पहले उपस्थित लोगों से यह प्रश्न किया, "तुम्हारा मेरे बारे में क्या विचार है?" उत्तर में सभी की यह आवाज़ आई, "तुम्हारे अंदर हमने सच्चाई के सिवा कोई और बात कभी नहीं देखी।"

(सही अल-बुख़ारी, हदीस नं० 4770)

पैग़ंबर के प्रारंभिक जीवन के बारे में यह एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक रिकॉर्ड है, जिसका उदाहरण किसी भी कवि, दार्शनिक, चिंतक या लेखक के यहाँ नहीं मिल सकता।

हज़रत मुहम्मद ने जब पैग़ंबरी की घोषणा की तो मक्का के लोग, जो आपको भली-भाँति जानते थे, उनके लिए यह प्रश्न बहस से बाहर था कि आपको ईश्वर न करे वे झूठा या जालसाज़ समझें, क्योंकि यह हज़रत मुहम्मद के अब तक के पूरे जीवन के बिल्कुल विरुद्ध था। इसलिए उन्होंने कभी आप पर इस प्रकार का आरोप नहीं लगाया, बल्कि कहा तो यह कहा कि इस व्यक्ति की बुद्धि खो गई है। वह कवियों वाली अतिशयोक्ति कर रहे हैं और इन पर किसी का जादू चल गया है, इन पर जिन्न सवार हैं। विरोधियों ने यह सब कुछ कहा, मगर किसी का साहस यह न हुआ कि वे आपकी सच्चाई और ईमानदारी पर संदेह प्रकट करें। यह आश्चर्यजनक बात है कि एक व्यक्ति जिसकी क़ौम उसकी शत्रु हो चुकी हो और वतन में उसका रहना भी उसे गवारा नहीं है, उस व्यक्ति के बारे में उसकी दुश्मन क़ौम का हाल इतिहास इस तरह बयान करता है—

“मक्का में जिस किसी के पास भी कोई ऐसी चीज़ होती, जिसके बारे में उसे किसी प्रकार की शंका होती तो उसे आपके पास यानी हज़रत मुहम्मद के पास रख देता, क्योंकि हर एक को आपकी सच्चाई और ईमानदारी पर विश्वास था।”

(सीरत इब्ने-हिशाम, V.2, p.298)

पैग़ंबरी के तेरहवें वर्ष में ठीक उस समय, जबकि आपके विरोधी आपके मकान को घेरे हुए खड़े थे और इस बात का पूरी तरह निर्णय कर चुके थे कि बाहर निकलते ही आपको क़त्ल कर देंगे, आप घर के अंदर अपने नौजवान रिश्तेदार अली बिन अबी तालिब को यह वसीयत कर रहे थे कि मेरे पास मक्का के अमुक लोगों का माल अमानत के तौर पर रखा हुआ है, मेरे जाने के बाद तुम उन सबका माल उन्हें वापस कर देना।

नुज़र बिन हारिस, जो आपका विरोधी होने के साथ-साथ सांसारिक मामलों में क़ुरैश के अंदर सबसे अधिक अनुभवी था, उसने एक दिन अपनी क़ौम से कहा, "क़ुरैश के लोगो! मुहम्मद के निमंत्रण ने तुम्हें ऐसी मुश्किल में डाल दिया है, जिसका कोई हल तुम्हारे पास नहीं है। वह तुम्हारी आँखों के सामने बचपन से जवान हुए हैं, तुम अच्छी तरह जानते हो कि वह तुम्हारे बीच सबसे ज़्यादा अमानतदार और सबसे ज़्यादा पसंद किए जाने वाले व्यक्ति थे, लेकिन जब उनके बाल सफ़ेद होने को आए और उन्होंने वह कलाम पेश किया, जिसे तुम सुन रहे हो तो अब तुम्हारा हाल यह है कि तुम कहते हो कि यह व्यक्ति जादूगर है, यह शायर है, यह दीवाना है। ईश्वर की क़सम! मैंने मुहम्मद की बातें सुनी हैं। मुहम्मद न जादूगर है, न वह शायर है, न वह दीवाना है। मुझे विश्वास है कि कोई और मुसीबत तुम्हारे ऊपर आने वाली है।" (सीरत इब्ने-हिशाम, V.1, p.319)। अबू जहल जो आपका घोर शत्रु था, वह कहता है, "मुहम्मद! मैं यह नहीं कहता कि तुम झूठे हो, मगर जिस चीज़ का तुम आह्वान कर रहे हो, उसे मैं सही नहीं समझता।"
(तिरमिज़ी, हदीस नं० 3064)

आपकी पैग़ंबरी चूँकि सिर्फ़ अरब के लिए नहीं थी, बल्कि सारी दुनिया के लिए थी। इसलिए अपने जीवन ही में आपने अपने पड़ोसी देशों के राजाओं को निमंत्रण-पत्र भेजे। रोम के राजा हराक़ल को आपका निमंत्रण-पत्र मिला तो उसने हुक्म दिया कि अरब के कुछ लोग यहाँ हों तो हाज़िर किए जाएँ। (हराक़ल उन दिनों ईरानियों पर विजय-प्राप्ति का शुक्र अदा करने के लिए 'बैतुल मुक़द्दस' (यरुशलम) आया हुआ था, वहीं उसे पत्र मिला)। इसी ज़माने में क़ुरैश के कुछ लोग व्यापार के उद्देश्य से 'शाम' (वर्तमान सीरिया) गए हुए थे। वे दरबार में पहुँचे तो हराक़ल ने पूछा, "तुम्हारे शहर में जिस व्यक्ति ने ईश्वर का पैग़ंबर होने का दावा किया है, तुममें से कोई उसका क़रीबी

संबंधी भी है।" तब अबू सुफ़ियान ने जवाब दिया, "वह मेरे ख़ानदान का है।" इसके बाद हराक़ल और अबू सुफ़ियान के बीच जो बातचीत हुई, उसके कुछ वाक्य यह हैं—

हराक़ल— "इस दावे से पहले कभी तुमने उसे झूठ बोलते हुए भी सुना है।"

अबू सुफ़ियान— "कभी नहीं।"

हराक़ल— "क्या वह वादे की ख़िलाफ़वर्ज़ी करता है?"

अबू सुफ़ियान— "अभी तक उसने किसी वादे की ख़िलाफ़वर्ज़ी नहीं की।"

हराक़ल ने यह सुनकर कहा— "जब यह तजुर्बा हो चुका है कि वह आदमियों के मामले में कभी झूठ नहीं बोलता तो यह कैसे कहा जा सकता है कि उसने ईश्वर के मामले में इतना झूठ गढ़ लिया हो?"

यह उस समय की बातचीत है, जबकि अबू सुफ़ियान अभी ईमान नहीं लाए थे और हज़रत मुहम्मद के कट्टर दुश्मन थे, बल्कि आपके विरुद्ध युद्ध का नेतृत्व कर रहे थे। वह स्वयं कहते हैं, "अगर मुझे यह आशंका न होती कि हराक़ल के दरबार में जो दूसरे क़ुरैश बैठे हुए हैं, वे मुझे झूठा मशहूर कर देंगे तो मैं इस अवसर पर ग़लतबयानी से काम लेता।" (सही अल-बुख़ारी, हदीस नं० 7)

संपूर्ण इतिहास में किसी भी ऐसे व्यक्ति का नाम नहीं लिया जा सकता, जिसके संबोधित कठोर विरोधी होने के बाद भी उसके जीवन और चरित्र के विषय में इतनी असाधारण राय रखते हों और यह घटना अपने आपमें आपके ईशदूत होने का पर्याप्त सबूत है। यहाँ डॉक्टर लैटनर का एक उद्धरण अनुकरण करना चाहूँगा—

"मैं बहुत नम्रता के साथ यह कहने का साहस करता हूँ कि अगर वास्तव में पावन ईश्वर के यहाँ से, जो समस्त पुण्य कर्मों का मूल

स्रोत है, आकाशवाणी होती है तो मुहम्मद का धर्म ईश्वरीय धर्म है और अगर आत्मत्याग, ईमानदारी, परिपक्व आस्थावाद, पुण्य व पाप की पूरी जाँच और बुराई दूर करने के उत्तम माध्यम ही ईश्वरीय प्रेरणा का प्रत्यक्ष व स्पष्ट प्रतीक है तो मुहम्मद का मिशन आकाशीय था।"

(Life or Muhammad, by M. Abul Fazal)

जब आपने इस्लाम धर्म का निमंत्रण देना आरंभ किया तो आपकी क़ौम ने कठोरतम विपत्तियाँ डालीं। आपके रास्ते में काँटे बिछा देते, नमाज़ पढ़ते तो आपके शरीर पर गंदगी लाकर उड़ेल देते। एक बार आप 'हरम' यानी 'काबा' में नमाज़ पढ़ रहे थे कि उक़बा बिन अबी मुईत ने आपके गले में चादर लपेटकर इतनी ज़ोर से खींचा कि आप घुटनों के बल गिर पड़े। इस प्रकार की हरकतों से जब आप पर कोई असर नहीं हुआ तो उन्होंने आपका और आपके सारे ख़ानदान का बायकॉट कर दिया और आपको मजबूर किया कि बस्ती से बाहर एक पहाड़ी दर्रे में जाकर असहाय पड़े रहें। इस दौरान उनमें कोई ज़रूरत की चीज़ें, यहाँ तक कि खाना-पीना भी न कोई व्यक्ति आपको पहुँचा सकता था और न ही आपको बेच सकता था। आप अपने ख़ानदान के साथ 3 वर्ष तक इस घेराव में इस प्रकार रहे कि पहाड़ी पेड़ (तलह) के पत्ते खाते थे। आपके एक साथी का बयान है कि उस ज़माने में एक बार रात को सूखा हुआ चमड़ा हाथ आ गया, मैंने उसे पानी से धोया, फिर आग पर भूना और पानी में मिलाकर खाया। 3 वर्ष बाद यह घेराव समाप्त हुआ।

मक्का के लोगों की यह संगदिली देखकर आप 'ताइफ़' नगर गए, जो मक्का से 40 मील की दूरी पर अमीरों और रईसों का शहर था। वहाँ के लोगों ने आपसे बहुत बुरी तरह बात की। एक ने कहा, "क्या ईश्वर को तेरे सिवा कोई और पैग़ंबरी के लिए नहीं मिला था?" फिर वे लोग बुरी बातों पर ही नहीं रुके, बल्कि उन्होंने ताइफ़ के

बदमाशों और दुराचारियों को उभारकर आपके पीछे लगा दिया। ये लोग हर ओर से आपके ऊपर टूट पड़े और आप पर पत्थर फेंकने शुरू कर दिए। उन्होंने इतनी बुरी तरह से आपको ज़ख़्मी किया कि आपके जूते ख़ून से भर गए। आप ज़ख़्मों से चूर होकर बैठ जाते तो बाँहें थामकर खड़ा कर देते। जब चलने लगते तो पत्थर बरसाते और साथ-साथ गालियाँ देते और ताली बजाते। इसी तरह शाम होने तक आपके पीछे लगे रहे। शाम को जब वे ज़ख़्म और ख़ून की स्थिति में आपको छोड़कर चले गए तो आपने एक बाग़ में अंगूर की टहनियों की छाया की आड़ में शरण ली। यही वह घटना है, जिसके बारे में आपने एक बार हज़रत आयशा से कहा था, "ताइफ़ की यह शाम मेरे जीवन की कठोरतम शाम थी।"

इन सारी तकलीफ़ों को सहने के बाद भी आप अपना कार्य करते रहे। अंततः क़ुरैश ने यह तय किया कि अब इसके सिवा कोई स्थिति नहीं है कि आपको क़त्ल कर दिया जाए। अतः एक रात को क़ुरैश के सभी सरदारों ने नंगी तलवारों के साथ आपका मकान घेर लिया, ताकि सुबह को जब आप बाहर निकलें तो आपको क़त्ल कर दिया जाए, मगर ईश्वर की मदद से आप घर से सुरक्षित निकल गए और मदीना नामक नगर जाकर रहने लगे।

इसके बाद क़ुरैश ने आपके साथ नियमानुसार जंग छेड़ दी और 10 वर्ष तक निरंतर आपको और आपके साथियों को दुश्मनी और जंगों में उलझाए रखा, जिसमें आपके दाँत शहीद हुए और आपके कुछ बेहतरीन साथी मारे गए। आपको वह सारी मुसीबतें झेलनी पड़ीं, जो युद्धक परिस्थितियों (combat situations) के पैदा हो जाने के बाद झेलनी होती हैं।

इस प्रकार 23 वर्षीय इतिहास के बाद अपनी आयु के अंतिम

दिनों में आपको मक्का पर विजय प्राप्त हुई। उस समय आपके शत्रु असहाय स्थिति में आपके सामने खड़े थे। ऐसे समय में विजेता जो कुछ करता है, वह सबको मालूम है, मगर आपने उनसे कोई बदला नहीं लिया। आपने पूछा, "क़ुरैश के लोगो! बताओ, अब मैं तुम्हारे साथ क्या मामला करूँ?" उन्होंने कहा कि आप शरीफ़ (सज्जन) भाई हैं और शरीफ़ भाई की संतान हैं। आपने कहा, "जाओ, तुम सब आज़ाद हो। (सीरत इब्ने-हिशाम, V.4, p.32)

आपने सिर्फ़ अपने मिशन की ख़ातिर यह कष्ट उठाए, वरना आपके लिए दूसरा जीवन भी संभव था। जब आप मक्का में थे, तब क़ुरैश की ओर से उक़्बा यह पेशकश लेकर आपकी सेवा में आया, "भतीजे! अगर इस निमंत्रण से तुम माल व दौलत चाहते हो तो आओ, हम इतना माल जमा कर दें कि तुम सबसे बड़े मालदार बन जाओ। अगर इससे सरदारी चाहिए है तो बताओ, हम इसके लिए भी तैयार हैं कि तुम्हें अपना सरदार मान लें। अगर सल्तनत की इच्छा है तो हम तुम्हें अपना राजा भी स्वीकार कर लेंगे, लेकिन अगर यह सच्चाई नहीं है और तुम अपने अंदर जुनून और दीवानगी की अवस्था पाते हो और तुम्हें ऐसी चीज़ें नज़र आती हैं, जिन्हें तुम दूर नहीं कर सकते तो हम तुम्हारा इलाज करने के लिए भी तैयार हैं।"

उक़्बा की यह बातें आप ख़ामोशी से सुनते रहे और उसके बाद आपने जो जवाब दिया, वह यह कि क़ुरआन की कुछ आयतें* पढ़कर उसे सुना दीं। (सीरत इब्ने-हिशाम, V.1, p.314)

मदीने में आप एक रियासत के मालिक थे। आपको ऐसे जान क़ुर्बान करने वाले सेवक प्राप्त थे कि उन जैसे वफ़ादार और बलिदान

* क़ुरआन की सबसे छोटा इकाई, श्लोक।

करने वाले साथी आज तक किसी को नहीं मिले, मगर घटनाएँ बताती हैं कि आख़िरी उम्र तक आपने बिल्कुल सामान्य हालत में जीवन गुज़ार दिया।

हज़रत उमर अपनी घटना बयान करते हैं, "मैं आपकी कोठरी में दाख़िल हुआ तो देखा कि आप बग़ैर क़मीज़ के खजूर की मामूली चटाई पर लेटे हुए हैं और आपके शरीर पर चटाई के निशान साफ़ नज़र आ रहे हैं। कोठरी में चारों ओर नज़र दौड़ाई तो इसका कुल सामान यह था— एक ओर तीन चमड़े, एक कोने में कुछ छाल और दूसरे कोने में लगभग एक 'साअ' यानी सवा तीन किलो जौ, यह दृश्य देखकर मैं अनायास ही रो पड़ा। आपने पूछा कि रोते क्यों हो? मैंने निवेदन किया, 'क़ैसर और किसरा' (रोम व ईरान के राजा) को तो दुनिया की दौलत हासिल है और आप ईश्वर के पैग़ंबर इस हाल में हैं। यह सुनकर आप बैठ गए और कहा— ऐ उमर! आख़िर तुम किस ख़्याल में हो? क्या तुम नहीं चाहते कि उन्हें दुनिया मिले और परलोक हमारे हिस्से में आए?"

हज़रत आयशा कहती हैं कि दो-दो महीने गुज़र जाते थे, लेकिन पैग़ंबर की पत्नियों के घरों में चूल्हा नहीं जलता था। 'उरवा' ने पूछा कि आप लोग ज़िंदा कैसे रहती थीं, तो उन्होंने जवाब दिया कि खजूर और पानी हमारा भोजन था, साथ ही कुछ अंसार* दूध भेज दिया करते थे। इन्हीं का दूसरा कथन है कि पैग़ंबर-ए-इस्लाम के मदीना आने के बाद कभी ऐसा नहीं हुआ कि आपके घरवालों ने लगातार 3 दिनों तक गेहूँ का इस्तेमाल किया हो। इसी हालत में आप दुनिया से चले गए।

---

* अंसार मदीना के उन लोगों को कहा जाता है, जिन्होंने मक्का से प्रवास करके मदीना आने वाले लोगों की सहायता की थी और यह नाम अंतिम ईशदूत हज़रत मुहम्मद ने मदीना के लोगों को दिया था।

आपने सामर्थ्य रखने के बावजूद इस प्रकार जीवन गुज़ारा और जब दुनिया से प्रस्थान किया तो अपनी पत्नियों और संतानों के लिए कुछ नहीं छोड़ा— न दीनार, न दिरहम, न बकरी, न ऊँट और न किसी चीज़ की वसीयत। इसके स्थान पर संसार के महानतम शासन के प्रवर्तक, जिसे अपने जीवन में यह मालूम था कि उसका शासन एशिया और अफ़्रीक़ा से होकर यूरोप तक पहुँच जाएगा। उसने कहा—

"हमारा (पैग़ंबरों का) कोई वारिस नहीं होता। जो कुछ हम छोड़ जाएँ, वह सदक़ा (दान) है।" (सही मुस्लिम, हदीस नं० 1757)

आपकी नैतिकता व आचरण और आपकी निःस्वार्थता व त्याग की एक झलक जो ऊपर प्रस्तुत की गई, यह कोई पृथक घटनाएँ नहीं हैं, बल्कि यही आपका पूरा जीवन है। आपका समस्त जीवन इसी प्रकार की घटनाओं का दूसरा नाम है। हक़ीक़त यह है कि आपकी मानवता इतनी बुलंद थी कि अगर आप पैदा न होते तो इतिहास को लिखना पड़ता कि इस स्तर का इंसान न कोई पैदा हुआ और न कभी पैदा हो सकता।

ऐसे असाधारण इंसान के बारे में यह कोई विचित्र बात नहीं होगी कि हम इसे ईश्वर का पैग़ंबर मान लें, बल्कि यह विचित्र बात होगी कि हम उसके पैग़ंबर होने का इनकार कर दें, क्योंकि आपको पैग़ंबर मानकर हम सिर्फ़ आपके चमत्कारी व्यक्तित्व को स्पष्ट करते हैं। अगर हम आपको पैग़ंबर न मानें तो हमारे पास इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं रहता कि इन अद्भुत गुणों का मूल स्रोत क्या है, जबकि संपूर्ण ज्ञात इतिहास में कोई एक भी ऐसा इंसान पैदा नहीं हुआ। प्रोफ़ेसर बॉसवर्थ स्मिथ के यह शब्द एक लिहाज़ से घटना की सच्चाई की स्वीकृति हैं और दूसरी दृष्टि से वह तमाम इंसानों को आपकी पैग़ंबरी पर ईमान लाने का निमंत्रण देते हैं।

"मुहम्मद ने अपने जीवन के अंत में भी अपने लिए उसी पदवी का दावा किया, जिससे उन्होंने अपने कार्य का आरंभ किया था और मैं विश्वास करने का साहस करता हूँ कि उच्चतम दर्शन और सच्ची मसीहियत एक दिन यह स्वीकार करने पर सहमत होंगे कि आप पैग़ंबर थे, ईश्वर के सच्चे पैग़ंबर।"

(Mohammad and Mohammadenism, p.344)

दूसरे पहलू से पैग़ंबर की पैग़ंबरी का सबसे बड़ा सबूत वह किताब है, जिसे उसने यह कहकर पेश किया कि वह उसे ईश्वर की ओर से मिली है। यह किताब असंख्य विशिष्टताओं से भरी हुई है, जो इसके बारे में इस बात की निश्चित समानता पैदा करती है कि यह एक ग़ैर-इंसानी कथन है, यह ईश्वर की ओर से भेजा गया है।

यह बहस चूँकि स्थायी महत्व की वाहक है, इसलिए मैं इसका वर्णन अलग अध्याय में करूँगा।

क़ुरआन : ईश्वर की आवाज़

पैग़ंबर-ए-इस्लाम हज़रत मुहम्मद की एक हदीस* है—

“पैग़ंबरों में से हर पैग़ंबर को ईश्वर ने ऐसे चमत्कार दिए, जिन्हें देखकर लोग ईमान लाए और मुझे जो चमत्कार मिला है, वह क़ुरआन है।” (सही अल-बुख़ारी, हदीस नं० 4981)

यह कथन हमारी तलाश की सही दिशा नियुक्त करता है। इससे पता चलता है कि पैग़ंबर की पैग़ंबरी को पहचानने के लिए आज हमारे पास जो सबसे बड़ा माध्यम है, यह वह किताब है जिसे पैग़ंबर ने यह कहकर पेश किया था कि वह उसके पास ईश्वर की ओर से अवतरित हुई है। क़ुरआन पैग़ंबर का प्रतिनिधि भी है और पैग़ंबर के सच्चा पैग़ंबर होने की दलील भी।

क़ुरआन की वह क्या विशेषताएँ हैं, जो यह साबित करती हैं कि वह ईश्वर की तरफ़ से आया है। इसके बहुत से पहलू हैं। यहाँ मैं कुछ पहलुओं की संक्षेप में चर्चा करूँगा।

(1) इस सिलसिले में सबसे पहली चीज़ जो क़ुरआन के विद्यार्थी को प्रभावित करती है, वह क़ुरआन की चुनौती है, जो 1400 वर्षों से दुनिया के सामने है, लेकिन आज तक उसका जवाब नहीं दिया जा सका। क़ुरआन में बार-बार ऐलान किया गया है कि जिन लोगों को क़ुरआन के ईश्वरीय ग्रंथ होने के विषय में संदेह है और इसे मात्र अपने

* हज़रत मुहम्मद के कथन, कर्म एवं मार्गदर्शन।

जैसे एक इंसान की रचना समझते हैं, वह एक ऐसी किताब बनाकर प्रस्तुत करें, बल्कि इस जैसी एक सूरह* ही बनाकर दिखा दें।

> "अपने बंदे पर जो बातें हमने उतारी हैं, अगर इसके (ईश्वरीय कथन होने के) बारे में तुम्हें संदेह है तो इस जैसी एक सूरह लिखकर ले आओ और ईश्वर के सिवा अपने हिमायतियों को भी बुला लो, अगर तुम अपने ख़्याल में सच्चे हो।"
>
> (क़ुरआन, 2:23)

यह एक आश्चर्यजनक दावा है, जो संपूर्ण मानव इतिहास में किसी भी लेखक ने नहीं किया और होश व अक़्ल के साथ कोई लेखक ऐसा दावा करने का साहस नहीं कर सकता, क्योंकि किसी भी इंसान के लिए यह संभव नहीं कि वह एक ऐसी किताब लिख दे, जिसके समतुल्य किताब दूसरे इंसान न लिख सकते हों। हर इंसानी रचना के जवाब में उसी श्रेणी की दूसरी इंसानी किताब तैयार की जा सकती है। क़ुरआन का यह कहना कि वह एक ऐसा कलाम यानी ऐसी वाणी है, जैसा कलाम इंसानी ज़ेहन नहीं लिख सकता और डेढ़ हज़ार वर्ष तक किसी इंसान का इसमें समर्थ न होना निश्चित रूप से साबित कर देता है कि यह एक ग़ैर-इंसानी कथन है। यह ईश्वरीय स्रोत से निकले हुए शब्द हैं और जो चीज़ ईश्वरीय स्रोत से निकली हो, उसका जवाब कौन दे सकता है?

इतिहास में कुछ उदाहरण मिलते हैं, जबकि इस चुनौती को स्वीकार किया गया। सबसे पहली घटना लबीद बिन रबीआ की है, जो अरबों में अपनी वाक्शक्ति और कुशाग्र बुद्धि के लिए प्रसिद्ध था। उसने जवाब में एक कविता लिखी, जो 'काबा' के फाटक पर लटकाई गई और यह एक ऐसा सम्मान था, जो सिर्फ़ किसी श्रेष्ठ व्यक्ति को ही

---

* क़ुरआन का अध्याय।

मिलता था। इस घटना के बाद जल्द ही किसी मुसलमान ने क़ुरआन की एक सूरह लिखकर इसकी बग़ल में लटका दी। लबीद, जो उस समय तक ईमान नहीं लाए थे, जब अगले दिन 'काबा' के दरवाज़े पर आए और सूरह को पढ़ा तो प्रारंभिक वाक्यों के बाद ही वह असाधारण रूप से प्रभावित हुए और घोषणा की कि निःसंदेह यह किसी इंसान का कलाम नहीं है और मैं इस पर ईमान लाता हूँ।

(Mohammad The Holy Prophet, By H.G. Sarwar, p.448)

यहाँ तक कि अरब का यह प्रख्यात कवि क़ुरआन के साहित्य से इतना प्रभावित हुआ कि उसकी शायरी छूट गई। बाद में एक बार हज़रत उमर ने उनसे अशआर सुनने की इच्छा प्रकट की तो उन्होंने जवाब दिया—

"जब ईश्वर ने मुझे 'बक़रह' व 'आले इमरान' (क़ुरआन के अध्याय) जैसा कलाम दिया है तो अब शे'र कहना मेरे लिए शोभा नहीं देता।" (इस्तेआब इब्ने-अब्दुल बर्र, अनुवाद लबीद)

दूसरी इससे भी अधिक आश्चर्यपूर्ण घटना इब्न अल-मक़फ़आ की है, जिसका अनुकरण करते हुए एक प्राच्यविद (orientalist) वॉलेस्टन ने लिखा है—

"The Muhammad's boast as to the literary excellence of the Quran was not unfounded, is further evidenced by circumstances, which occurred about a century after the establishment of Islam."

"यह बात कि क़ुरआन के चमत्कारिक कथन के बारे में मुहम्मद का गर्व ग़लत नहीं था। यह इस घटना से साबित हो जाता है, जो इस्लाम की स्थापना के 100 वर्ष बाद पेश आई।"

(Mohammad, His Life and Doctrines, p.143)

घटना यह है कि धर्म का इनकार करने वाले एक गिरोह ने यह देखकर कि क़ुरआन लोगों को अत्यधिक प्रभावित कर रहा है, यह तय किया कि इसके जवाब में एक किताब तैयार की जाए। उन्होंने ने इस उद्देश्य के लिए इब्न अल-मक़फ़आ (727 ई०) से संपर्क किया, जो उस युग का एक ज़बरदस्त विद्वान, अद्वितीय साहित्यकार और असाधारण बुद्धिमान व प्रतिभाशाली आदमी था। इब्न मक़फ़आ को अपने ऊपर इतना विश्वास था कि वह राज़ी हो गया। उसने कहा कि मैं एक वर्ष में यह कार्य कर दूँगा, लेकिन उसने एक शर्त लगाई कि इस पूरी अवधि में उसकी सारी आवश्यकताओं की पूर्ण व्यवस्था होनी चाहिए, ताकि वह पूरी संतुष्टि के साथ अपना दिमाग़ अपने कार्य पर लगा सके।

आधी अवधि बीत गई तो उसके साथियों ने यह जानना चाहा कि अब तक क्या काम हुआ— जब वे उसके पास गए तो उन्होंने उसे इस हाल में पाया कि वह बैठा हुआ है— क़लम उसके हाथ में है, गहन अध्ययन में डूबा हुआ है, इस प्रसिद्ध ईरानी साहित्यकार के सामने एक सादा काग़ज़ पड़ा हुआ है, उसकी सीट के पास लिख-लिखकर फाड़े हुए काग़ज़ों का एक ढेर है और इसी तरह सारे कमरे में काग़ज़ात का ढेर लगा हुआ है। इस अति योग्य और सुभाषी व्यक्ति ने अपनी बेहतरीन ताक़त ख़र्च करके क़ुरआन का जवाब लिखने का प्रयास किया, लेकिन वह बुरी तरह असफल रहा। उसने परेशानी की दशा को स्वीकार किया कि सिर्फ़ एक वाक्य लिखने की जद्दोजहद में उसे 6 महीने गुज़र गए, लेकिन वह लिख न सका। अतः निराश और लज्जित होकर वह इस कार्य से अलग हो गया।

इस प्रकार क़ुरआन की चुनौती यथावत आज तक क़ायम है और शताब्दियों की शताब्दियाँ गुज़र गईं, लेकिन कोई इसका जवाब न दे सका। क़ुरआन की यह एक अद्भुत विशेषता है, जो निःसंदेह यह साबित

करती है कि यह एक उच्चतर हस्ती का कलाम है। अगर आदमी के अंदर वास्तव में सोचने की योग्यता हो तो यही घटना ईमान लाने के लिए पर्याप्त है।

क़ुरआन के इस चमत्कारी कलाम का नतीजा था कि अरब के लोग फ़साहत-ओ-बलाग़त (eloquence) में, जिनका कोई जवाब नहीं था और जिन्हें अपने कलाम यानी साहित्य की श्रेष्ठता का इतना अहसास था, वे अरब के अतिरिक्त शेष दुनिया को 'अजम' यानी गूँगा कहते थे। वे क़ुरआन के कलाम के आगे झुकने पर विवश हो गए। सभी लोगों को इसके उच्चतर साहित्य को स्वीकार करना पड़ा।

तुफ़ैल बिन अम्र अलदौसी यमन के शायर थे। जब वह मक्का आए तो लोगों ने कहा कि मुहम्मद की बात नहीं सुनना। यह सुनकर उन्होंने सोचा कि मैं एक अक़्लमंद इंसान हूँ, शायर भी हूँ, अच्छी और ख़राब बातों को मैं ख़ुद समझ सकता हूँ। चुनाँचे उन्होंने पैग़ंबर-ए-इस्लाम से भेंट की और क़ुरआन सुनाने के लिए कहा। पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने क़ुरआन का कुछ हिस्सा सुनाया। यह सुनकर उन्होंने कहा—

"ईश्वर की सौगंध! मैंने इससे अच्छी बात नहीं सुनी और न इससे ज़्यादा इंसाफ़ वाली बात सुनी है।"

(सीरत इब्ने-हिशाम, V.1, p.383)

इसी तरह क़ुरैश के एक सरदार वलीद बिन मुग़ीरह ने क़ुरआन सुना तो उसकी ज़बान से अचानक निकला— "ईश्वर की सौगंध! बेशक जो वे कहते हैं, उसमें शीरनी है और उसमें कशिश (attraction) है और उसका ऊपरी हिस्सा फलदार है और उसका निचला हिस्सा ज़रख़ेज़ है। बेशक वह ज़रूर ग़ालिब होगा है, कोई उस पर ग़लबा नहीं पा सकता। जो भी उसे सुने, वह उससे प्रभावित हो जाता है।"

(शुएबुल ईमान, अल-बैहक़ी, हदीस नं० 133)

इस प्रकार की असंख्य स्वीकृतियाँ हैं, जो प्राचीन इतिहास में मौजूद हैं और वर्तमान की घटनाओं में भी।

(2) दूसरी चीज़, जिसकी मैं चर्चा करना चाहता हूँ, वह क़ुरआन की भविष्यवाणियाँ हैं। ये भविष्यवाणियाँ आश्चर्यजनक रूप से बिल्कुल सही साबित हुई हैं।

इतिहास में हमें बहुत से ऐसे बुद्धिमान और साहसी लोग मिलते हैं, जिन्होंने अपने या दूसरे के बारे में भविष्यवाणी का साहस किया है, मगर हमें मालूम है कि ज़माने ने कभी ऐसे लोगों की पुष्टि नहीं की। अनुकूल परिस्थितियों, असाधारण योग्यता, समर्थकों व सहायकों की अधिकता और प्रारंभिक सफलताओं ने अक्सर लोगों को इस धोखे में डाल दिया है कि वे एक ऐसे अंजाम की ओर बढ़ रहे हैं, जो ठीक उसकी इच्छानुसार है। उन्होंने तुरंत एक निश्चित परिणाम का दावा कर दिया, लेकिन इतिहास ने हमेशा इस प्रकार के दावों को रद्द किया है। इसके विपरीत बिल्कुल विरोधी और अकल्पनीय परिस्थितियों में भी क़ुरआन के शब्द इस प्रकार सही साबित हुए कि उनकी स्पष्टता के लिए सारी इंसानी विद्याएँ बिल्कुल अपर्याप्त हैं। हम इंसानी अनुभवों के प्रकाश में किसी भी तरह से उन्हें नहीं समझ सकते। उनकी स्पष्टता की अकेली स्थिति सिर्फ़ यह है कि उन्हें ग़ैर-इंसानी हस्ती की ओर संबद्ध किया जाए।

नेपोलियन बोनापार्ट अपने समय का एक महान जनरल था। उसकी प्रारंभिक सफलताएँ बताती थीं कि वह सीज़र और सिकंदर के लिए भी एक ईर्ष्या योग्य विजेता साबित होगा। इसका नतीजा यह हुआ कि नेपोलियन के ज़ेहन में यह विचार पलने लगा कि वह भाग्य का मालिक है। उसे अपने ऊपर इतना भरोसा हो गया कि उसने अपने निकटवर्ती सलाहकारों तक की सलाह को मानना छोड़ दिया। उसका

कहना था कि पूर्ण विजय के अतिरिक्त मेरा कोई दूसरा अंजाम नहीं हो सकता; मगर उसका जो अंजाम हुआ, वह सबको मालूम है। 12 जून, 1815 को नेपोलियन ने अपनी सबसे बड़ी सेना लेकर पेरिस से प्रस्थान किया कि दुश्मन को रास्ते ही में ख़त्म कर दे। इसके 6 दिन बाद वाटरलू (बेल्जियम) में ड्यूक ऑफ़ वेलिंग्टन ने स्वयं उसे निर्णायक पराजय देने में सफलता प्राप्त की, जो उस समय ब्रिटेन, हॉलैंड और जर्मनी की सेना का नेतृत्व कर रहा था। अब नेपोलियन की सारी उम्मीदें समाप्त हो गईं। वह अपना सिंहासन छोड़कर अमेरिका जाने के इरादे से भाग खड़ा हुआ, मगर वह अभी किनारे पर पहुँचा ही था कि दुश्मन के निरीक्षक दलों ने उसे पकड़ लिया और उसे मजबूर किया कि वह एक ब्रिटिश जहाज़ पर सवार हो। इसके बाद उसे निर्वासन का जीवन गुज़ारने के लिए दक्षिणी अटलांटिक के द्वीप 'सेंट हेलेनिया' पहुँचा दिया गया, जहाँ वह एकांत और कड़वी परिस्थितियों में पड़ा-पड़ा 5 मई, 1821 को मर गया।

प्रसिद्ध 'कम्युनिस्ट मैनीफ़ेस्टो', जो 1848 ईस्वी में प्रकाशित हुआ, उसमें सबसे पहले जिस देश में समाजवादी क्रांति की आशा प्रकट की गई थी, वह जर्मनी है; मगर 120 साल गुज़रने के बाद भी जर्मनी अब तक उस 'क्रांति' से अनजान है। मई, 1849 में कार्ल मार्क्स ने लिखा था कि "लाल लोकतंत्र पेरिस के ऊपर से झाँक रहा है।" इस भविष्यवाणी को एक शताब्दी से अधिक अवधि गुज़र गई, मगर अभी तक पेरिस के ऊपर सुर्ख़ लोकतंत्र का सूर्य नहीं निकला। एडोल्फ़ हिटलर ने 14 मार्च, 1936 को 'म्यूनिख़' के प्रसिद्ध भाषण में कहा था—

"मैं अपने रास्ते पर भरोसे के साथ चल रहा हूँ कि विजय मेरे भाग्य में लिखी जा चुकी है।" (A Study of History, p.447)

सारी दुनिया जानती है कि जर्मनी के उस महान तानाशाह के पक्ष में जो चीज़ भाग्य में थी, वह यह कि वह पराजित हो और आत्महत्या करके अपनी जान दे। स्वयं अपने देश में हम देख चुके हैं कि जनवरी, 1954 में 'मदुरई' में कम्युनिस्ट पार्टी की तीसरी कांग्रेस के अवसर पर कम्युनिस्ट लीडर श्री पी०सी० जोशी ने ऐलान किया था कि भारत में आगामी आम चुनाव में कम्युनिस्ट पार्टी त्रावणकोर, कोच्चि (केरल), मद्रास, आंध्र प्रदेश, पश्चिमी बंगाल और आसाम में अपनी सरकार बना लेगी। इसके बाद कई चुनाव आए और चले गए, मगर हालात ने इन शब्दों की पुष्टि नहीं की। इस प्रकार असंख्य उदाहरणों की भीड़ में सिर्फ़ क़ुरआन को यह विशिष्टता प्राप्त है कि इसने जिस-जिस चीज़ की भविष्यवाणी की, वह अक्षरशः (literally) पूरी हुई। यह घटना इस बात के प्रमाण के लिए पर्याप्त है कि यह कलाम ऐसे उच्चतर ज़ेहन से निकला है, जिसके क़ब्ज़े में हालात की बागडोर है, जो अनादि काल से अनंत काल तक की ख़बर रखता है।

यहाँ मैं सिर्फ़ दो भविष्यवाणियों की चर्चा करूँगा। एक स्वयं पैग़ंबर-ए-इस्लाम का प्रभुत्व, दूसरे रोमियों के दोबारा विजय की भविष्यवाणी।

(1) पैग़ंबर-ए-इस्लाम हज़रत मुहम्मद ने जब इस्लाम का निमंत्रण देना शुरू किया तो सारा अरब हज़रत मुहम्मद का विरोधी हो गया। एक ओर बहुदेववादी क़बीले थे, जो आपके जानी दुश्मन हो गए। दूसरी ओर यहूदी पूँजीपति थे, जो हर क़ीमत पर आपको नाकाम बनाने का फ़ैसला कर चुके थे। तीसरी ओर कपटाचारी थे, जो प्रत्यक्षतः मुसलमान बने हुए थे, मगर उनका उद्देश्य यह था कि आपके दल में घुसकर आपके आंदोलन को अंदर से बारूद लगा दें। शक्ति, पूँजी और भीतरी षड्यंत्र— तीन पक्षीय विरोध के तूफ़ान में आप अपना आंदोलन चला रहे थे कि थोड़े ग़ुलामों और निर्बल लोगों के

अतिरिक्त कोई आपका साथी न था। मक्का के बड़े-बड़े लोगों में से गिनती के कुछ आदमी, जो आपका साथ देने के लिए निकले, उनका भी हाल यह हुआ कि आपकी तरफ़ आते ही वे अपनी बिरादरी से कट गए और उनका समुदाय भी उसी प्रकार दुश्मन हो गया, जिस प्रकार वे ईश्वर के पैग़ंबर के दुश्मन थे।

यह आंदोलन यूँ ही चलता रहा, यहाँ तक कि परिस्थितियाँ इतनी कठिन हो गईं कि पैग़ंबर और पैग़ंबर के साथियों को अपना वतन छोड़कर दूसरे इलाक़ों की ओर जाना पड़ा। इस प्रकार आप और आपके साथी, जो पहले ही निहत्थे और कमज़ोर थे, वे मदीना शहर में इस हालत में इकट्ठा हुए कि अपने वतन में जो कुछ उनके पास था, वह भी छिन चुका था। मदीने में उन लोगों की निःसहाय होने की क्या दशा थी, इसका अनुमान इससे लगाइए कि अपने वतन को छोड़कर मदीने में आपके जो साथी इकट्ठा हुए थे, उनमें ऐसे लोग भी थे, जिनके रहने के लिए नियमानुसार कोई घर नहीं था। वे छप्पर वाले एक चबूतरे पर अपना जीवन गुज़ारते थे। इसी समानता से उनका नाम 'असहाब-ए-सुफ़्फ़ा' पड़ गया। इस चबूतरे पर भिन्न समय में जो लोग रहे, उनकी संख्या लगभग 400 बताई जाती है। हज़रत अबू हुरैरा कहते हैं कि मैंने असहाब-ए-सुफ़्फ़ा में से 70 आदमियों को देखा है, जिनमें से हर व्यक्ति का यह हाल था कि उसके पास या तो सिर्फ़ एक धोती थी या सिर्फ़ एक चादर। वह उसे अपनी गर्दन में बाँध लेता और वह उसकी पिंडली से लटकता रहता था। (सही अल-बुख़ारी, हदीस नं० 442)

हज़रत अबू हुरैरा उस ज़माने का स्वयं अपना हाल बयान करते हैं कि मैं 'मस्जिद-ए-नबवी' में ख़ामोश लेटा रहता था और लोग समझते थे कि मैं बेहोश हूँ। हालाँकि हक़ीक़त सिर्फ़ यह थी कि निरंतर भूख के कारण मैं निढाल हो जाता था और मस्जिद में जाकर लेटा रहता था। (तिरमिज़ी, हदीस नं० 2367)

कुछ इंसानों का यह दरिद्र क़ाफ़िला मदीने की धरती पर इस प्रकार पड़ा हुआ था कि हर क्षण यह डर था कि चारों ओर इसके फैले हुए दुश्मन इसे उचक ले जाएँगे, मगर ईश्वर की ओर से बार-बार आपको यह शुभ सूचना मिलती थी कि तुम हमारे प्रतिनिधि हो और तुम्हें कोई भी परास्त नहीं कर सकता। सभी विरोधों की तुलना में ईश्वर तुम्हें प्रभुत्वशाली करके रहेगा।

"ये लोग चाहते हैं कि ईश्वर की रोशनी को अपने मुँह से बुझा दें, हालाँकि ईश्वर अपनी रोशनी को पूरा करके रहेगा, चाहे इनकार करने वालों को यह कितना ही नागवार हो। वही है, जिसने भेजा अपने पैग़ंबर को हिदायत (मार्गदर्शन) व सत्यधर्म के साथ, ताकि उसे सब धर्मों पर प्रभुत्व दे, चाहे बहुदेववादियों को यह कितना ही असहनीय हो।"

(क़ुरआन, 61:8-9)

इस दावे को थोड़े दिन ही गुज़रे थे कि सारा-का-सारा अरब आपके क़दमों के नीचे आ गया। थोड़े से निहत्थे, दरिद्र लोगों ने उन पर विजयी पा ली, जो संख्या में बहुत अधिक थे, समय जिनका साथ दे रहा था और जिनके पास हथियार और संसाधनों का ज़बरदस्त भंडार मौजूद था। भौतिक परिभाषाओं में इस बात की कोई व्याख्या नहीं की जा सकती कि आपको ठीक अपनी भविष्यवाणियों के अनुसार अरब के लोगों और पड़ोसी देशों पर कैसे इतना शक्तिशाली प्रभुत्व प्राप्त हो गया। इसकी सिर्फ़ एक ही स्पष्टता संभव है, वह यह कि आप ईश्वर के प्रतिनिधि थे। ईश्वर ने अपनी सहायता से आपको आपके विरोधियों के मुक़ाबले में वर्चस्व दिया और आपके मिशन को इस हद तक कामयाब किया कि आपके दुश्मन आपके साथी बन गए। असाधारण विरोध और ज़बरदस्त दुश्मनों के मुक़ाबले में निरक्षर पैग़ंबर का ठीक अपने दावे के अनुसार सफल होना इस बात का

खुला सबूत है कि आप ब्रह्मांडीय शक्ति के प्रतिनिधि थे। अगर आप मात्र एक इंसान होते तो कभी यह संभव नहीं था कि आपके शब्द इतिहास बन जाएँ। ऐसा इतिहास जिसका उदाहरण समस्त इंसानी घटनाओं में कोई एक भी नहीं। जे०डब्ल्यू०एच० स्टोबर्ट के शब्दों में, "आपके पास जितने कम माध्यम थे और जो विशाल और स्थायी कारनामा आपने अंजाम दिया, उसकी दृष्टि से देखा जाए तो संपूर्ण मानव इतिहास में इतना स्पष्ट रूप से चमकता हुआ नाम कोई और नज़र नहीं आता, जितना अरबी पैग़ंबर का है।"

(Islam and Its Founder, p.228)

यह आपके ईश्वरीय प्रतिनिधि होने की ऐसी आश्चर्यजनक दलील है कि सर विलियम म्यूर जैसे व्यक्ति को भी अप्रत्यक्ष रूप से इसे स्वीकार करना पड़ा—

"मुहम्मद ने दुश्मन की योजनाओं को मिट्टी में मिला दिया। उन्हीं मुट्ठी भर आदमियों के साथ दिन-रात अपनी सफलता की प्रतीक्षा रहती थी। प्रत्यक्ष में बिल्कुल असुरक्षित, बल्कि यूँ कहिए कि शेर के मुँह में रहकर वह हिम्मत दिखाई कि उसका उदाहरण कहीं मिल सकता है तो सिर्फ़ बाइबल में, जहाँ एक पैग़ंबर के बारे में लिखा है कि उन्होंने एक अवसर पर ईश्वर से कहा था— सिर्फ़ मैं ही बाक़ी रह गया हूँ।"

(Life of Mohammad, p.221)

(2) क़ुरआन की दूसरी भविष्यवाणी जिसका मैं यहाँ ज़िक्र करना चाहता हूँ, वह रोमियों की ईरानियों पर विजय है, जो क़ुरआन के तीसवें अध्याय में आई है—

> "रूमी पास के इलाक़े में परास्त हो गए और वे अपनी हार के बाद बहुत ही जल्दी प्रभावी हो जाएँगे।" (30:1-2)

अरब प्रायद्वीप के पूर्व में फ़ारस की खाड़ी के दूसरे किनारे पर ईरानी हुकूमत थी और पश्चिम में लाल सागर के किनारे से लेकर काले सागर तक वह सल्तनत थी, जो इतिहास में 'रोम साम्राज्य' के नाम से प्रसिद्ध है। पहले चर्चित का दूसरा नाम सासानी साम्राज्य (ईरानी) और दूसरे का नाम बाइज़ेंटाइन (रोम) साम्राज्य है। इन दोनों साम्राज्यों की सीमाएँ अरब के उत्तर में इराक़ की प्रसिद्ध नदियों दजला व फ़ुरात पर आकर मिलती थीं। यह दोनों अपने ज़माने की बहुत ही शक्तिशाली सल्तनतें थीं। रोमी साम्राज्य का इतिहास, इतिहासकार गिब्बन के बयान के अनुसार, दूसरी शताब्दी ईस्वी से आरंभ होता है और इसे अपने समय के अत्यंत सुसभ्य साम्राज्य की हैसियत प्राप्त रही है।

एक लेखक के शब्दों में, रोम के पतन पर जितना लिखा गया है, उतना किसी सभ्यता की समाप्ति पर नहीं लिखा गया (Western Civilization, p.210)। सामूहिक दृष्टि से इस शीर्षक पर सबसे अधिक विस्तृत और विश्वसनीय सामग्री एडवर्ड गिब्बन की प्रसिद्ध किताब है, जिसका नाम है—

'The History of the Decline and Fall of the Roman Empire'

इस किताब की पाँचवीं प्रति के दूसरे अध्याय में योग्य लेखक ने उस दौर की घटनाओं को लिखा है, जो इस समय हमारी बहस का विषय है। रोम के एक पूर्व राजा क़ुस्तुनतीन ने 325 ईसा पूर्व में ईसाई धर्म स्वीकार करके उसे सरकारी धर्म की हैसियत दे दी थी। अतः रोम की अधिकतर आबादी अब ईसा मसीह को मानने वाली थी तथा इसके मुक़ाबले में ईरानी सूर्य देवता को पूजते थे। पैग़ंबर-ए-इस्लाम हज़रत मुहम्मद के अवतरण से पहले रोम पर जिस राजा का शासन था, उसका नाम मॉरिस था। मॉरिस की अयोग्यता और अव्यवस्था के कारण आपको पैग़ंबरी मिलने से 8 वर्ष पूर्व 602 ईस्वी में उसकी सेना

ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह का नेतृत्व सेना के एक कप्तान फ़ोकास ने किया था। विद्रोह सफल हो गया और फ़ोकास रोम के राजा के स्थान पर सिंहासन पर क़ाबिज़ हो गया। उसने सत्ता प्राप्त करने के बाद रोम के राजा मॉरिस और उसके ख़ानदान को बड़ी बेरहमी से क़त्ल कर दिया।

फ़ोकास ने अपने पड़ोसी राज्य ईरान को अपना एक दूत भेजकर अपने राज्याभिषेक की सूचना दी। उस समय ईरान के सिंहासन पर नौशेरवाँ आदिल का पुत्र ख़ुसरो परवेज़ (Chosroes II) था। ख़ुसरो परवेज़ को 590-91 ईस्वी में भीतरी षड्यंत्रों और बग़ावत के कारण अपने देश से फ़रार होना पड़ा था। उस ज़माने में क़त्ल होने वाले रोमी राजा मॉरिस ने उसे अपने इलाक़े में शरण दी थी। यह भी कहा जाता है कि उन्हीं दिनों क़ुस्तुंतुनिया यानी इस्तंबोल के प्रवासकाल में ख़ुसरो ने मॉरिस की पुत्री से विवाह कर लिया था और इस संबंध के आधार पर मॉरिस को वह अपना बाप कहता था। अतः जब ख़ुसरो को रोमी क्रांति की सूचना मिली तो वह सख़्त नाराज़ हुआ। उसने रोमी दूत को क़ैद करा दिया और नई हुकूमत को मानने से इनकार कर दिया।

इसके तुरंत बाद उसने अपनी सेना द्वारा रोम पर चढ़ाई कर दी। 603 ईस्वी में उसकी सेना फ़ुरात नदी को पार करके 'शाम' के शहरों में दाख़िल हो गई। फ़ोकास अपनी अयोग्यता के कारण इस असंभावित आक्रमण को रोकने में सफल न हुआ। ईरानी फ़ौजें बढ़ती रहीं, यहाँ तक कि इंताकिया को जीतते हुए यरुशलम पर क़ाबिज़ हो गईं। ईरानी सल्तनत की सीमाएँ फ़ुरात नदी को पार करके नील नदी की तराई तक फैल गईं। पूर्व रोमी राज्य की धार्मिक पकड़ के कारण से चर्च के विरोधी संप्रदाय 'नस्तूरी' और 'याक़ूबी' और दूसरे यहूदी (Jews)

पहले से रोमी हुकूमत से नाराज़ थे। अब उन्होंने रोम की दुश्मनी में नए विजेताओं का साथ दिया। इस चीज़ ने ख़ुसरो की सफलता को बहुत आसान बना दिया।

फ़ोकास की असफलता देखकर सल्तनत के कुछ ओहदेदारों ने अफ़्रीक़ी अधिकृत रोमी गवर्नर के यहाँ ख़ामोश पैग़ाम भेजा कि वह मुल्क को बचाने का प्रयास करे। उसने अपने पुत्र हराक़ल (Heraclius) को इस मुहिम पर भेजा। हराक़ल समुद्र के रास्ते से फ़ौज लेकर अफ़्रीक़ा से चल पड़ा और यह सारी कार्रवाई इतनी राज़दारी के साथ अंजाम दी गई कि फ़ोकास को उस समय तक इसकी ख़बर नहीं हुई, जब तक उसने अपने महल से समुद्र में आते हुए जहाज़ों के निशानों को नहीं देख लिया। हराक़ल मामूली लड़ाई के बाद राजधानी पर क़ाबिज़ हो गया और फ़ोकास को क़त्ल कर दिया गया।

हराक़ल ने फ़ोकास को तो ख़त्म कर दिया, मगर वह ईरानी सैलाब को रोकने में सफल न हो सका। 616 ईस्वी तक रोमी राजधानी से बाहर अपनी शहंशाही का समस्त पूर्वी और दक्षिणी भाग खो चुके थे। इराक़, शाम, फ़िलिस्तीन, मिस्र, एशिया के छोटे हिस्से, हर स्थान पर सलीबी पताका के बजाय ईरानी झंडा लहरा रहा था। रोमी साम्राज्य क़ुस्तुंतुनिया की चारदीवारी में सीमित होकर रह गया। घेराव के कारण सारे-के-सारे रास्ते बंद थे। अतः शहर में अकाल और संक्रमित रोगों ने फैलकर और अधिक मुसीबत पैदा कर दी। रोमी साम्राज्य के महानतम वृक्ष का सिर्फ़ एक तना बाक़ी रह गया था और वह भी ख़ुश्क हो रहा था। स्वयं राजधानी के भीतर दुश्मन के घुस आने का डर सारी आबादी पर इस क़द्र छाया हुआ था कि सारे कारोबार बंद थे। वह सार्वजनिक स्थान, जहाँ रात-दिन चहल-पहल रहती थी, अब सुनसान पड़े हुए थे।

अग्नि-पूजक शासन ने रोमी इलाक़ों पर क़ब्ज़ा करने के बाद ईसाइयत को मिटाने के लिए भीषणतम अत्याचार आरंभ किए। धार्मिक प्रतीकों का अनादर आरंभ हो गया, गिरजाघर तोड़ दिए गए। लगभग एक लाख निर्दोष ईसाइयों को क़त्ल कर दिया गया। हर जगह अग्निकुंड (ईरानियों के पूजा-स्थल) का निर्माण कर दिया गया और ईसा मसीह के स्थान पर अग्नि और सूर्य की बलात् उपासना को रिवाज दिया गया। पवित्र सलीब की असल लकड़ी, जिसके बारे में ईसाइयों की आस्था थी कि इस पर मसीह ने अपनी जान दी थी, वह छीनकर 'मदाइन' पहुँचा दी गई।

इतिहासकार गिब्बन के शब्दों में—

"अगर ख़ुसरो के उद्देश्य वास्तव में नेक और दुरुस्त होते तो वह विद्रोही फ़ोकास के ख़ात्मे के बाद रोमियो से अपने झगड़े को समाप्त कर देता और अफ़्रीक़ी विजेता का अपने बेहतरीन साथी की हैसियत से स्वागत करता, जिसने निहायत ख़ूबी के साथ उसके उपकारी मॉरिस का प्रतिशोध ले लिया था, लेकिन युद्ध को जारी रखकर उसने अपने असल चरित्र को व्यक्त कर दिया।" (p.74)

उस समय ईरानी साम्राज्य और रोमी सल्तनत में क्या अंतर पैदा हो चुका था और ईरानी विजेता अपने आपको कितना बड़ा समझने लगा था, इसका अनुमान ख़ुसरो परवेज़ के उस पत्र से होता है, जो उसने 'बैतुल मुक़द्दस' (Jeruselem) से हराक़ल को लिखा था—

"सब ख़ुदाओं से बड़ा ख़ुदा, समस्त धरती के स्वामी ख़ुसरो परवेज़ की ओर से उस कमीने और नासमझ दास हराक़ल के नाम! तू कहता है कि तुझे अपने ईश्वर पर भरोसा है, क्यों न तेरे ईश्वर ने यरुशलम को मेरे हाथ से बचा लिया?"

इन हालात ने रोम के राजा को बिल्कुल निराश कर दिया और उसने तय किया कि अब वह क़ुस्तुंतुनिया छोड़कर समुद्री रास्ते से अपने दक्षिणी अफ़्रीक़ा के तटीय निवास स्थान पर चला जाए, जो कार्थेज वर्तमान ट्यूनिस में स्थित था। अब उसके सामने देश को बचाने के बजाय अपने अस्तित्व को बचाने की समस्या थी— शाही नौकाएँ महल के ख़ज़ाने से लादी जा चुकी थीं, मगर उसी समय रोमी चर्च के बड़े पादरी ने उसे धर्म का वास्ता देकर रोकने में सफलता प्राप्त कर ली। वह उसे सेंट सोफ़िया के बलि-स्थल पर ले गया और उसे तैयार किया कि वहाँ वह इस बात का वचन ले कि वह अपनी प्रजा के साथ जिएगा या मरेगा, जिसके साथ ईश्वर ने उसे जोड़ा हुआ है (p.75)। इसी बीच ईरानी जनरल साइन ने प्रस्ताव दिया कि हराक़ल एक दूत को समझौते का संदेश लेकर ईरान के राजा की सेवा में भेजे। इसे हराक़ल और उसके सलाहकारों ने बड़ी ख़ुशी से स्वीकार किया, मगर जब ईरान के राजा ख़ुसरो परवेज़ को इसकी ख़बर पहुँची तो उसने कहा—

"मुझे यह नहीं, बल्कि स्वयं हराक़ल ज़ंजीरों में बँधा हुआ मेरे सिंहासन के नीचे चाहिए। मैं रोमी शासक से उस समय तक समझौता नहीं करूँगा, जब तक वह अपने सलीबी ईश्वर को छोड़कर हमारे सूर्य देवता की आराधना न करें।" (p.76)

फिर भी 6 वर्षीय युद्ध ने अंततः ईरानी शासक को आकृष्ट किया कि वह वर्तमान में कुछ शर्तों पर समझौता कर ले। उसने शर्त पेश की—

"एक हज़ार टालेंट* सोना, एक हज़ार टालेंट चाँदी, एक हज़ार रेशमी थान, एक हज़ार घोड़े, एक हज़ार कुँवारी लड़कियाँ।"

---

* रोमन और ग्रीक सभ्यता में वज़न करने की इकाई।

गिब्बन ने सही कहा है कि यह शर्तें ज़लील करने वाली (ignominious terms) हैं। हराक़ल निश्चित ही इन शर्तों को स्वीकार कर लेता, लेकिन जितनी कम अवधि में और जिस छोटे से लुटे हुए इलाक़े से उसे इन क़ीमती शर्तों की पूर्णता करनी थी, इसके मुक़ाबले में उसके लिए अधिक ध्यान देने योग्य बात यह थी कि वह इन्हीं माध्यमों को दुश्मन के विरुद्ध अंतिम आक्रमण की तैयारी के लिए इस्तेमाल करे।

एक ओर यह घटनाएँ हो रही थीं, दूसरी ओर ईरान व रोम के बीच अरब के केंद्रीय स्थल 'मक्का' में इन घटनाओं ने एक और असमंजस उत्पन्न कर दिया था। ईरानी सूर्य देवता को मानते थे और अग्नि की पूजा करते थे और रोमी ईश-संदेश और पैग़ंबरी को मानने वाले थे। इसलिए मानसिक रूप से इस युद्ध में मुसलमानों की सहानुभूति रोमी ईसाइयों के साथ थी और बहुदेववादी दिखाई देने वाली चीज़ों के उपासक होने के कारण अग्निपूजकों से अपना धार्मिक संबंध जोड़ते थे। इस प्रकार रोम व ईरान की कश्मकश इस कश्मकश का बाहरी निशान बन गई, जो मक्का में इस्लाम के मानने वालों और इनकार करने वालों और बहुदेववादियों के बीच जारी थी। दोनों गुट सीमा पार की इस जंग के परिणाम को स्वयं अपनी आपसी कश्मकश के परिणाम का एक प्रतीक समझने लगे। अतः 616 ईस्वी में जब ईरानियों का प्रभुत्व स्पष्ट हो गया और रोमियों के समस्त पूर्वी इलाक़े ईरानियों के क़ब्ज़े में चले गए और इसकी ख़बर मक्का पहुँची तो इस्लाम के विरोधियों ने इस अवसर से लाभ उठाते हुए कहना शुरू किया कि देखो, हमारे भाई तुम्हारे जैसा धर्म रखने वालों पर विजयी हो गए हैं। इसी प्रकार अपने देश में भी हम तुम्हें और तुम्हारे धर्म को मिटाकर रख देंगे। मक्का के मुसलमान जिस

बेबसी और कमज़ोर स्थिति में थे, उसमें यह शब्द उनके लिए ज़ख़्म पर नमक का काम करते थे। ठीक इस स्थिति में पैग़ंबर की ज़ुबान से यह शब्द जारी किए गए—

> "रोमी निकट की धरती पर परास्त हो गए हैं, मगर परास्त होने के कुछ वर्ष में वे फिर विजयी हो जाएँगे और पहले और पीछे सब अधिकार ईश्वर के हाथ में हैं और उस दिन ईमान लाने वाले ईश्वर की मदद से ख़ुश होंगे। वह जिसकी चाहता है, मदद करता है। वह ज़बरदस्त है और मेहरबान है। ईश्वर का वादा है। ईश्वर अपने वादे की ख़िलाफ़वर्ज़ी नहीं करता।"
>
> (क़ुरआन, 30:2-6)

"उस समय जब यह भविष्यवाणी की गई," गिब्बन ने लिखा है, "कोई भी अग्रिम सूचना सच्चाई से इतनी अलग नहीं हो सकती थी, क्योंकि हराक़्ल के प्रारंभिक 12 वर्ष रोमी साम्राज्य की समाप्ति का ऐलान कर रहे थे (p.74)।" लेकिन स्पष्ट है कि यह भविष्यवाणी एक ऐसी हस्ती की ओर से की गई थी, जो समस्त संसाधनों और माध्यमों पर अकेला क़ुदरत रखता है और इंसानों के दिल जिसकी मुट्ठी में हैं। अतः इधर ईश्वर के फ़रिश्ते ने एक उम्मी (निरक्षर) की ज़ुबान से यह सूचना दी और उधर रोम के राजा हराक़्ल में एक क्रांति आनी आरंभ हो गई।

गिब्बन ने लिखा है—

"इतिहास के स्पष्ट चरित्रों में से एक असाधारण चरित्र वह है, जो हराक़्ल के अंदर हम देखते हैं। अपने लंबे शासनकाल के प्रारंभिक और अंतिम वर्षों में यह राजा सुस्ती, अय्याशी और भ्रामक कल्पनाओं का दास दिखाई देता है। ऐसा मालूम होता है कि वह अपनी प्रजा के कष्टों का एक संवेदनहीन और नामर्द दर्शक है, लेकिन सुबह-शाम का

बे-रौनक कोहरा दोपहर के सूरज से कुछ देर के लिए छट जाता है। यही हाल हराक़्ल का हुआ। महल का आरकेडियस (Arcadius—378-408 ईस्वी; रोमी साम्राज्य का एक राजा, जो 395 ईस्वी में सिंहासन पर बैठा।) अकस्मात रणभूमि का सीज़र (Julius Caesar—44-102 ईसापूर्व; महान रोमी सैनिक व राजनेता) बन गया और रोम का सम्मान 6 साहसिक युद्धों के द्वारा दोबारा प्राप्त कर लिया गया। यह रोमी इतिहासकारों का कर्तव्य था कि वे सच्चाई से पर्दा उठाते और उसके सोने व जागने का कारण बयान करते। इतने दिनों बाद अब हम यही अनुमान कर सकते हैं कि इसके पीछे कोई राजनीतिक कारण नहीं थे, बल्कि यह अधिकतर उसकी व्यक्तिगत भावना का परिणाम था। उसी के तहत उसने अपनी सारी रुचियाँ समाप्त कर दीं, यहाँ तक कि अपनी भांजी मार्टीना को भी छोड़ दिया, जिससे उसे इतना लगाव था कि सगी भांजी होने के बाद भी उसके साथ उसने शादी कर ली थी।”

(Gibbon, V.5, p.76-77)

वही हराक़्ल, जो हिम्मत खो चुका था और जिसका दिमाग़ इससे पहले कुछ काम नहीं करता था, अब उसने एक बहुत ही सफल योजना बनाई। क़ुस्तुंतुनिया में एक बड़े संकल्प और तल्लीनता के साथ जंगी तैयारियाँ शुरू हो गईं, फिर भी इस समय स्थिति ऐसी थी कि 622 ईस्वी में जब हराक़्ल अपनी फ़ौजें लेकर क़ुस्तुंतुनिया से रवाना हुआ तो लोगों ने समझा कि दुनिया रोमन साम्राज्य का अंतिम लश्कर देख रही है।

हराक़्ल जानता था कि ईरानी हुकूमत समुद्री शक्ति में कमज़ोर है। उसने अपने समुद्री बेड़े को पीछे से आक्रमण के लिए इस्तेमाल किया। उसने अपनी सेनाएँ काले सागर के रास्ते से गुज़ारकर आर्मीनिया में उतार दीं और वहाँ ठीक उस स्थान पर ईरानियों के ऊपर एक भरपूर हमला किया, जहाँ सिकंदर-ए-आज़म ने उस समय

की ईरानी सल्तनत को हराया था, जब उसने शाम से मिस्र तक अपना प्रसिद्ध मार्च किया था। ईरानी इस अकस्मात हमले से घबरा गए और उनके क़दम उखड़ गए, मगर अभी वे इस एशिया कोचक में ज़बरदस्त फ़ौज रखते थे। वे दोबारा इस फ़ौज से हमला करते, अगर हराक़ल ने उसके बाद उत्तर की ओर से इसी प्रकार की अप्रत्याशित चढ़ाई न की होती। फिर वह समुद्र के रास्ते से क़ुस्तुंतुनिया वापस आया, आवारियों से संधि की और उनकी सहायता से ईरानियों को उनकी राजधानी के गिर्द रोक दिया। इन दोनों हमलों के बाद उसने तीन और अभियान जारी किए— 623, 624 और 625 ईस्वी में यह अभियान काले सागर के दक्षिणी किनारे से हमलावर होकर ईरानी राज्य में चलाया गया और मेसोपोटामिया तक पहुँच गया। इसके बाद ईरानी आक्रमणकारियों का ज़ोर टूट गया और सारे रोमी इलाक़े ईरानी सेना से ख़ाली हो गए। अब हराक़ल स्वयं ईरानी साम्राज्य के केंद्र पर आक्रमण करने की पोज़ीशन में था, फिर भी अंतिम निर्णायक युद्ध दजला नदी के किनारे नैनवा के स्थान पर दिसंबर, 627 ईस्वी में हुआ।

अब ख़ुसरो ने हिम्मत छोड़ दी। वह अपने प्रिय महल ‘दस्तगर्द’ से भागने की तैयारी करने लगा, लेकिन इसी दौरान स्वयं इसके महल के अंदर बग़ावत हो गई। उसके पुत्र ‘शेरूया’ ने उसे गिरफ़्तार करके एक तहख़ाने में बंद कर दिया, जहाँ वह पाँचवें दिन बेकसी की हालत में मर गया। उसके 18 पुत्रों को उसकी आँखों के सामने क़त्ल कर दिया गया, लेकिन उसका यह पुत्र भी 8 महीने तख़्त पर न रह सका। इसके बाद दूसरे राजकुमार ने उसे क़त्ल करके ताज पर क़ब्ज़ा कर लिया। इसी प्रकार शाही ख़ानदान के अंदर आपस में तलवारें चलनी शुरू हो गईं, यहाँ तक कि 4 वर्ष में 9 राजा बदल गए। इन परिस्थितियों में ज़ाहिर है कि दोबारा रोमियों से मुक़ाबला करने का कोई प्रश्न ही नहीं था। ख़ुसरो परवेज़ के बेटे ‘क़बाद द्वितीय’ ने रोमी क़ब्ज़े वाले क्षेत्रों

से हटकर संधि कर ली। पवित्र सलीब की असली लकड़ी वापस कर दी गई और मार्च, 628 में विजेता हराक़ल इस शान से क़ुस्तुंतुनिया वापस आया कि उसके रथ को 4 हाथी खींच रहे थे और असंख्य लोग राजधानी के बाहर लैंपों और ज़ैतून की शाखाओं को लिये हुए अपने हीरो के स्वागत के लिए मौजूद थे। (p.94)

इस प्रकार क़ुरआन ने रोमियों के दोबारा प्रभुत्वशाली होने से संबंधित जो भविष्यवाणी की थी, वह ठीक अपने समय पर (10 वर्ष के अंदर) पूरी तरह से पूरी हो गई।

गिब्बन ने इस भविष्यवाणी पर आश्चर्य व्यक्त किया है, मगर इसी के साथ इसका महत्व घटाने के लिए उसने बिल्कुल ग़लत रूप से इसे ख़ुसरो के नाम आपके (हज़रत मुहम्मद के) निमंत्रण-पत्र के साथ जोड़ दिया। उसने लिखा है—

"ईरानी शहंशाह ने जब अपनी विजय पूर्ण कर ली तो उसे मक्का के एक गुमनाम नागरिक का पत्र मिला, जिसमें उसे निमंत्रण दिया गया था कि वह मुहम्मद को ईश्वर के पैग़ंबर की हैसियत से स्वीकार करे। उसने निमंत्रण को अस्वीकार कर दिया और पत्र को फाड़ दिया। पैग़ंबर-ए-इस्लाम को जब यह ख़बर मिली तो उन्होंने कहा कि ईश्वर इसी तरह ख़ुसरो की सल्तनत को टुकड़े-टुकड़े कर देगा और उसकी ताक़त को बरबाद कर देगा। पूरब के दो महान साम्राज्यों के ठीक किनारे बैठे हुए मुहम्मद उन दोनों हुकूमतों की आपसी तबाही से अंदर-ही-अंदर ख़ुश होते रहे और ईरानी सफलताओं के ठीक बीच में उन्होंने यह भविष्यवाणी करने का साहस किया कि कुछ वर्षों बाद विजय दोबारा रोमियों के झंडे की ओर लौट आएगी। उस समय जबकि यह भविष्यवाणी की गई, कोई भी अग्रिम ख़बर सच्चाई के इतनी विपरीत नहीं हो सकती थी, क्योंकि हराक़ल के प्रारंभिक 12 वर्ष रोमी साम्राज्य की समाप्ति की घोषणा कर रहे थे।" (Gibbon, V.5, p.73-74)

मगर इस्लामी इतिहास का हर इतिहासकार जानता है कि इस भविष्यवाणी का ख़ुसरो के नाम निमंत्रण-पत्र से कोई संबंध नहीं है, क्योंकि ईरान के महाराजा के नाम इस्लाम का निमंत्रण-पत्र हिजरत (प्रवास) के सातवें वर्ष हुदैबिया संधि के बाद भेजा गया है, जो सन् ईस्वी के लिहाज़ से 628 ईस्वी होता है, जबकि भविष्यवाणी हिजरत से पहले मक्का में 616 ईस्वी में हुई थी। (क़ुरआन के चमत्कारों पर एनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ रिलीजन एंड एथिक्स के आगे लिखे भाग अध्ययन योग्य हैं। लेख (क़ुरआन), V.10, p.540-41-45)

(3) क़ुरआन की तीसरी विशेषता को, जिसे मैं इस सच्चाई के सबूत में पेश करना चाहता हूँ, वह यह है कि क़ुरआन बौद्धिक प्रगति से बहुत पहले अवतरित हुआ। इसकी कोई बात आज तक ग़लत साबित न हो सकी। अगर यह सिर्फ़ एक इंसानी कलाम होता तो ऐसा होना असंभव था।

चीन के नवयुवक विद्यार्थियों का एक दल, जो सरकारी व्यवस्था के तहत कैलीफ़ोर्निया यूनिवर्सिटी में शिक्षा ग्रहण कर रहा था, उनमें से लगभग 12 लोगों ने बर्कले के गिरजाघर में जाकर पादरी से कहा कि उनके लिए रविवार की एक क्लास का प्रबंध करे। चीनी नवयुवकों ने स्पष्टता से कहा कि उन्हें निजी रूप से ईसाइयत से कोई लगाव नहीं है और न ही वे स्वयं ईसाई बनना चाहते हैं, लेकिन वे जानना चाहते हैं कि इस धर्म ने अमेरिकी संस्कृति पर क्या और कितना प्रभाव डाला है। पादरी ने इस दल की साप्ताहिक शिक्षा के लिए गणितशास्त्र और खगोल विज्ञान के एक विद्वान पीटर डब्ल्यू० स्टोनर को नियुक्त किया। इस घटना के 4 महीने बाद सभी युवाओं ने ईसाइयत स्वीकार कर ली। इस असाधारण परिवर्तन का कारण क्या था? इसे स्वयं शिक्षक की ज़ुबान से सुनिए—

“मेरे सामने सबसे पहला प्रश्न यह था कि इस प्रकार के लोगों के सामने मज़हब की कौन-सी बात रखी जाए, क्योंकि ये नवयुवक

बाइबल पर सिरे से विश्वास ही नहीं रखते थे। बाइबल की मात्र पारंपरिक शिक्षा बेफ़ायदा मालूम होती थी। इस समय मेरे ज़ेहन में एक विचार आया। मैंने अपनी शिक्षा के ज़माने में बाइबल के पहले अध्याय (किताब-ए-पैदाइश) और साइंस में बहुत निकट की समानता पाई थी। मैंने फ़ैसला किया कि इस दल के सामने यही बात प्रस्तुत करूँगा।

मैं और छात्र प्राकृतिक रूप से इस बात से अवगत थे कि ब्रह्मांड की उत्पत्ति के संबंध में यह साहित्य धरती व आकाश के विषय में विज्ञान की वर्तमान जानकारी प्राप्त होने से हज़ारों वर्ष पहले लिखा गया था। हमें यह भी आभास था कि पैग़ंबर मूसा के ज़माने में ब्रह्मांड के बारे में लोगों के जो विचार थे, उसे वर्तमान जानकारी की रोशनी में देखा जाए तो बहुत ही अधिक निर्थरक मालूम होंगे।

हमने पूरा सर्दी का मौसम 'किताब-ए-पैदाइश' के पहले अध्याय में गुज़ार दिया। छात्र काम लेकर यूनिवर्सिटी की लाइब्रेरी में चले जाते और बड़ी मेहनत से जवाबों को तैयार करके लाते। सर्दी के मौसम की समाप्ति पर पादरी ने मुझे बताया कि छात्रों का पूरा दल इसके पास यह कहने के लिए आया था कि वे ईसाई बनना चाहते हैं। उन्होंने इक़रार किया कि उनके ऊपर साबित हो गया है कि बाइबल ईश्वर की आकाशीय पुस्तक है।" (The Evidence of God, p.137-38)

उदाहरण के रूप में— धरती के प्रारंभ के बारे में 'किताब-ए-पैदाइश' का वाक्य है—

"गहराइयों पर अँधेरा छाया हुआ था"

यह, वर्तमान जानकारी के अनुसार, उस समय की बेहतरीन तस्वीर है। जब धरती बहुत गर्म थी और उसकी गर्मी के कारण पानी वाष्प बनकर उड़ गया था, उस समय हमारे सभी समुद्र घने बादलों के

रूप में वातावरण में तैर रहे थे और इसी कारण प्रकाश धरती की सतह तक पहुँच नहीं पाता था।

हमारा ईमान है कि बाइबल व तौरात (ईसाई व यहूदी धर्म की धार्मिक पुस्तक) वास्तव में उसी तरह ईश्वर की किताब हैं, जैसे क़ुरआन ईश्वर की किताब है। इसलिए इनमें ईश्वरीय ज्ञान की चिंगारी निःसंदेह मौजूद हैं, मगर इन किताबों के मूल शब्द सुरक्षित नहीं रहे। हज़ारों वर्ष गुज़रने के बाद बाइबल अब हमारे सामने एक ऐसी किताब के रूप में है, जिसमें क्रेसी मॉरिसन के शब्दों में अनुवाद और इंसानी मिलावट के कारण मूल ईश्वरीय ग्रंथ के मुक़ाबले में बहुत अंतर पैदा हो चुका है (Man Does Not Stand Alone, p.120)। इस प्रकार यह धर्मग्रंथ पूरी तरह से असल हैसियत खो चुके हैं और यही कारण है कि ईश्वर ने इन किताबों को निरस्त करके हमारे लिए अपनी किताब का शुद्ध संस्करण क़ुरआन के रूप में अवतरित किया। क़ुरआन अपनी प्रामाणिकता और व्यापकता के कारण पूरी तरह से उन विशिष्टताओं का वाहक है, जिनकी सिर्फ़ एक झलक अब प्राचीन ग्रंथों में शेष रह गई है।

यहाँ मैं क़ुरआन की इसी विशिष्टता को इसकी सत्यता की तीसरी दलील के रूप में प्रस्तुत करना चाहता हूँ। इसके बावजूद कि क़ुरआन बौद्धिक प्रगति से बहुत पहले अवतरित हुआ, इसकी कोई बात आज तक ग़लत साबित न हो सकी। अगर यह इंसानी कथन होता तो ऐसा होना संभव नहीं था।

क़ुरआन एक ऐसे ज़माने में उतरा, जब इंसान प्राकृतिक सृष्टि के विषय में बहुत कम जानता था। उस समय बारिश के बारे में यह कल्पना थी कि आकाश में कोई नदी है, जिससे पानी बहकर दरिया में गिरता है और इसी का नाम बारिश है। धरती के बारे में समझा जाता था कि

वह चपटी फ़र्श की तरह है और आकाश इसकी छत है, जो पहाड़ों की चोटियों के ऊपर खड़ी की गई है। सितारों के बारे में यही विचार था कि ये चाँदी की चमकती हुई कीलें हैं, जो आकाश के गुंबद में जड़ी हुई हैं या वह छोटे-छोटे चिराग़ हैं, जो रात के समय रस्सियों की सहायता से लटकाए जाते हैं। प्राचीन भारतवासी यह समझते थे कि धरती एक गाय के सींग पर है और जब गाय धरती को एक सींग से दूसरे सींग पर बदलती है तो इसके सिर के हिलने से भूकंप आ जाता है। कॉपरनिकस (1473-1543 ईस्वी) तक यह विचार था कि धरती स्थिर है और आकाशीय पिंड इसके चारों ओर घूम रहा है।

इसके बाद विद्याओं की तरक़्क़ी हुई। इंसान के अवलोकन और परीक्षण की शक्ति बढ़ गई, जिस कारण असंख्य नई-नई जानकारियाँ प्राप्त हुईं। जीवन का कोई विभाग और विद्या का कोई कोण ऐसा नहीं रहा, जिसमें पहले की मानी हुई बातें बाद की खोज में ग़लत साबित न हो गई हों— इसका अर्थ यह है कि डेढ़ हज़ार वर्ष पहले का कोई भी इंसानी कथन ऐसा नहीं हो सकता, जो आज भी अपनी उचितता को पूरी तरह बाक़ी रखे हुए हो, क्योंकि आदमी अपने समय की जानकारी की रोशनी में बोलता है, चाहे वह समझ के तहत बोले या नासमझी के तहत। यह वही कुछ दोहराएगा, जो उसने अपने ज़माने में पाया हो। अतः आज ऐसी डेढ़ हज़ार वर्ष पूर्व की कोई पुस्तक मौजूद नहीं है, जो ग़लतियों से शुद्ध हो, मगर क़ुरआन का मामला इससे भिन्न है। वह डेढ़ हज़ार वर्ष पूर्व के दौर में सत्य पर आधारित था, आज भी वह उसी प्रकार सत्य पर आधारित है। समय गुज़रने से इसकी सत्यता में कोई अंतर नहीं आया। यह घटना इस बात का सबूत है कि यह एक ऐसे ज़ेहन से निकला हुआ कथन है, जिसकी दृष्टि आदि से अनंत तक व्याप्त है, जो समस्त सच्चाइयों को अपने मूल रूप में जानता है, जिसकी जानकारी काल और परिस्थितियों की पाबंद नहीं। अगर यह सीमित

दृष्टि रखने वाले इंसान का कथन होता तो बाद का ज़माना उसी प्रकार इसे ग़लत साबित कर देता, जैसे हर इंसानी कथन बाद के ज़माने में ग़लत साबित हो चुका है।

क़ुरआन का मूल विषय परलोक का सौभाग्य है, इस लिहाज़ से वह संसार की परिचित विद्याओं व कलाओं में से किसी की भी परिभाषा में नहीं आता, लेकिन चूँकि इसका संबोधित इंसान है, इसलिए प्राकृतिक रूप से वह अपने कलाम में हर उस विद्या को छूता है, जिसका संबंध इंसान से है। यह एक बहुत नाज़ुक स्थिति है, क्योंकि आदमी अपनी बातचीत में अगर किसी कला को स्पर्श कर रहा है तो चाहे वह इस पर कोई विस्तृत बात न करे, अगर उसकी जानकारियाँ अपूर्ण हैं तो निश्चित रूप से वह ऐसे शब्द प्रयोग करेगा, जो घटना से ठीक-ठीक समानता न रखते हों, जैसे— अरस्तू (Aristotle) ने स्त्री को अति निम्न साबित करने के लिए यह कहा— "उसके मुँह में पुरुष से कम दाँत होते हैं"— ज़ाहिर है कि यह वाक्य शरीर विज्ञान से कोई संबंध नहीं रखता, लेकिन इसके बावजूद यह एक ऐसा वाक्य है, जो शरीर विज्ञान से अज्ञानता का सबूत देता है; क्योंकि यह ज्ञात है कि स्त्री और पुरुष के मुँह में दाँतों की संख्या समान होती है, लेकिन आश्चर्यजनक बात यह है कि क़ुरआन हालाँकि अक्सर इंसानी विद्याओं या ज्ञान को कहीं-न-कहीं स्पर्श करता है, लेकिन इसके वक्तव्यों में कोई एक बात भी ऐसी नहीं आ पाई, जो बाद की व्यापक खोजों से यह साबित करे कि यह एक ऐसे व्यक्ति का कथन है, जिसने अपूर्ण जानकारियों के प्रकाश में अपनी बातें कही थीं। स्पष्ट मालूम होता है कि यह एक महानतम हस्ती का कथन है, जो उस समय भी जानता था, जब कोई नहीं जानता था और उन चीज़ों को भी जानता था, जिससे अब तक लोग अनजान हैं।

यहाँ मैं विभिन्न विद्याओं से संबंधित कुछ उदाहरण देना चाहूँगा, जिससे अनुमान होगा कि एक विद्या को स्पर्श करते हुए भी क़ुरआन किस प्रकार आश्चर्यजनक रूप से उन सत्यताओं का घेरा किए हुए है, जो क़ुरआन के अवतरण के समय जानकारी में नहीं थीं, बल्कि बाद में खोजी गई हैं।

इस चर्चा से पहले बतौर भूमिका यह स्पष्ट करना उचित होगा कि आधुनिक अनुसंधानों से क़ुरआनी शब्दों की सदृश्यता इस परिकल्पना पर आधारित है कि यह अनुसंधान या खोजें संबंधित घटना का सुराग़ लगाने में सफल हो चुकी हैं और इस प्रकार भौतिक ब्रह्मांड के विषय में क़ुरआन के संकेतात्मक शब्दों की व्याख्या के लिए हमें आवश्यक सामग्री प्राप्त हो गई है। अब अगर भविष्य का अध्ययन किसी वर्तमान खोज को पूर्ण या आंशिक ग़लत साबित कर दे तो इससे किसी भी दर्जे में क़ुरआन की ग़लती साबित नहीं होगी, बल्कि इसका अर्थ सिर्फ़ यह होगा कि क़ुरआन के संक्षिप्त संदेश के विस्तृत निर्धारण में ग़लती हो गई थी। हमें विश्वास है कि आगे की सही-सही जानकारियाँ क़ुरआन के संकेतात्मक शब्दों को उचित रूप से स्पष्ट करने वाली होंगी, वह किसी भी दृष्टि से इससे भिन्न नहीं हो सकतीं।

इस निरंतरता में क़ुरआन के जो वक्तव्य हैं, उन्हें हम दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं। एक वह, जो इन मामलों से संबंधित हैं, जिसके बारे में इंसान को क़ुरआन के अवतरण के समय किसी भी प्रकार की जानकारियाँ प्राप्त नहीं थीं और दूसरी वह, जिसके बारे में वह ऊपरी और प्रत्यक्ष जानकारी रखता था।

ब्रह्मांड की बहुत-सी चीज़ें ऐसी हैं, जिनके बारे में पूर्वकाल के लोग कुछ-न-कुछ जानते थे, मगर उनका यह ज्ञान उन खोजों के मुक़ाबले में बहुत ही कमज़ोर और अपूर्ण था, जो बाद में ज्ञानात्मक प्रगति के दौर में

इंसान के सामने आई। क़ुरआन की मुश्किल यह थी कि वह कोई विज्ञान की पुस्तक नहीं थी, इसलिए अगर वह प्राकृतिक ब्रह्मांड के विषय में अकस्मात नए-नए भेद खोलकर लोगों के सामने रखना आरंभ कर देता तो उन्हीं चीज़ों पर बहस छिड़ जाती और इसका मूल उद्देश्य— बौद्धिक सुधार— पीठ पीछे चला जाता। यह क़ुरआन का चमत्कार है कि इसने ज्ञानात्मक उन्नति से बहुत पहले के ज़माने में इस प्रकार चीज़ों पर बात की और उनके बारे में ऐसे शब्द प्रयोग किए, जिसमें पूर्वकाल के लोगों के लिए घबराहट का कोई सामान नहीं था और इसी के साथ बाद के भेदों को खोलने का भी वह पूरी तरह से घेराव किए हुए थे।

(i) क़ुरआन में दो जगहों पर पानी के एक विशेष सिद्धांत का वर्णन किया गया है। एक जगह क़ुरआन के अध्याय 'फ़ुरक़ान' में और दूसरी जगह क़ुरआन के अध्याय 'रहमान' में।

पहली जगह से उद्धरण यह है—

"और वही है, जिसने दो समुद्रों को मिलाया। एक का पानी मीठा और प्यास बुझाने वाला है और एक का खारा और कड़वा और उसने दोनों के बीच एक पर्दा रख दिया।" (25:53)

दूसरी जगह पर यह शब्द आए हैं—

"उसने चलाए दो दरिया, मिलकर चलने वाले। दोनों के बीच एक पर्दा है जिससे वे आगे नहीं बढ़ते।" (55:19-20)

इन आयतों में जिस प्रकृति के प्रकटन का वर्णन है, वह प्राचीनकाल से इंसान को मालूम था। वह यह कि दो नदियों के पानी जब आपस में मिलकर चलते हैं तो एक-दूसरे में शामिल नहीं हो जाते। उदाहरण के लिए— चटगाँव (बांग्लादेश) से लेकर अरकान (बर्मा) तक दो नदियाँ मिलकर बहती हैं और इस पूरी यात्रा में दोनों का पानी बिल्कुल अलग-

अलग नज़र आता है। दोनों के बीच एक धारी-सी बराबर बनती चली गई है। एक ओर का पानी मीठा और दूसरी ओर का पानी खारा है। इसी प्रकार समुद्र के तटीय स्थानों पर जो नदियाँ बहती हैं, उनमें समुद्रों के प्रभाव से निरंतर ज्वार-भाटा (tides) आता रहता है। ज्वार के समय जब-जब समुद्र का पानी नदी में आ जाता है तो मीठे पानी की सतह पर खारा पानी बड़ी तेज़ी से चढ़ जाता है, लेकिन इस समय भी दोनों पानी आपस में नहीं मिलते— ऊपर खारा पानी रहता है, नीचे मीठा। इसके बाद जब भाटा (पानी का उतरना) होता है तो ऊपर से खारी पानी उतर जाता है और मीठा वैसा-का-वैसा ही रहता है। इलाहाबाद में गंगा-यमुना के संगम के स्थान पर मैंने स्वयं देखा है कि दोनों नदियाँ मिलने के बाद भी अलग-अलग बहती हुई नज़र आती हैं और बीच में एक लकीर बनाती चली गई है।

यह बात प्राचीनकाल से इंसान के अवलोकन में आ चुकी है, लेकिन यह घटना किस प्राकृतिक नियम के तहत घटित होती है, इसकी अभी वर्तमान में ही खोज की गई है। आधुनिक अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि तरल चीज़ों में सतही तनाव (surface tension) का एक विशेष सिद्धांत है और यही दोनों प्रकार के पानी को अलग-अलग रखता है, क्योंकि दोनों द्रव्यों का तनाव (tension) भिन्न होता है, इसलिए वह दोनों को अपनी-अपनी सीमा में रोके रहता है। आजकल इस सिद्धांत को समझकर आधुनिक संसार ने असंख्य लाभ प्राप्त किए हैं। क़ुरआन ने "दोनों के बीच में एक आड़ है, जिसका वह उल्लंघन नहीं कर सकते" के शब्दों को बोलकर इस घटना की ऐसी व्याख्या की, जो प्राचीन अवलोकन की दृष्टि से भी टकराने वाली नहीं थी और अब नवीन खोजों पर भी वह पूरी तरह से व्याप्त है, क्योंकि हम कह सकते हैं कि 'बरज़ख़' यानी आड़ से अभिप्राय वह सतह का तनाव (surface tension) है, जो दोनों प्रकार के

पानी के दरम्यान पाया जाता है और जो दोनों को मिल जाने से रोके हुए है। सतही तनाव के सिद्धांत को एक साधारण-सी मिसाल से समझिए। अगर आप गिलास में पानी भरें तो वह किनारे तक पहुँचकर तुरंत बहने नहीं लगेगा, बल्कि एक सूत के जितना उठकर गिलास के किनारे के ऊपर गोलाई में ठहर जाएगा। यही वह चीज़ है, जिसे एक शायर ने 'ख़त-ए-पैमाना' कहा है—

"अंदाज़ा-ए-साक़ी था किस दर्जा हकीमाना,
साग़र से उठें मौजें बनकर ख़त-ए-पैमाना!"

गिलास के किनारों के ऊपर पानी की जो मात्रा होती है, वह कैसे ठहरती है? बात यह है कि तरल पदार्थ के अणुओं (molecules) के बाद चूँकि कोई चीज़ नहीं होती, इसलिए उनकी दिशा अंदर की ओर हो जाती है। इस प्रकार के अणुओं के बीच जुड़ाव का आकर्षण बढ़ जाता है और 'जुड़ाव का नियम' (cohesion) की क्रिया के कारण पानी की सतह पर एक प्रकार की लचकदार झिल्ली-सी (elastic film) बन जाती है और पानी जैसे इसके ख़ोल में इस प्रकार भर जाता है, जैसे प्लास्टिक की सफ़ेद झिल्ली में पिसा हुआ नमक भरा होता है। सतह का यही पर्दा ऊपर उभरे हुए पानी को रोकता है। यह पर्दा इस हद तक मज़बूत होता है कि अगर इसके ऊपर सूई डाली जाए तो वह डूबेगी नहीं, बल्कि पानी की सतह पर तैरती रहेगी। इसी को सतही तनाव कहा जाता है और यही वह कारण है, जिसके आधार पर तेल और पानी एक-दूसरे में मिश्रित नहीं होते और यही वह 'आड़' है, जिसके कारण खारे पानी और मीठे पानी के दो दरिया मिलकर बहते हैं, लेकिन एक का पानी दूसरे में शामिल नहीं होता।

(ii) क़ुरआन में कहा गया है—

"ईश्वर वह है, जिसने आसमान को उत्कृष्ट किया, बग़ैर ऐसे स्तंभों के, जिन्हें तुम देख सको।"

प्राचीनकाल के इंसान के लिए यह शब्द उसके प्रत्यक्ष अवलोकन के यथानुरूप थे, क्योंकि वह देखता था कि उसके सिर के ऊपर सूरज, चाँद और सितारों की एक दुनिया खड़ी है, मगर कहीं उसका कोई स्तंभ नज़र नहीं आता और आधुनिक जानकारी रखने वाले इंसान के लिए भी इसमें पूर्ण मौलिकता मौजूद है, क्योंकि आधुनिकतम अवलोकन बताता है कि आकाशीय पिंड एक असीमित अंतरिक्ष में बग़ैर किसी सहारे के क़ायम हैं और एक 'अदृश्य संकल्प' यानी गुरुत्वीय आकर्षण (gravitational pull) इन्हें ऊपरी वातावरण में सँभाले हुए है।

(iii) इसी प्रकार सूर्य और सभी सितारों के बारे में कहा गया है—

"सब-के-सब आसमान में तैर रहे हैं।" (क़ुरआन, 21:33)

प्राचीनकाल में भी इंसान आकाशीय पिंडों को गतिविधि करता हुआ देखता था, इसलिए इन शब्दों से उसे बैचेनी नहीं हुई, लेकिन नवीन जानकारी ने इन शब्दों को और अधिक अर्थपूर्ण बना दिया। विशाल और सौम्य अंतरिक्ष में आकाशीय पिंडों के परिसंचरण के लिए 'तैरने' से बेहतर कोई व्याख्या नहीं हो सकती।

(iv) रात और दिन के संबंध में क़ुरआन में वर्णन है—

"ईश्वर ओढ़ाता है रात को दिन पर कि वह उसके पीछे लगा आता है, दौड़ता हुआ।" (क़ुरआन, 7:54)

यह शब्द प्राचीन इंसान के लिए रात-दिन के आवागमन को बताते थे, मगर इसमें अत्यंत उम्दा संकेत धरती का केंद्रीय धुरी पर घूमने की ओर भी मौजूद है, जो नवीन अवलोकन के अनुसार रात और दिन के परिवर्तन का मूल कारण है। यहाँ मैं याद दिलाऊँगा कि रूस के पहले अंतरिक्ष यात्री ने अंतरिक्ष से वापसी के बाद जो अपने अनुभव बयान किए थे, उसमें एक यह भी था कि धरती को उसने इस रूप में देखा है कि

सूर्य के सामने केंद्रीय परिसंचरण (axial rotation) के कारण इसके ऊपर अँधेरे और उजाले के आने-जाने की तीव्रगामी निरंतरता (rapid succession) जारी थी।

इस प्रकार के वक्तव्य क़ुरआन में अधिकता से मौजूद हैं।

दूसरे उदाहरण वह हैं, जिनके बारे में पूर्वकाल के लोग पूर्णतः कोई जानकारी नहीं रखते थे। क़ुरआन ने उनका ज़िक्र किया है और ऐसी बातें कहीं, जो आश्चर्यजनक रूप से आधुनिक भेदों के प्रकटन से सही साबित होती हैं। यहाँ मैं विभिन्न ज्ञानात्मक विभागों से इसके कुछ उदाहरण पेश करूँगा।

अंतरिक्ष विज्ञान

क़ुरआन ने भौतिक ब्रह्मांड के आरंभ व अंत का विशेष विचार दिया है। यह विचार 100 वर्ष पहले तक इंसान के लिए बिल्कुल अज्ञात था और क़ुरआन के अवतरण काल में तो उसकी कल्पना भी किसी के दिमाग़ में नहीं आ सकती थी, लेकिन आधुनिक अध्ययन ने आश्चर्यजनक रूप से इसकी पुष्टि की है। ब्रह्मांड के आरंभ के बारे में क़ुरआन में यह वर्णन है—

> "क्या इनकार करने वालों ने नहीं देखा कि धरती व आकाश दोनों बंद थे और फिर हमने उन्हें खोल दिया?"
>
> (क़ुरआन, 21:30)

और इसका अंजाम यह बताया गया—

> "जिस दिन हम आसमान को लपेट देंगे, जिस तरह पुस्तक के पन्ने लपेट दिए जाते हैं।" (क़ुरआन, 21:104)

इन शब्दों के अनुसार प्रारंभ में ब्रह्मांड एक सिमटी हुई स्थिति में था और इसके बाद फैलना आरंभ हुआ। इस फैलाव के बावजूद इसका तत्त्व इतना कम है कि थोड़ी-सी जगह में इसे दोबारा समेटा जा सकता है।

ब्रह्मांड के विषय में आधुनिक विचार यही है। विभिन्न संभावनाओं (probabilities) और अवलोकनों के आधार पर वैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि प्रारंभ में ब्रह्मांड का तत्त्व स्थिर और शांत स्थिति में था। यह एक अत्यंत कठोर, सिकुड़ी हुई और घुटी हुई बहुत ही गर्म गैस था। लगभग 14 खरब वर्ष पूर्व एक महाविस्फोट से वह फट पड़ा और इसके साथ ही इसके टूटे हुए अंश चारों ओर फैलने लगे। जब एक बार फैलाव आरंभ हो गया तो इसका जारी रहना अनिवार्य था, क्योंकि तत्त्व के कण जैसे-जैसे दूर होंगे, इनका आपसी आकर्षण का प्रभाव एक-दूसरे पर कम होता चला जाएगा। प्रारंभ में ब्रह्मांड का जो तत्त्व था, उसकी परिधि का अनुमान लगभग एक हज़ार मिलियन प्रकाश वर्ष है और अब प्रोफ़ेसर एडिंगटन के अनुमान के अनुसार वह पूर्व परिधि के मुक़ाबले में 10 गुणा बढ़ चुकी है। इस क्रिया की विस्तृतता अब भी जारी है। एडिंगटन के शब्दों में—

“ग्रहों और आकाशगंगाओं की मिसाल एक ऐसे रबड़ के गुब्बारे की सतह के चिह्नों जैसी है, जो निरंतर फैल रहा हो। इसी प्रकार अपनी निजी गतिविधि के साथ सभी आकाशीय पिंड ब्रह्मांडीय फैलाव के साथ हर क्षण दूर होते जा रहे हैं।”

(The Limitations of Science-20)

दूसरी बात भी नवीनतम अध्ययन से ब्रह्मांड के आकार के यथानुसार साबित हुई है। प्राचीन इंसान यह समझता था कि सितारे इतने ही फ़ासलों पर हैं, जैसा कि वे देखने में नज़र आते हैं, मगर अब मालूम

हुआ है कि वह दूरी के कारण क़रीब-क़रीब नज़र आते हैं, वरना वे एक-दूसरे से बहुत ही लंबी दूरी पर स्थित हैं और यही नहीं, बल्कि वे पिंड भी, जो प्रत्यक्षतः पूरे दिखाई देते हैं, उनका भी एक बड़ा भाग वास्तव में रिक्त है। जिस प्रकार सौर पद्धति में बहुत से ग्रह व उपग्रह एक-दूसरे से दूर-दूर फ़ासलों पर रहते हुए एक व्यवस्था के तहत परिसंचरण करते रहते हैं। इसी तरह हर भौतिक तत्त्व छोटे स्तर की असंख्य सौर व्यवस्थाओं का समूह है, जिन्हें एटम (atom) कहते हैं। सौर पद्धति की रिक्तता हम अपनी आँखों से देख लेते हैं, लेकिन एटमी पद्धति की रिक्तता अति सूक्ष्म होने के कारण दिखाई नहीं देती, जैसे हर चीज़ देखने में ठोस दिखाई दे रही हो, अंदर से खोखली है। जैसे 6 फ़ुट लंबे-चौड़े मानव शरीर के तात्त्विक कणों के बीच से अगर रिक्तता या स्पेस (space) को निकाल दिया जाए तो शेष बचे हुए तत्त्व की हैसियत बस एक अदृश्य धब्बे की-सी रह जाएगी।

इसी प्रकार खगोल भौतिकी के विशेषज्ञों (astrophysicist) ने ब्रह्मांड में फैले हुए पूरे तत्त्व की गणना की है, उनका कहना है—

"If all this were squeezed without leaving any space, the size of the universe will be only thirty times the size of the sun."

"अगर संपूर्ण ब्रह्मांड को इस प्रकार समेट दिया जाए कि इसमें रिक्तता या ख़ाली स्थान बाक़ी न रहे तो संपूर्ण ब्रह्मांड की स्थूलता वर्तमान सूर्य से सिर्फ़ 30 गुणा अधिक होगी, जबकि ब्रह्मांड की विशालता की यह स्थिति है कि सौर पद्धति से बहुत दूर आकाशगंगा, जो अब तक देखी जा सकी है, वह सूर्य से कई मिलियन प्रकाश वर्ष की दूरी पर स्थित है।"

आधुनिक युग के खगोल विद्वान अपने अवलोकनों और गणितीय

अनुमान के आधार पर इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि आकाशीय पिंड जिस नियम के तहत परिसंचरण कर रहे हैं, उसके अनुसार दूर भविष्य में एक समय आने वाला है, जब चाँद धरती के बहुत निकट आ जाएगा और दोतरफ़ा गुरुत्वाकर्षण को सहन न करके फट जाएगा और उसके टुकड़े धरती के चारों ओर वातावरण में फैल जाएँगे।

(Man Does Not Stand Alone, p.24)

"शक़्क़-ए-क़मर (चाँद का फटना) की यह घटना इसी गुरुत्वीय नियम के तहत होगी, जिसका प्रदर्शन ज्वार-भाटा के रूप में सागरों में होता रहता है। चाँद ऊपरी अंतरिक्ष के वातावरण में हमारा निकटतम पड़ोसी है यानी धरती से इसका फ़ासला सिर्फ़ 2 लाख 40 हज़ार मील दूर है। इस निकटता के कारण इसके गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव समुद्र पर पड़ता है और दिन में दो बार ऊपर उठकर असाधारण लहरें उत्पन्न करता है। यह लहरें कुछ स्थानों पर 60 फ़ीट के क़रीब ऊपर तक उठ जाती हैं और ख़ुश्की की सतह भी इस चंद्रीय गुरुत्वाकर्षण से कुछ इंच तक प्रभावित होती है, चाँद और धरती की वर्तमान दूरी उपयुक्त परिमाण पर है और इसके बहुत से लाभ हैं। इसके बजाय अगर यह दूरी घट जाए, जैसे 50 हज़ार मील पर आ जाए तो समुद्रों में इतना प्रचंड तूफ़ान उत्पन्न हो कि ख़ुश्की का अधिकतर भाग इसमें डूब जाए और तूफ़ानी लहरों के निरंतर टकराव से पहाड़ कण-कण हो जाएँ और धरती इसके आकर्षण से फटने लगे।

अंतरिक्ष विज्ञानियों का अनुमान है कि धरती के प्रारंभिक जन्म के समय चाँद उसी प्रकार धरती के निकट था और उस समय भी धरती की सतह पर यह सब कुछ हो चुका था। इसके बाद अंतरिक्षीय नियम ने इसे वर्तमान दूरी पर पहुँचा दिया। उनका विचार है कि एक बिलियन वर्ष तक यह स्थिति शेष रहेगी और इसके बाद यही अंतरिक्षीय नियम दोबारा चाँद को धरती के निकट लाएगा और उस समय चाँद और धरती के

आपसी खिंचाव का नतीजा यह होगा कि चाँद फट जाएगा और टुकड़े-टुकड़े होकर धरती के चारों ओर एक मंडल के रूप में फैल जाएगा।

यह दृष्टिकोण आश्चर्यजनक रूप से इस भविष्यवाणी की पुष्टि है, जिसका वर्णन क़ुरआन के अध्याय 'क़मर' में हुआ है यानी जब क़यामत क़रीब आएगी तो चाँद फट जाएगा और इसका फटना क़यामत के निकट होने के प्रतीकों में से एक प्रतीक है।

> "क़यामत नज़दीक आ गई और चाँद फट गया और ये लोग कोई निशानी देखते हैं तो इसकी उपेक्षा ही करेंगे और कहेंगे यह तो जादू है, जो पहले से चला आ रहा है।"
>
> (क़ुरआन, 54:1-2)

शक़्क़-ए-क़मर यानी चाँद के फटने की घटना प्राचीन व्याख्याकारों और वक्ताओं से लेकर अब तक कड़ी चर्चा का विषय रहा है। अधिकांश लोगों का मानना यह है कि चाँद फटने की घटना हुई थी और कुछ लोगों का विचार है कि यह घटना क़यामत के निकट होगी (तफ़्सीर-ए-कबीर)। इस दूसरे दल में इमाम हसन बसरी भी शामिल हैं, जिनका कथन अबू हय्यान उंदलुसी ने इन शब्दों में अनुकरण किया है—

" 'अक़्तरबतस्साअता व अनशक़्क़ुल क़मर' का अर्थ यह है कि जब क़यामत क़रीब आएगी तो चाँद फट जाएगा और यह घटना दूसरी बार सूर (बिगुल) फूँके जाने के बाद होगी।"

इन दोनों विचारों में समानता का रूप यह निकला है कि उन्होंने दोनों को स्वीकार कर लिया है। उनके विचार के अनुसार, हदीसों में 'मिना' के एक समूह के सामने जिस शक़्क़-ए-क़मर का ज़िक्र है, वह भी एक घटना है, चाहे वह इमाम ग़ज़ाली और शाह वलीउल्लाह के विचार के अनुसार आँखों से देखा गया हो या वास्तव में कोई खगोलीय घटना हो और क़यामत के निकट चाँद फटने की बात भी

सही है। पहली घटना मानो एक प्रारंभिक प्रतीक है। इस घटना का क़यामत के निकट घटित होना अपने अंतिम रूप में होगा। प्रसिद्ध विद्वान शब्बीर उस्मानी ने लिखा है—

"चाँद फटने का चमत्कार एक नमूना व निशानी थी क़यामत की कि सब कुछ यूँ ही फूटेगा।"

भूगर्भशास्त्र

पहाड़ों के बारे में क़ुरआन में अलग-अलग जगह पर कहा गया है कि वे धरती का संतुलन स्थापित रखने के लिए हैं, जैसे कहा गया—

"और ज़मीन में पहाड़ बना दिए, ताकि ज़मीन तुम्हें लेकर झुक न पड़े।" (क़ुरआन, 31:10)

इन शब्दों के अवतरण के पूरे 13 सौ वर्षों तक इंसानी ज्ञान पहाड़ों की इस हैसियत के बारे में बिल्कुल अनजान था, लेकिन अब भूगोल इससे परिचित हो चुका है और नवीन भौगोलिक परिभाषा में इसे संतुलन (isostasy) कहा जाता है। हालाँकि इस सिलसिले में इंसान की जानकारी अभी तक प्रारंभिक चरण में है। फिर भी एंगल्न के शब्दों में, "यह समझा जाता है कि धरती की सतह पर जो हल्का तत्त्व था, वह पहाड़ों के रूप में उभर आया और जो भारी तत्त्व था, वह गहरी खाइयों के रूप में दब गया, जिन पर अब समुद्र का पानी भरा हुआ है। इस प्रकार उभार व दबाव ने मिलकर धरती का संतुलन क़ायम किया हुआ है।"
(O.R. Van Engeln, Geomorphology, New York 1948 p.26-27)

एक और लेखक ने लिखा है— “जैसे ख़ुश्की पर घाटियाँ हैं, इसी प्रकार समुद्र के नीचे घाटियाँ हैं; मगर समुद्र की तह में अक्सर घाटियाँ ज़्यादा गहरी और इंसान की अनुभवात्मक परिधि के लिहाज़ से बहुत दूर हैं। ऐसा मालूम होता है कि किसी असाधारण दबाव से समुद्रों में गहरी गुफा बन गई हैं (यह घाटियाँ समुद्र की सतह से 34 हज़ार फ़ीट तक गहरी हैं। यह गहराई किसी भी पहाड़ की ऊँचाई से अधिक है। कुछ स्थानों पर यह घाटियाँ इतनी गहरी हैं कि अगर धरती के पहाड़ की सबसे ऊँची चोटी माउंट एवरेस्ट को जो 29,002 फ़ीट ऊँची है, वहाँ डाल दिया जाए तो इसके ऊपर एक मील की ऊँचाई तक पानी बहता रहेगा)। आश्चर्य यह है कि यह समुद्री खाइयाँ (oceanic trenches) दूर समुद्र के बीच स्थित होने के बजाय ख़ुश्की के क़रीब पाई जाती हैं। कोई नहीं कह सकता कि वह कौन-सा महान दबाव था, जिसने समुद्र की तह में ज़बरदस्त गुफा पैदा कर दी, मगर द्वीपों के सिलसिलों और ज्वालामुखी पहाड़ों से इनकी निकटता यह प्रकट करती है कि पहाड़ी ऊँचाइयों और समुद्री खाइयों में कोई परस्पर संबंध होना चाहिए, जैसा कि धरती ऊँचाई और गहराई के द्वारा अपने संतुलन को क़ायम रखती है। भूगोल के कुछ विश्वसनीय विद्वानों का विचार है कि समुद्री गहराइयाँ आगामी उभरने वाली ख़ुश्की का प्रतीक हो सकती हैं, क्योंकि पानी के नीचे इन अँधेरी गुफाओं में सदियों से बह-बहकर ख़ुश्की और समुद्र की तह की गाद (sediment) तह-ब-तह जमा हो रही है और मीलों पाटती चली जा रही है। इसलिए किसी समय असंतुलन के आधार पर हो सकता है कि समुद्रों के नीचे अथाह गहराइयों में जमा होने वाले तत्त्वों का दबाव पड़ने से नए पहाड़ उभर आएँ या द्वीप-के-द्वीप उत्पन्न हो जाएँ। किनारे के कुछ पहाड़ों में इस प्रकार समुद्री गाद के चिह्न पाए गए हैं, लेकिन इंसान की वर्तमान जानकारियों के दायरे में

कोई भी दृष्टिकोण समुद्री खाइयों की पूरी स्पष्टता नहीं करता। यह स्थायी ठंडी और स्थायी अंधकारमय गुफा, जो प्रति वर्ग इंच 7 टन बोझ के नीचे दबी हुई है,वह अभी इंसान के लिए समुद्र की दूसरी पहेलियों में से एक पहेली है।"

(The World We Live In, New York. 1965)

इसी प्रकार क़ुरआन में कहा गया है कि धरती पर एक समय ऐसा गुज़रा है, जबकि ईश्वर ने उसे फाड़कर फैला दिया—

"और ज़मीन को इसके बाद फैलाया, उससे उसका पानी और चारा निकाला।"

यह शब्द आधुनिकतम 'महाद्वीपों के फैलाव का सिद्धांत' (Theory of Drifting Continents) के यथानुसार है। इस सिद्धांत का अर्थ यह है कि हमारे सभी महाद्वीप किसी समय में एक ही बड़ी धरती का हिस्सा थे। इसके बाद वह फटकर धरती की सतह पर इधर-उधर फैल गए और भरे हुए समुद्रों के आस-पास महाद्वीपों की एक दुनिया आबाद हो गई।

इस सिद्धांत को पहली बार सन् 1915 में एक जर्मन भूगर्भशास्त्री (geologist) अल्फ्रेड वेगेनर ने प्रस्तुत किया। उनकी दलील यह थी कि महाद्वीपों को अगर क़रीब किया जाए तो सब-के-सब पहेली (Jigsaw puzzle) की तरह आपस में जुड़ जाते हैं (जैसे दक्षिणी अमेरिका का पूर्वी तट अफ़्रीक़ा के पश्चिमी तट से मिल रहा है।)

इस प्रकार की और बहुत-सी समानताएँ हैं, जो विशाल समुद्रों के दोनों ओर पाई जाती हैं, जैसे एक प्रकार के पहाड़, समान भूगर्भीय वर्ष की चट्टानें, एक ही प्रकार के जानवर और मछलियाँ और एक प्रकार के पौधे। वनस्पति विज्ञान के विशेषज्ञ प्रोफ़ेसर रोनाल्ड गुड ने अपनी

पुस्तक 'ज्योग्राफ़ी ऑफ़ द फ्लॉवरिंग प्लांट्स' (Geography of the Flowering Plants) में लिखा है—

"वनस्पति शास्त्रियों का लगभग सहमतिपूर्ण दृष्टिकोण है कि विभिन्न पौधे जो धरती के विभिन्न हिस्सों में पाए जाते हैं, उनकी स्पष्टता इसके बग़ैर नहीं हो सकती कि हम मान लें कि धरती के टुकड़े अतीत में कभी परस्पर मिले हुए थे।"

और अब जीवाश्म चुंबकत्व (fossil magnetism) से पुष्टि प्राप्त होने के बाद इसे निश्चित वैज्ञानिक सिद्धांत की हैसियत प्राप्त हो गई है। पत्थर के कणों की अवस्था का अध्ययन करके यह मालूम कर लिया जाता है कि प्राचीनकाल में इसकी चट्टान का अक्षांतर और देशांतर क्या था। इस अध्ययन से मालूम हुआ है कि धरती के वर्तमान टुकड़े अतीत में उन स्थानों पर नहीं थे, जहाँ वे आज नज़र आते हैं, बल्कि ठीक उन स्थानों पर थे, जहाँ महाद्वीपों के प्रवाह का सिद्धांत माँग करता है।

इंपीरियल कॉलेज, लंदन में फ़िज़िक्स के गुरु प्रोफ़ेसर पी०एम०एस० ब्लैकेट ने कहा है—

"हिंदुस्तानी पत्थर की नाप-तोल निश्चित रूप से बताती है कि 70 मिलियन वर्ष पहले हिंदुस्तान भू-भाग रेखा के दक्षिण में स्थित था। दक्षिणी अफ़्रीक़ा की चट्टानों का अवलोकन साबित करता है कि अफ़्रीक़ी महाद्वीप 300 मिलियन वर्ष पूर्व दक्षिणी ध्रुव से टूटकर निकला है।" (विवरण के लिए देखें– रीडर डाइजेस्ट; जून, 1961)

ऊपर हमने जिस आयत का वर्णन किया है, उसमें महान ईश्वर ने 'दहव' का शब्द प्रयोग किया है। 'दहव' का अर्थ है किसी जमी हुई चीज़ को फैलाना और बिखेर देना। अरबी भाषा में कहा जाता है— "दहा अलमतरल हसी अन वजहिल अर्ज़" यानी बारिश ज़मीन पर से

कंकरियों को बहा ले गई। लगभग यही भावार्थ अंग्रेज़ी शब्द 'Drift' का भी है, जो उस भौगोलिक सिद्धांत की स्पष्टता के लिए वर्तमान काल में प्रयोग किया गया है। अत्यंत प्राचीन अतीत और वर्तमान में इस आश्चर्यजनक समानता की स्पष्टता अलावा इसके और क्या हो सकती है कि यह एक ऐसी हस्ती का कथन है, जिसका ज्ञान अतीत और वर्तमान सबको घेरे हुए है।

पोषण

ईश्वरीय ग्रंथ यानी 'क़ुरआन' में जो मेन्यू बताया गया है, उसके अनुसार ख़ून हमारे लिए हराम (forbidden) है। ग्रंथ के अवतरण के समय तक इंसान इस नियम के भोज्य महत्व से अनजान था, लेकिन बाद में जब वैज्ञानिक रूप से ख़ून के अंशों का विश्लेषण किया गया तो मालूम हुआ कि यह क़ानून अत्यंत महत्वपूर्ण ख़ूबी पर आधारित था। वैज्ञानिक विश्लेषण ने इसे रद्द नहीं किया, बल्कि इसकी मौलिकता हम पर स्पष्ट की।

यह विश्लेषण बताता है कि ख़ून में अधिकता से यूरिक एसिड (uric acid) मौजूद है, जो एक तेज़ाबी तत्त्व होने के कारण भयंकर विषैला प्रभाव अपने अंदर रखता है। ज़बीहा (हलाल) का जो विशिष्ट तरीक़ा इस्लाम में बताया गया है, उसका औचित्य भी यही है। इस्लामी परिभाषा में ज़बीहा से अभिप्राय जानवर को ईश्वर के नाम पर ऐसे तरीक़े से ज़िबह (वधित) करना है, जिससे उसके शरीर का सारा ख़ून निकल जाए और यह इसी तरह संभव है कि जानवर की सिर्फ़ महाधमनी (aorta) को काटा जाए, लेकिन गर्दन की रगों को शेष रखा जाए, ताकि ज़िबह किए जाने वाले जानवर के हृदय और मस्तिष्क के बीच मृत्यु तक संबंध स्थापित रहे और जानवर की मृत्यु का कारण सिर्फ़ रक्त

का पूरी तरह निकल जाना हो, न कि किसी मुख्य अंग पर आघात का पहुँचना, क्योंकि किसी मुख्य अंग, जैसे— हृदय, मस्तिष्क, यकृत पर आघात लगने से अगर तुरंत मृत्यु हो जाती है तो ऐसी स्थिति में ख़ून आनन-फ़ानन में शरीर में जमकर सारे मांस को संक्रमित कर देता है और सारा मांस यूरिक एसिड की मिलावट से विषैला हो जाता है।

इसी प्रकार सुअर को भी हराम किया गया है। प्राचीनकाल में इंसान को इस विषय में कुछ अधिक मालूम नहीं था, मगर आधुनिक चिकित्सीय खोज ने बताया है कि इसके अंदर बहुत-सी हानियाँ हैं, जैसे उपरोक्त कथित यूरिक एसिड जो एक विषैला तत्त्व है और हर प्राणी के ख़ून में मौजूद रहता है, वह और दूसरे प्राणियों से तो निकल जाता है, मगर सुअर के शरीर से बाहर नहीं आता। गुर्दे (kidney) जो हर मानव शरीर में होते हैं, वे इस विषैले पदार्थ को मूत्र के द्वारा बाहर निकालते रहते हैं। मानव शरीर इस पदार्थ को 90 प्रतिशत तक बाहर कर देता है, लेकिन सुअर के शारीरिक अंगों की बनावट कुछ इस प्रकार की बनी हुई है कि इसके ख़ून का यूरिक एसिड सिर्फ़ दो प्रतिशत ही बाहर हो पाता है और शेष भाग इसके शरीर का अंश बनता रहता है। अतः सुअर स्वयं भी जोड़ों के दर्द में ग्रस्त रहता है और इसका मांस खाने वाले भी जोड़ों की बीमारी यानी गठिया जैसी बीमारियों से ग्रस्त हो जाते हैं।

***

यहाँ यह बात समझ लेनी चाहिए कि कोई भी आहार चाहे वह लाभप्रद हो या हानिप्रद, जब उसके प्रभावों को बताया जाता है तो यह सिर्फ़ उसके अकेले प्रभाव का वर्णन होता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि जब वह खाया जाए तो अनिवार्यतः तुरंत हर वही प्रभाव भी प्रकट करे, जो व्यक्तिगत अध्ययन में हमने उसके अंदर पाया था। इसका कारण यह है कि आदमी सामान्यतः किसी चीज़ को अकेले रूप में नहीं खाता कि उसे अकेले काम करने का अवसर मिले, बल्कि विभिन्न

चीज़ों के साथ एक चीज़ को पेट में दाख़िल करता है। इसी प्रकार और भी कारक हैं जिनके कारण ऐसा होता है कि विभिन्न चीज़ों की क्रिया और प्रतिक्रिया से अक्सर एक चीज़ का निजी प्रभाव घट जाता है और किसी समय समाप्त भी हो जाता है। फिर किसी चीज़ की अपनी विशिष्टताओं का विश्लेषण किया जाए तो वही बात कही जाएगी जो निजी रूप से उसके अंदर साबित हो रही हो।

***

इस प्रकार के उदाहरण अधिकता से क़ुरआन और हदीस में मौजूद हैं और ये इस बात का नितांत प्रमाण हैं कि क़ुरआन एक ग़ैर-इंसानी ज़ेहन से निकला हुआ है। बाद की जानकारियों ने आश्चर्यजनक रूप से उस भविष्यवाणी की पुष्टि की है, जिसका हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं—

> "निकट ही हम उन्हें अपनी निशानियाँ दिखाएँगे, क्षितिज में भी और स्वयं उनके अंदर भी, यहाँ तक कि उन पर ज़ाहिर हो जाए कि यह हक़ है।" (क़ुरआन, 41:53)

यहाँ मैं एक घटना का अनुकरण करूँगा, जिसके वर्णनकर्ता प्रसिद्ध विद्वान इनायातुल्लाह मशरिकी हैं और उनका संबंध इंग्लैंड से है—

"1909 ईस्वी की बात है। रविवार का दिन था और ज़ोर की बारिश हो रही थी। मैं किसी काम से बाहर निकला तो कैंब्रिज यूनिवर्सिटी के प्रसिद्ध अंतरिक्ष विज्ञानी सर जेम्स जींज़ पर नज़र पड़ी, जो बग़ल में बाइबल दबाए हुए चर्च की ओर जा रहे थे। मैंने क़रीब होकर सलाम किया। उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया। दोबारा सलाम किया तो उन्होंने ध्यान दिया और कहने लगे, 'तुम क्या चाहते हो?' मैंने कहा, 'दो बातें— पहली यह कि ज़ोर की बारिश हो रही है और आपने छाता बग़ल में दबा रखा है।' जेम्स जींज़ अपनी बदहवासी पर मुस्कराए और छाता तान लिया। 'दूसरी यह कि आप जैसा दुनिया भर में मशहूर आदमी चर्च में पूजा के लिए

जा रहा है, यह क्या?' मेरे इस प्रश्न पर प्रोफ़ेसर जेम्स क्षण भर के लिए रुक गए और फिर मेरी ओर ध्यान देते हुए बोले, 'आज शाम को चाय मेरे साथ पियो।' अतः मैं शाम को उनके निवास स्थान पर पहुँचा। ठीक 4 बजे लेडी जेम्स बाहर आकर कहने लगीं, 'सर जेम्स तुम्हारी प्रतीक्षा में हैं।' अंदर गया तो एक छोटी-सी मेज़ पर चाय लगी हुई थी। प्रोफ़ेसर साहब विचारों में खोए हुए थे। कहने लगे, 'तुम्हारा प्रश्न क्या था?' और मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किए बग़ैर उन्होंने आकाशीय पिंडों की उत्पत्ति, उनकी आश्चर्यजनक व्यवस्था, अति निहित बातों व फ़ासलों, उनके जटिल मार्गों और कक्षाओं, दूसरे पारस्परिक आकर्षण और आभाओं वाले तूफ़ान पर ईमान को रोशन करने वाली वह बातें विस्तृत रूप में प्रस्तुत की कि मेरा दिल ईश्वर की इस महानता, तेज व शान-ओ-शौकत की दास्तान पर दहलने लगा और उनकी अपनी अवस्था यह थी कि सिर के सारे बाल सीधे उठे हुए थे, आँखों से आश्चर्य और डर की भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ स्पष्ट थीं। ईश्वर की युक्ति व बुद्धि के डर से उनके हाथ काँप रहे थे और आवाज़ थर्रा रही थी। कहने लगे, 'इनायातुल्लाह ख़ान! जब भी ईश्वर के सृजनात्मक कारनामों पर नज़र डालता हूँ तो मेरा संपूर्ण अस्तित्व ईश्वर के प्रताप से थर्राने लगता है! जब मैं ईश्वर के सामने नतमस्तक होकर कहता हूँ— तू बहुत बड़ा है, तो मेरी हस्ती का हर हिस्सा मेरा साथी बन जाता है। मुझे असीमित संतोष और प्रसन्नता होती है। मुझे दूसरों की तुलना में उपासना में हज़ार गुणा अधिक आनंद मिलता है। कहो, इनायातुल्लाह ख़ान! तुम्हारी समझ में आया कि मैं चर्च में क्यों जाता हूँ'।"

इनायातुल्लाह ख़ान कहते हैं कि प्रोफ़ेसर जेम्स की इन बातों ने मेरे दिमाग़ में एक अजीब कोहराम पैदा कर दिया। मैंने कहा, "श्रीमान, मैं आपकी दिल को झकझोरने वाली बातों से बहुत ही अधिक प्रभावित

हुआ हूँ। इस सिलसिले में क़ुरआन की एक आयत याद आ गई, अगर अनुमति हो तो प्रस्तुत करूँ?" प्रोफ़ेसर जेम्स ने कहा "ज़रूर!" अतः मैंने यह आयत पढ़ी—

> "और पहाड़ों में सफ़ेद और सुर्ख़ और विभिन्न रंगों के टुकड़े हैं और गहरे स्याह भी। और इसी तरह इंसानों और जानवरों और चौपायों में भी विभिन्न रंग के हैं। ईश्वर से उसके बंदों में से सिर्फ़ वही डरते हैं, जो इल्म वाले हैं।"
>
> (क़ुरआन, 35:27-28)

यह आयत सुनते ही प्रोफ़ेसर जेम्स बोले—

"क्या कहा— ईश्वर से सिर्फ़ ज्ञानवान डरते हैं। आश्चर्यजनक, बहुत अद्भुत! यह बात जो मुझे 50 वर्ष के निरंतर अध्ययन व अवलोकन के बाद मालूम हुई। मुहम्मद को किसने बताई? क्या क़ुरआन में वास्तव में यह आयत मौजूद है? अगर है तो मेरी गवाही लिख लो कि क़ुरआन एक ईश्वरीय किताब है। मुहम्मद अनपढ़ थे, उन्हें यह महान सच्चाई अपने आप ही मालूम नहीं हो सकती। उन्हें यक़ीनन ईश्वर ने बताई थी। बहुत ख़ूब, बहुत अद्भुत!" (नक़ूश-ए-शख़्सियात, p.1208-9)

धर्म और सांस्कृतिक समस्याएँ

सांस्कृतिक समस्याओं के विषय में बुनियादी प्रश्न यह है कि इसका क़ानून क्या हो। सांस्कृतिक समस्याएँ इंसानों के पारस्परिक संबंधों से उत्पन्न होती हैं और इन संबंधों को जो चीज़ न्यायिक रूप से नियुक्त करती है, वह क़ानून है; मगर यह आश्चर्यजनक बात है कि आज तक इंसान अपने जीवन के क़ानून की खोज न कर सका। कहने को हालाँकि सारी दुनिया में क़ानूनी हुकूमतें क़ायम हैं, मगर यह सारे 'क़ानून' न सिर्फ़ यह कि अपने उद्देश्य में बुरी तरह असफल हैं, बल्कि शक्ति के बल पर लागू करने के अतिरिक्त इनके पीछे कोई औचित्यपूर्ण कारण मौजूद नहीं। यह एक वास्तविकता है कि निवर्तमान क़ानून अपने पक्ष में ज्ञानात्मक और सैद्धांतिक आधार से वंचित हैं। एल० एल० फ़ुलर के शब्दों में, क़ानून ने अभी अपने आपको नहीं पाया है। उन्होंने एक किताब लिखी है, जिसका नाम है— 'द लॉ इन क्वेस्ट ऑफ़ इटसेल्फ' यानी क़ानून ख़ुद अपनी तलाश में।

आधुनिक युग में इन समस्याओं पर बड़ी संख्या में साहित्य लिखा गया है। बड़े-बड़े दिमाग़ अपनी उच्च योग्यताएँ और अपना बेहतरीन समय इसके लिए व्यय कर रहे हैं और 'चैंबर्स एनसाइक्लोपीडिया' के रचनाकार के शब्दों में, "क़ानून को एक ज़बरदस्त कला की हैसियत देकर इसे बड़ी उन्नति तक पहुँचा दिया है," मगर अब तक की सारी कोशिशें क़ानून की कोई सर्वसम्मति की कल्पना प्राप्त करने

में असफल रही हैं, यहाँ तक कि एक क़ानूनविद् के शब्दों में, "अगर 10 क़ानून बनाने वालों को क़ानून की किसी परिभाषा का वर्णन करने के लिए कहा जाए तो बिना अतिशयोक्ति हमें 11 भिन्न प्रकार के उत्तर सुनने के लिए तैयार रहना चाहिए।" क़ानूनवेत्ताओं की विभिन्न श्रेणियों को अलग करने के लिए उन्हें विभिन्न विचारधाराओं में विभाजित किया जाता है, मगर इनकी श्रेणियाँ इतनी अधिक हैं कि बहुत से लेखक इस प्रकार के धारण किए हुए व्यापकतर विभाजन की हदबंदियों में नहीं आते। उदाहरणार्थ, जॉन ऑस्टिन के बारे में प्रोफ़ेसर जी०डब्ल्यू० पेटन ने लिखा है कि वह हमारे विस्तृत विभाजन (broad division) में किसी एक में भी पूरी तरह उचित नहीं बैठता।

(A Textbook of Jurisprudence, 1905, p.5)

इस मतभेद का कारण यह है कि क़ानून विशेषज्ञों को वह सही जड़ ही नहीं मिली, जिसके आधार पर वे वांछनीय क़ानून को साकार कर सकें। वे क़ानून के अंदर जिन आवश्यक मूल्यों को एकत्र करना चाहते हैं, जब वे उन्हें एकत्र करने का प्रयत्न करते हैं तो मालूम होता है कि वह एकत्र नहीं हो रहे हैं। इस सिलसिले में क़ानून के माहिर की मिसाल उस व्यक्ति की-सी है, जो मेंढकों को तोल रहा हो। ज़ाहिर है कि वह मेंढकों को इकट्ठा करेगा तो कुछ तराज़ू के पलड़े से फुदककर निकल चुके होंगे। इस प्रकार आदर्श क़ानून को प्राप्त करने के अब तक के प्रयास सिर्फ़ असफलता पर समाप्त हुए हैं। फ्राइडमैन के शब्दों में, "यह एक वास्तविकता है कि पश्चिमी सभ्यता को इस समस्या का कोई हल अब तक इसके अलावा नहीं मिल सका कि वह भूले-बिसरे एक चरम से दूसरे चरम तक लुढ़क जाया करे।"

(Legal Theory, p.18)

जॉन ऑस्टिन, जिनकी किताब पहली बार सन् 1861 में प्रकाशित हुई, उन्होंने देखा कि बल लागू किए बग़ैर कोई क़ानून, क़ानून नहीं बनता। इसलिए उन्होंने क़ानून की परिभाषा यह की—

"क़ानून एक आदेश है, जिसे राजनीतिक रूप से उच्च व्यक्तित्व (political superior) ने राजनीतिक रूप से निम्न व्यक्तित्व (political inferior) के लिए लागू किया हो।"

(The Textbook of Jurisprudence, p.56)

इस परिभाषा में क़ानून बस एक सत्ताधारी का आदेश (command of the sovereign) बनकर रह गया। (p.6)

अतः बाद में इस पर कठोर आपत्तियाँ की गईं और अधिक यह कि सत्ताधारियों के भ्रष्टाचार देखकर लोगों के दिमाग़ों में यह विचार उभरा कि क़ानून बनाने में क़ौम या समुदायों की इच्छा को बुनियादी हैसियत हासिल होनी चाहिए। अतः क़ानून के ऐसे विद्वान पैदा हुए, जिन्होंने किसी ऐसे नियम व सिद्धांत को क़ानून मानने से इनकार, कर दिया जिसकी पीठ पर क़ौम की रज़ामंदी न हो। इसका नतीजा यह है कि एक नियम समस्त विद्वानों और नैतिकता के शिक्षकों के निकट सही और लाभकारी होने के बाद भी मात्र इसलिए लागू नहीं हो सकता कि जनसाधारण का मत इसके विरुद्ध है। जैसे अमेरिका में शराब के क़ानून को अमेरिकी समुदाय की रज़ामंदी न मिलने के कारण क़ानून की हैसियत प्राप्त नहीं हुई। इसी प्रकार ब्रिटेन में क़त्ल की सज़ा में संशोधन करना पड़ा और समलैंगिकता जैसी शर्मनाक हरकत को क़ानून की सीमा में लाना पड़ा, हालाँकि देश के जज और गंभीर लोग इसके विरुद्ध थे। इसी प्रकार यह बात भी ज़बरदस्त बहस का विषय रही है कि क़ानून परिवर्तनीय है या अपरिवर्तनीय— मध्यकाल और पुनर्जागरण से पूर्वकाल (post renaissance

period) में भौतिक क़ानून या प्राकृतिक क़ानून की काफ़ी प्रगति प्राप्त हुई। इसका अर्थ यह था कि जो इंसान की प्रकृति है, वही क़ानून का एक श्रेष्ठ स्रोत है।

"प्रकृति की माँग यह है कि हर चीज़ पर हुकूमत का अधिकार स्वयं इन्हीं प्राकृतिक माँगों और मार्गदर्शक नियमों को पहुँचता है और इंसान के लिए प्रकृति ने यह मार्गदर्शक नियम इसकी अक़्ल के रूप में पैदा किए हैं। लिहाज़ा इंसान पर हुकूमत स्वयं अपनी अक़्ल के बल पर भी स्थापित की जा सकती है।"

(Jurisprudence By Bodenheimer, p.164)

इस विचार ने क़ानून को एक सार्वभौमिक (universal) आधार उपलब्ध करा दिया यानी उसे एक ऐसी चीज़ समझा जाने लगा, जिसे एक ही रहना चाहिए। यह सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के क़ानून की कल्पना थी। इसके बाद दूसरा वैचारिक दर्शन पैदा हुआ और उसने दावा किया कि क़ानून के सार्वभौमिक नियमों को मालूम करना बिल्कुल असंभव है। कोहलर ने लिखा है—

"यहाँ कोई अनादि क़ानून (Eternal Law) नहीं है। एक क़ानून, जो एक दौर के लिए सही हो, वही अनिवार्य रूप से दूसरे दौर के लिए सही नहीं हो सकता। हम सिर्फ़ इस बात का प्रयत्न कर सकते हैं कि हर संस्कृति के लिए उसके वर्तमान के अनुकूल क़ानून को उपलब्ध करें। कोई चीज़, जो एक के लिए सही हो, वही दूसरे के लिए घातक हो सकती है।" (Philosophy of Law, p.5)

इस कल्पना ने क़ानून के फ़लसफ़े की सारी दृढ़ता को समाप्त कर दिया। यह कल्पना इंसानी चिंतन को अंधाधुंध परिवर्तनशीलता (relativism) की ओर ले जाती है और चूँकि यह किसी बुनियाद से वंचित है, इसलिए इसकी कोई मंज़िल नहीं। यह कल्पना जीवन के

सभी मूल्यों को तलपट करके रख देती है। फिर एक दल ने हर तरफ़ से सिमटकर न्याय के पक्ष को बहुत अधिक महत्व दिया। लॉर्ड राइट ने डीन रास्को पाउंड का एक उद्धरण अनुकरण करते हुए लिखा है—

"रास्को पाउंड एक ऐसी बात कहता है, जिसकी सच्चाई पर मैं अपने सारे अनुभवों और क़ानूनी अध्ययन के नतीजे में बिल्कुल संतुष्ट हो चुका हूँ, वह यह कि क़ानून का प्रारंभिक और आधारभूत उद्देश्य न्याय की तलाश (quest of justice) है।" (Interpretation of Modern Legal Philosophies; New York, 1947, p.794)

मगर यहाँ फिर प्रश्न उत्पन्न होता है कि न्याय क्या है? और इसे कैसे निश्चित किया जा सकता है? नतीजा यह है कि बात घूम-फिरकर दोबारा वहीं पहुँच जाती है, जहाँ ऑस्टिन को हमने छोड़ा था। इस प्रकार सैकड़ों वर्ष की तलाश और खोज के बाद भी इंसान अब तक क़ानून को साकार करने के लिए कोई वास्तविक आधार अर्जित न कर सका। यह अहसास हर दिन बढ़ रहा है कि आधुनिक दर्शनशास्त्र क़ानून के उद्देश्यों की महत्वपूर्ण समस्या को समाधान करने में असफल रहा है। प्रोफ़ेसर जी०डब्ल्यू० पेटन ने लिखा है—

"क्या हित हैं, जिनकी सुरक्षा एक आदर्श क़ानूनी व्यवस्था को करनी है? यह एक ऐसा प्रश्न है, जो मूल्यों से संबंधित है और वह क़ानून के फ़लसफ़े की बहस के दायरे में आता है, लेकिन इस मामले में हम दर्शनशास्त्र से जितनी सहायता लेना चाहते हैं, उतना ही इसकी प्राप्ति कठिन मालूम होती है। कोई भी ऐसा मूल्यों का मापदंड, जो स्वीकार्य हो, अब तक खोजा नहीं जा सका है। वास्तव में सिर्फ़ धर्म में ही ऐसा है कि हम उसका एक आधार पा सकते हैं, मगर धर्म की सच्चाइयाँ आस्था या अंतर्ज्ञान के तहत स्वीकार की जाती हैं, न कि तार्किक प्रमाण के आधार पर।"

(A Textbook of Jurisprudence, p.104)

आगे वह कुछ क़ानून के विद्वानों का विचार अनुकरण करते हैं कि वे मुद्दतों क़ानून के दर्शनशास्त्र की भूल-भुलैया में चक्कर काटने के बाद यह कहने पर विवश हुए हैं कि क़ानून के दर्शनशास्त्र ने क़ानून के उद्देश्य के दर्शनशास्त्रीय अध्ययन का जो प्रयास किया है, वह किसी नतीजे तक नहीं पहुँचता (p.106)। फिर वह प्रश्न करते हैं— "क्या कुछ आदर्श मूल्य (ideal values) हैं, जो कानून के विकास (evolution of law) में इसका मार्गदर्शन करते हैं (p.108)।" ऐसे मूल्य हालाँकि अब तक खोजे नहीं जा सके, लेकिन वह क़ानून के लिए आवश्यक हैं; मगर समय यह है कि धर्म को अलग करने के बाद इसकी प्राप्ति की कोई स्थिति नज़र नहीं आती। उनके शब्द यह हैं—

"The Orthodox Natural Law Theory based its absolutes on the revealed truths of religion. If we attempt to secularize jurisprudence, where can we find an agreed basis of values?" (p.109)

यह लंबा अनुभव इंसान को दोबारा उसी ओर लौटने का संकेत करता है, जहाँ से उसने अवहेलना की थी। प्राचीनकाल में क़ानून को साकार करने और उसका संकलन करने में धर्म की बहुत बड़ी भूमिका होती थी, अतः क़ानून के इतिहास के विशेषज्ञ सर हेनरी मेन ने लिखा है—

"लिखित रूप से संयुक्त क़ानून की कोई ऐसी व्यवस्था चीन से पेरू तक हमें नहीं मिलती, जिसका अपने आरंभिक काल ही से धार्मिक रस्मों व उपासनाओं के साथ परस्पर संबंध न रहा हो।"

(Early Law and Custom, p.5)

अब समय आ गया है कि उस सच्चाई को स्वीकार किया जाए कि ईश्वर के मार्गदर्शन के बग़ैर इंसान स्वयं अपने लिए क़ानून नहीं

बना सकता। व्यर्थ प्रयास को और अधिक जारी रखने के बजाय अब हमारे लिए बेहतर होगा कि डॉक्टर फ़्राइडमैन के शब्दों में हम स्वीकार कर लें—

"उन विभिन्न प्रयासों का निरीक्षण किया जाए तो यही नतीजा बरामद होता है कि न्याय के आदर्श को निर्धारित करने के लिए धर्म का मार्गदर्शन प्राप्त करने के अतिरिक्त दूसरा हर प्रयास बेफ़ायदा साबित होगा और न्याय के आदर्श विचार को व्यावहारिक रूप से साकार करने के लिए धर्म की दी हुई बुनियाद बिल्कुल अलग रूप से असल और साधारण बुनियाद है।" (Legal Theory, p.450)

धर्म के अंदर हमें वह समस्त बुनियादें बहुत ही सही रूप में मिल जाती हैं, जो एक आदर्श क़ानून के लिए विशेषज्ञ की तलाश कर रहे हैं, मगर वे अब तक उसे पा न सके।

(1) क़ानून का सबसे पहला और अनिवार्य प्रश्न यह है कि क़ानून कौन दे? वह कौन हो, जिसकी मंज़ूरी से किसी क़ानून को क़ानून का दर्जा प्रदान किया जाए? क़ानून के विशेषज्ञ अब तक इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त न कर सके। अगर शासक यानी पदाधिकारी या शासक को शासक के तौर पर यह मुक़ाम दें तो सैद्धांतिक रूप से इसकी कोई दलील नहीं कि एक या कुछ व्यक्तियों को दूसरे सभी लोगों के मुक़ाबले में यह विशेषाधिकार क्यों दिया जाए और न व्यावहारिक रूप से यह फ़ायदेमंद है कि एक व्यक्ति को यह अधिकार दे दिया जाए कि वह जो चाहे क़ानून बनाए और जिस प्रकार चाहे लागू करे और अगर समाज और समूह को 'क़ानून बनाने वाला' क़रार दें तो यह और अधिक बेकार बात है, क्योंकि समाज सामूहिक रूप से वह ज्ञान व बुद्धि नहीं रखता, जो क़ानून बनाने के लिए आवश्यक है। क़ानून बनाने के लिए बहुत-सी कुशलताओं और जानकारियों की

आवश्यकता होती है, जिसकी न सामान्य लोगों में योग्यता होती है और न ही उनके पास इतना अवसर होता है कि वे इनमें इतनी समझ हासिल कर सकें। इसी प्रकार व्यावहारिक रूप से यह भी यह संभव नहीं है कि समाज की कोई ऐसी राय मालूम की जा सके, जो सारे समाज की अपनी राय हो।

वर्तमान काल में इस समस्या का समाधान यह निकाला गया कि पूरी आबादी के बुद्धिमान और वयस्क लोग अपने प्रतिनिधि चुनें और यह चुने हुए लोग समूह के प्रतिनिधि की हैसियत से समूह के लिए क़ानून बनाएँ, मगर इस नियम की तर्कहीनता इसी से ज़ाहिर है कि 51 प्रतिशत को सिर्फ़ 2 प्रतिशत बहुसंख्य के आधार पर यह अधिकार मिल जाता है कि 49 प्रतिशत की तथाकथित अल्प संख्या पर हुक्मरानी करें, लेकिन बात सिर्फ़ इतनी नहीं है। हक़ीक़त यह है कि इस तरीक़े के अंदर इतना ख़ालीपन है कि सामान्यतः 51 प्रतिशत की बहुसंख्या भी प्राप्त नहीं होती और पूर्ण अल्पसंख्या को यह अवसर मिल जाता है कि वह बहुसंख्या के ऊपर हुकूमत करे। उदाहरणार्थ, भारत में इस समय हम जिस हुकूमत के तहत हैं, वह सन् 1964 में आम चुनाव के द्वारा सत्ता में आई। कांग्रेस को देश में यह सत्ता 70 प्रतिशत सीटों पर क़ब्ज़ा प्राप्त करके हुई, जबकि वोट इसे सिर्फ़ 40 प्रतिशत ही मिले थे। यही हाल आज़ादी के बाद पिछले दोनों चुनावों का भी था। हर बार कांग्रेस को 50 प्रतिशत से भी कम वोट मिले, मगर इसके बावजूद हर बार इसी ने सरकार बनाई। इसका कारण यह है कि शेष वोट 50 प्रतिशत से अधिक होने के बाद भी भिन्न पार्टियों में बँटे हुए थे और किसी एक पार्टी के मुक़ाबले में कांग्रेस के मतदाताओं की संख्या अधिक थी, सिर्फ़ कम्युनिस्ट देशों के कृत्रिम चुनाव इससे बचे हुए हैं।

इस प्रकार क़ानून के फ़लसफ़े को आज तक इस मामले का कोई स्वाभाविक समाधान मालूम न हो सका। धर्म इसका जवाब यह देता है कि क़ानून का मूल स्रोत ईश्वर है, जिसने धरती व आकाश का और संपूर्ण प्राकृतिक संसार का क़ानून निर्धारित किया है। उसी को अधिकार है कि वह इंसान की संस्कृति व सामाजिकता का क़ानून बनाए। उसके अतिरिक्त कोई भी नहीं है, जिसे यह हैसियत दी जा सके। यह जवाब इतना साधारण और उचित है कि वह स्वयं ही बोल रहा है कि इसके सिवा इस मामले का कोई और उत्तर नहीं हो सकता। यह उत्तर इस प्रश्न पर उसी प्रकार बिल्कुल खरा उतर रहा है, जैसे कोई ढक्कन ग़लत बर्तनों पर न बैठ रहा हो और जैसे ही उसे उसकी असल जगह पर लाया जाए तो वह ठीक-ठीक उस पर बैठ जाए।

इस उत्तर में क़ानून बनाने और आदेश देने का अधिकार ठीक उस जगह पहुँच गया, जहाँ न पहुँचने का कारण हमारी समझ में नहीं आता था कि हम इसे कहाँ ले जाएँ। इंसानों के ऊपर इंसान को शासक और क़ानून का निर्माता नहीं बनाया जा सकता। इसका अधिकार तो सिर्फ़ उसी को है, जो सभी इंसानों का उत्पत्तिकर्ता और वर्तमान में भी इनका प्राकृतिक शासक है।

(2) क़ानून का एक बहुत बड़ा प्रश्न यह है कि क्या इसका सारा भाग प्रासंगिक है या इसका कोई अंश वास्तविक अवस्था भी रखता है। दूसरे शब्दों में यह कि हर वह क़ानून, जो आज प्रचलित है, कल बदला जा सकता है या इसका कोई भाग ऐसा भी है, जो अपरिवर्तनीय है। इस विषय में लंबी-से-लंबी बहसों के बाद भी आज तक कोई निश्चित आधार प्राप्त न हो सका। क़ानून के विद्वान सैद्धांतिक रूप से इसे आवश्यक समझते हैं कि क़ानून में एक ऐसा तत्त्व आवश्यक है, जो निरंतरता की दशा रखता हो और इसी के साथ उसमें ऐसे भी अंश

भी होने चाहिए, जिनमें लचक हो, ताकि बदलती हुई परिस्थिति में उन्हें सरलता से लागू किया जा सके— दोनों में से किसी एक पक्ष की कमी भी क़ानून के लिए सख़्त हानिकारक है। अमेरिका के एक जज कारडोज़ो ने लिखा है—

"आज क़ानून की अति महत्वपूर्ण आवश्यकताओं में से एक आवश्यकता यह भी है कि क़ानून का एक ऐसा फ़लसफ़ा संग्रहीत किया जाए, जो स्थिरता और परिवर्तन की परस्पर माँगों के बीच सहमति पैदा करे।" (The Growth of the Law)

क़ानून के एक और विद्वान ने लिखा है—

"क़ानून ज़रूर मज़बूत होना चाहिए, लेकिन फिर भी इसमें ठहराव पैदा नहीं होना चाहिए। इसी कारण क़ानून से संबंधित विचारकों ने इस विषय में काफ़ी संघर्ष किया है कि किस प्रकार दृढ़ता और परिवर्तन की दोतरफ़ा माँगों में सामंजस्य पैदा किया जाए।"

(Roscoe Pound, Interpretation of Legal History, p.1)

मगर हक़ीक़त यह है कि इंसानी क़ानूनों में इस प्रकार का भेद करना असंभव है, क्योंकि क़ानून के किसी हिस्से के बारे में यह कहना कि यह सार्वकालिक और अपरिवर्तनीय है, कोई दलील चाहता है और इंसानी क़ानून ऐसी कोई दलील पेश करने में असमर्थ है। आज कुछ लोग एक क़ानून को अपनी बुद्धि से सार्वकालिक घोषित कर देंगे और कल कुछ लोगों की बुद्धि को नज़र आएगा कि वह सार्वकालिक होने योग्य नहीं है और वे दोबारा उसके परिवर्तन योग्य होने की घोषणा कर देंगे।

ईश्वर का क़ानून ही इस मामले का अकेला समाधान है। ईश्वर का क़ानून हमें सभी बुनियादी नियम देता है, जो अपरिवर्तनीय रूप से हमारे

क़ानून के अनिवार्य अंश होने चाहिए। यह क़ानून कुछ बुनियादी मामलों के बारे में बुनियादी पक्षों का निर्धारण करता है और दूसरे पक्षों के बारे ख़ामोश है। इस प्रकार वह इस भेद का निर्धारण कर देता है कि क़ानून का कौन-सा भाग सार्वकालिक है और कौन-सा भाग परिवर्तनीय है। फिर वह ईश्वर का क़ानून होने के कारण अपने साथ श्रेष्ठ प्रमाण भी रखता है कि हम इस निर्धारण को सत्य पर आधारित समझें और इसे अनिवार्य घोषित करें।

(3) इसी प्रकार क़ानून के लिए आवश्यक है कि उसके पास इस बात का कोई उचित कारण मौजूद हो कि वह क्यों किसी चीज़ को 'अपराध' क़रार देता है— इंसानी क़ानून के पास इसका उत्तर यह होता है कि जो कार्य 'सामान्य शांति या देश की व्यवस्था' में बाधा डालता हो वह अपराध है। इसके बग़ैर इसकी समझ में नहीं आता कि किसी कर्म को अपराध कैसे क़रार दें। यही कारण है कि प्रचलित क़ानून की दृष्टि में व्यभिचार (fornication) वास्तव में अपराध नज़र नहीं आता, बल्कि वह सिर्फ़ उस समय अपराध बनता है, जबकि दोनों पक्षों में से किसी ने दूसरे का उत्पीड़न किया हो मानो इंसानी क़ानून के निकट असल अपराध व्यभिचार नहीं, बल्कि ज़बरदस्ती व मजबूर करना है— जिस प्रकार ज़बरदस्ती किसी माल पर हाथ डालना अपराध है, उसी प्रकार ज़बरदस्ती उसकी आबरू पर हाथ बढ़ाना भी अपराध है, लेकिन आपसी सहमति से जिस प्रकार एक का माल दूसरे के लिए जायज़ हो जाता है, इसी प्रकार मानो क़ानून की नज़र में पक्षों की सहमति से एक की पवित्रता या सतीत्व दूसरे पर वैध हो जाता है। इस आपसी सहमति के रूप में क़ानून व्यभिचार का समर्थक व रक्षक बन जाता है और अगर तीसरा व्यक्ति हस्तक्षेप करके ज़बरदस्ती उन्हें रोकना चाहे तो उल्टा वही अपराधी बन जाएगा।

व्याभिचार का कृत्य सोसाइटी में ज़बरदस्त फ़साद फैलाता है। यह अवैध संतान की समस्याएँ उत्पन्न करता है, यह वैवाहिक संबंधों को कमज़ोर कर देता है, यह तुच्छ आनंद का ज़ेहन पैदा करता है, यह चोरी और बेईमानी की तरबियत करता है, यह हत्या और अपहरण को बढ़ावा देता है, यह सारे समाज के दिल-ओ-दिमाग़ को गंदा कर देता है, मगर इसके बाद भी क़ानून इसे कोई दंड नहीं दे सकता, क्योंकि इसके पास सहमतिपूर्ण व्यभिचार को अपराध क़रार देने के लिए कोई आधार नहीं है।

इसी प्रकार इंसानी क़ानून के लिए यह तय करना मुश्किल है कि मद्यपान (drinking) को अपराध क्यों घोषित करें, क्योंकि खाना-पीना इंसान का एक स्वाभाविक अधिकार है, इसलिए वह जो चाहे खाए, इसमें क़ानून को दख़ल करने की क्या ज़रूरत? इसलिए इसके निकट न शराब पीना अपराध है और न इससे पैदा बेहूदा मस्ती वास्तव में पूछताछ योग्य है। हालाँकि नशे की हालत में अगर नशेड़ी किसी से गाली-गलौज कर बैठा या हाथापाई की नौबत आ गई या सार्वजनिक स्थान पर वह इस प्रकार झूमता हुआ चला कि नशा उसकी हरकतों से बिल्कुल ज़ाहिर था, तब कहीं जाकर क़ानून उस पर हाथ डालना जायज़ समझेगा मानो इंसानी क़ानून की धारा वास्तव में मदिरापान करने का कार्य क़ाबिल-ए-गिरफ़्त नहीं है, बल्कि असल क़ाबिल-ए-गिरफ़्त अपराध दूसरों को एक विशेष रूप में पीड़ा पहुँचाना है।

शराब पीना सेहत को तबाह करता है। यह संपत्ति के खोने और अंततः आर्थिक बरबादी तक ले जा सकता है। इससे नैतिकता का अहसास कमज़ोर पड़ जाता है और इंसान धीरे-धीरे हैवान बन जाता है। शराब अपराधियों की बेहतरीन मददगार है, जिसे पीने के बाद कोमल संवेदनाएँ अपंग हो जाती हैं और फिर हत्या, चोरी, डाका और इज़्ज़त

लूटने की घटनाएँ करना आसान हो जाता है। यह सब कुछ होता है, मगर क़ानून इसे बंद नहीं कर सकता, क्योंकि इसके पास इस बात का कोई उत्तर नहीं है कि वह क्यों लोगों की खाने-पीने की ऐच्छिक चीज़ों पर प्रतिबंध लगाए।

इस कठिनाई का उत्तर सिर्फ़ ईश्वर के क़ानून में है, क्योंकि ईश्वर क़ानून सृष्टि के स्वामी की इच्छा का प्रकटीकरण होता है। किसी क़ानून का ईश्वर का क़ानून होना अपने आपमें इस बात का पर्याप्त कारण है कि वह बंदों के ऊपर लागू हो। इसके बाद इसके लिए किसी और कारण की आवश्यकता नहीं। इस प्रकार ईश्वरीय क़ानून, क़ानून की उस आवश्यकता को पूरा करता है कि किस आधार पर किस कार्य को क़ानून की सीमा में लाया जाए।

(4) क़ानून कभी स्वयं पर्याप्त नहीं हो सकता। विभिन्न कारणों के आधार पर इसके साथ नैतिकता का सह-संबंध होना आवश्यक है—

(i) जैसे एक मुक़दमा क़ानून के सामने आता है, उस समय अगर शुद्ध सत्यता सामने न आए तो क़ानून का न्यायवादी उद्देश्य कभी पूरा नहीं हो सकता। अगर दोनों पक्ष और गवाह अदालत में सच बोलने से बचें तो न्याय का ख़ात्मा हो जाएगा और इसकी स्थापना के समस्त प्रयास बेकार साबित होंगे, जैसे क़ानून के साथ किसे ऐसे अतिरिक्त क़ानून की कल्पना की भी अनिवार्य आवश्यकता है, जो लोगों के लिए सच बोलने का प्रेरक बन सके। क़ानून व इंसाफ़ के लिए सच्चाई की अनिवार्यता होने की स्वीकृति दुनिया भर की अदालतें इस प्रकार करती हैं कि वे हर गवाह को मजबूर करती हैं कि वह सच बोलने की क़सम खाए और शपथ उठाकर अपना बयान दे। क़ानून के लिए धार्मिक आस्थाओं के महत्व का यह अति स्पष्ट उदाहरण है, लेकिन आधुनिक समाज में धर्म का असल महत्व चूँकि हर पहलू से समाप्त कर दिया गया

है, इसलिए अदालतों में धार्मिक क़सम अब सिर्फ़ एक परंपरा, बल्कि मसख़रापन बनकर रह गई है और इनका कोई फ़ायदा बाक़ी नहीं रहा है।

(ii) इसी प्रकार यह भी आवश्यक है कि क़ानून जिस कृत्य को अपराध मानकर उस पर दंड देना चाहता है, उसके बारे में स्वयं समाज के अंदर भी यह अहसास मौजूद हो कि यह कार्य अपराध है। मात्र क़ानून कोड में छपे हुए शब्दों के आधार पर वह माहौल पैदा नहीं हो सकता, जो किसी अपराध पर सज़ा को लागू करने के लिए आवश्यक है। एक व्यक्ति जब अपराध करे तो उसके अंदर अपराधबोध (guilty mind) का होना आवश्यक है, वह अपने आपको अपराधी समझे और सारा समाज उसे अपराधी की दृष्टि से देखे। पुलिस पूरे भरोसे के साथ उसे पकड़े, अदालत में बैठने वाला जज पूरी तत्परता के साथ उस पर सज़ा का हुक्म जारी करे। दूसरे शब्दों में, एक कार्य के 'अपराध' होने के लिए उसका 'पाप' होना आवश्यक है। क़ानून की ऐतिहासिक विचारधारा (school of thought) का यह कहना है, कि क़ानून बनाने का काम तभी सफल हो सकता है, जबकि वह उस नस्ल की धारणा के अनुकूल हो, जिसके लिए क़ानून बनाया गया है। अगर वह इससे असंबद्ध हो तो ऐसे क़ानून का असफल होना निश्चित है।

(A Textbook of Jurisprudence, p.15)

अपनी विशिष्ट विचारधारा के तर्कों के रूप पर तो सही नहीं है, लेकिन इसमें एक बाहरी सत्यता निःसंदेह मौजूद है।

(iii) इन सब चीज़ों के साथ यह भी ज़रूरी है कि क़ानून का पालन कराने से पहले समाज के भीतर ऐसे प्रेरक मौजूद हों, जो लोगों को अपराध करने से रोकते हों। सिर्फ़ पुलिस और अदालत का डर इसके लिए पर्याप्त प्रेरक नहीं बन सकता, क्योंकि पुलिस और अदालत की आशंका से तो रिश्वत, सिफ़ारिश, ग़लत वकालत और झूठी गवाहियाँ

भी बचा सकती हैं और अगर इन चीज़ों का इस्तेमाल करके कोई व्यक्ति अपने आपको अपराध के क़ानूनी अंजाम से बचा ले तो फिर उसे और अधिक कोई आशंका बाक़ी नहीं रहती।

ईश्वरीय क़ानून में इन सभी चीज़ों का जवाब मौजूद है। ईश्वरीय क़ानून के साथ धर्म और परलोक की आस्था क़ानून से अलग वह वातावरण उत्पन्न करती है, जो लोगों को सच्चाई पर उभारे। वह इतना प्रभावी है कि अगर कोई व्यक्ति सामयिक स्वार्थ के तहत झूठी शपथ उठाए तो अपने दिल को धिक्कार से नहीं बचा सकता। वेस्टर्न सर्किट की अदालत में एक शिलापट स्थापित है, जो उस घटना की याद ताज़ा करता है कि एक गवाह ने शपथ के सामान्य कथनों को दोहराने के बाद यह भी कहा था कि "अगर मैं झूठ बोलूँ तो ईश्वर मेरी जान यहीं पर पकड़ ले।" अतः वह व्यक्ति वहीं धड़ाम से गिरा और गिरकर उसका अंत हो गया (The Changing Law, p.103)। इस प्रकार की घटनाएँ और भी पेश आई हैं। इसी प्रकार अपराध को बुरा काम समझने की सामान्य अनुभूति भी मात्र असेंबली में पास किए हुए क़ानूनों के द्वारा उत्पन्न नहीं हो सकती, इसका भी अकेला आधार ईश्वर और परलोक की आस्था है। इसी प्रकार अपराध न करने का प्रेरक भी धर्म ही पैदा कर सकता है, क्योंकि धर्म सिर्फ़ क़ानून नहीं देता, बल्कि इसी के साथ यह भी विचार लाता है कि जिसने यह क़ानून लागू किया है, वह तुम्हारे जीवन को देख रहा है। तुम्हारी नीयत, तुम्हारा कथन, तुम्हारी सभी गतिविधियाँ उसके रिकॉर्ड में दर्ज हो चुकी हैं। मरने के बाद तुम्हें उसके सामने पेश किया जाएगा और तुम्हारे लिए यह संभव न होगा कि तुम अपने अपराधों पर पर्दा डाल सको। आज अगर सज़ा से बच गए तो वहाँ की सज़ा से किसी भी तरह नहीं बच सकते, बल्कि दुनिया में अपने अपराध की सज़ा से बचने के लिए अगर तुमने ग़लत कोशिशें की तो परलोक की अदालत

में तुम्हारे ऊपर दोहरा मुक़दमा चलेगा और वहाँ ऐसी सज़ा मिलेगी, जो दुनिया की सज़ा के मुक़ाबले में करोड़ों गुणा सख़्त है।

(5) इंग्लैंड के इतिहास की एक घटना है। जेम्स प्रथम ने घोषणा की कि वह स्वतंत्र राजा की तरह शासन कर सकता है और अदालतों में प्रार्थना और पुनर्विचार के बग़ैर मामलों में अंतिम निर्णय दे सकता है। यह प्रसिद्ध चीफ़ जस्टिस लॉर्ड कोक का ज़माना था। वह धार्मिक व्यक्ति थे और अपने दिन का एक चौथाई हिस्सा पूजा-अर्चना में बसर किया करते थे। उन्होंने राजा से कहा, "तुम्हें फ़ैसले करने का कोई अधिकार नहीं, सभी मामले अदालत में जाने चाहिए।" राजा ने कहा, "मेरा विचार है और यही मैंने सुना भी है कि तुम्हारे विधानों का आधार बुद्धि पर रखा गया है तो क्या मुझमें जजों से कमतर बुद्धि है," चीफ़ जस्टिस ने उत्तर दिया, "निःसंदेह तुम बहुत ज्ञानी और योग्यताओं के मालिक हो, लेकिन क़ानून के लिए बड़े अनुभव और अध्ययन की आवश्यकता है। यह तो एक सुनहरा पैमाना है, जिससे प्रजा के अधिकारों को नापा जाता है और इसी विधान के तहत स्वयं श्रीमान जी की भी सुरक्षा की जाती है।" राजा ने बहुत ही क्रोधित होकर कहा, "मैं भी क़ानून के मातहत हूँ, ऐसा कहना तो ग़द्दारी है।" लॉर्ड कोक ने ब्रेक्टन का हवाला देते हुए कहा—

"राजा किसी का मातहत नहीं, मगर वह ईश्वर और क़ानून का मातहत है।"

(The Changing Law by Sir Alfred Denning; 1953, p.117-18)

हक़ीक़त यह है कि अगर हम ईश्वर के क़ानून को अलग कर दें तो हमारे पास यह कहने का उचित आधार नहीं रहता कि "राजा क़ानून के तहत है, क्योंकि जिन लोगों ने अपने मतों से क़ानून बनाया हो, जिनकी

स्वीकृति से वह क़ानूनी रूप से जारी हुआ हो, जो इसे बाक़ी रखने और बदलने का अधिकार रखते हों, आख़िर किस आधार पर वे इसके मातहत हो जाएँगे। जब इंसान ही क़ानून बनाने वाला हो तो बिल्कुल प्राकृतिक रूप से वह ईश्वर और क़ानून दोनों में व्याप्त हो जाता है। वह स्वयं ही ईश्वर और स्वयं ही क़ानून होता है। ऐसी स्थिति में क़ानून बनाने वालों को क़ानून के दायरे में लाने की कोई स्थिति बाक़ी नहीं रहती।

"यही कारण है कि सभी लोकतंत्रों में समान नागरिकता के नियम को स्वीकार करने के बाद भी क़ानूनी रूप से सब समान नहीं हैं। अगर आप भारत के राष्ट्रपति, राज्यपाल, मंत्री या उच्च पदाधिकारी पर मुक़दमा चलाना चाहें तो आप उसी प्रकार उसके विरुद्ध मुक़दमा नहीं चला सकते, जैसे एक आम नागरिक के विरुद्ध आप कर लेते हैं, बल्कि ऐसे किसी मुक़दमे को अदालत में ले जाने से पहले हुकूमत से इसकी अनुमति लेनी होगी। भारतीय संविधान की धारा 361 के तहत राष्ट्रपति और राज्य के राज्यपालों के लिए यह सुरक्षा प्रदान की गई है कि संसद की अनुमति के बग़ैर किसी अदालत को यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि उनके विरुद्ध किसी दावे की सुनवाई कर सके। इसी प्रकार मंत्रियों के विरुद्ध मामला दायर करने के लिए हुकूमत से अग्रिम अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है, बल्कि भारतीय दंड विधान की धारा 197 के तहत कोई जज, मजिस्ट्रेट या कोई सरकारी नौकर, जो केंद्रीय या राज्य सरकार की अनुमति के बग़ैर अपने पद से बर्ख़ास्त न किया जा सकता हो। अगर उसके विरुद्ध कोई भ्रष्टाचार का आरोप लगाया जाए तो इसकी सुनवाई का अधिकार किसी अदालत को उस समय तक नहीं है, जब तक केंद्र या राज्य सरकार से इसकी अनुमति प्राप्त न कर ली जाए, जिससे उस व्यक्ति की नौकरी संबंधित है।" दूसरे शब्दों में, आप किसी उच्च राजनीतिक या प्रशासनिक व्यक्तित्व पर मुक़दमा

चलाना चाहें तो स्वयं उसी से पूछना होगा कि आपके ऊपर मुक़दमा चलाया जाए या नहीं।

यह भारतीय क़ानूनी व्यवस्था की कमी नहीं है, बल्कि इंसानी क़ानून की कमी है और यह कमी हर उस जगह पाई जाती है, जहाँ इंसानी क़ानूनसाज़ी का नियम प्रचलित है। सिर्फ़ ईश्वरीय क़ानून में यह संभव है कि हर व्यक्ति की हैसियत क़ानून की दृष्टि में समान हो और एक शासक पर भी उसी प्रकार मुक़दमा चलाया जा सके, जिस प्रकार एक पराधीन या जनता पर चलाया जाता है, क्योंकि ऐसी व्यवस्था में क़ानूनसाज़ ईश्वर होता है और शेष सभी लोग समान रूप से क़ानून के अधीन।

(6) क़ानून की अंतिम और सबसे बड़ी विशिष्टता, जिसे हमारे विशेषज्ञ सदियों से खोज रहे हैं और अब तक वे उसे प्राप्त न कर सके, वे भी सिर्फ़ धार्मिक क़ानून में विद्यमान हैं यानी क़ानून का न्यायिक आधार। यह समझा जाता है कि न्यायिक क़ानून के आधार की प्राप्ति न होना तलाश के अपूर्ण होने का सबूत है, न कि इस बात का सबूत कि इंसान इसे प्राप्त नहीं कर सकता; मगर जब हम देखते हैं कि प्राकृतिक क़ानूनों की प्राप्ति में इंसान ने बेहिसाब प्रगति की है और इसकी तुलना में सांस्कृतिक क़ानूनों की खोज में इस दर्जे की, बल्कि इससे अधिक प्रयासों के बावजूद एक प्रतिशत भी सफलता नहीं हुई तो हम यह मानने पर विवश होते हैं कि यह मात्र तलाश अधूरी होने का सबूत नहीं है, बल्कि इस बात का सबूत है कि जो चीज़ तलाश की जा रही है, उसका पाना इंसान के वश में ही नहीं।

दुनिया में सबसे पहला फ़ोटो एक फ्ऱांसीसी वैज्ञानिक ने सन् 1826 में खींचा। उसमें 8 घंटे का समय लगा और उसने अपने कमरे के बरामदे का फ़ोटो खींचा था, लेकिन फ़ोटो खींचने की वर्तमान गति का यह हाल है कि फ़िल्म का गतिवान कैमरा 1 सेकंड में 2 हज़ार से भी अधिक तस्वीरें

खींच लेता है। इसका मतलब यह हुआ कि पहले जितनी देर में एक तस्वीर खींची जा सकती थी, उतनी देर में आज 6 करोड़ तस्वीरें ली जा सकती हैं, जैसे गति के मामले में 140 वर्ष में इंसान ने 6 करोड़ गुणा प्रगति की है, जो अभी जारी है। अमेरिका में बीसवीं शताब्दी के आरंभ में पूरे देश में सिर्फ़ 4 मोटरकारें थीं, अब लगभग 10 करोड़ कारें वहाँ की सड़कों पर दौड़ती हैं। इंसान के सूक्ष्म दर्शन की यह स्थिति है कि आज वह 1/10,00,000 सेकंड को भी हज़ारवें भाग तक विभाजित कर सकता है यानी 1 सेकंड के 10 लाखवें भाग का हज़ारवाँ हिस्सा। अतः धरती की गति में अंतर पड़ने से अगर 1 सेकंड के 10 लाखवें भाग जितना दिन छोटा या बड़ा हो तो वेधशालाओं में उसे मालूम कर लिया जाता है। आज ऐसे संवेदी यंत्रों की खोज हो चुकी है कि अगर 30 जिल्दों की एनसाइक्लोपीडिया में किसी एक पृष्ठ पर दो शब्द बढ़ाए जाएँ तो उसकी सियाही से भार में जो अंतर पड़ेगा, इसे वे तुरंत बता देंगे— यह प्राकृतिक क़ानूनों की खोज में इंसान की प्रगति का हाल है, लेकिन जहाँ तक सांस्कृतिक क़ानूनों का मामला है, वह इसमें एक इंच भी आगे न बढ़ सका।

यहाँ मैं कुछ उदाहरण दूँगा, जिससे अनुमान होगा कि यह दावा कितना सही है कि सिर्फ़ ईश्वरीय धर्म ही वह सच्चा आधार है, जिससे हम इंसानी जीवन का क़ानून हासिल कर सकते हैं।

समाज

इस्लाम की दृष्टि में स्त्री और पुरुष दोनों बराबर नहीं हैं, अतः इन दोनों लिंगों के बीच स्वतंत्र मेल-जोल को सख़्त नापसंद किया है और इसे बंद करने का हुक्म दिया है। इसके बाद औद्योगिक दौर शुरू हुआ तो इस नियम का बहुत उपहास उड़ाया गया और इसे अज्ञानता काल का स्मारक कहा गया। बड़े ज़ोर-शोर से यह बात कही गई कि स्त्री-पुरुष

दोनों समान रूप से इंसानी नस्ल के वारिस हैं। इनके मेल-जोल के बीच कोई दीवार खड़ी करना एक महापाप होगा। अतः सारी दुनिया में और विशेष रूप से पश्चिम में इस नियम पर एक सोसाइटी उभरना शुरू हुई, लेकिन लंबे अनुभव ने यह बात साबित कर दी कि पैदाइशी तौर पर दोनों समान नहीं हैं। इसलिए दोनों को समान मानकर जो समाज बनाया जाए, वह अनिवार्य रूप से असंख्य ख़राबियाँ उत्पन्न करने का कारण होगा।

पहली बात यह कि स्त्री और पुरुष में प्राकृतिक योग्यताओं की ज़बरदस्त लैंगिक भिन्नताएँ हैं, इसलिए दोनों को समानता की हैसियत देना अपने अंदर एक जैविक टकराव रखता है। डॉक्टर एलेक्सिस कैरल ने स्त्री और पुरुष के शारीरिक प्रणाली (physiological) के भेद को बताते हुए लिखा है—

"स्त्री व पुरुष का भेद मात्र लैंगिक अंगों का विशेष रूप से, गर्भाशय की मौजूदगी, गर्भ या शिक्षा-शैली के कारण नहीं है, बल्कि यह विभेद बुनियादी प्रकार के हैं। स्वयं ऊतकों (tissues) की बनावट और पूरी शारीरिक व्यवस्था के भीतर विशेष रासायनिक तत्त्व जो डिंबाशय (ovaries) में रिसते रहते हैं। इन भेदों का असल कारण है। स्त्रियों की तरक़्क़ी के समर्थक इन बुनियादी बातों से अनजान होने के आधार पर यह समझते हैं कि दोनों लिंगों को एक ही प्रकार की शिक्षा, एक ही प्रकार के अधिकारों और एक ही प्रकार की ज़िम्मेदारियाँ मिलनी चाहिए। हक़ीक़त यह है कि स्त्री, पुरुष से बिल्कुल भिन्न है। उसके शरीर की हर कोशिका में स्त्रीत्व का प्रभाव मौजूद होता है। इसके अंगों और सबसे बढ़कर इसके स्नायु तंत्र की भी यही हालत होती है। 'शारीरिक प्रणाली के नियम' (physiological law) इतने ही अटल हैं, जितने नक्षत्र संबंधी (sidereal world) नियम अटल हैं। इंसानी अभिलाषाओं से इन्हें बदला नहीं जा सकता। हम इन्हें उसी प्रकार मानने पर विवश हैं, जिस प्रकार वह पाए जाते हैं। स्त्रियों को चाहिए कि

अपनी प्रकृति के अनुसार अपनी योग्यताओं को प्रगति दें और पुरुषों की नक़ल करने की कोशिश न करें।”

(Man The Unknown, p.93)

व्यावहारिक अनुभव भी इस भेद की पुष्टि कर रहा है, अतः जीवन के किसी भी विभाग में अभी तक स्त्री को पुरुष के बराबर दर्जा न मिल सका, यहाँ तक कि वह विभाग, जो विशेष रूप से स्त्रियों के विभाग समझे जाते थे, वहाँ भी पुरुषों को स्त्रियों पर प्रधानता प्राप्त है। मेरा आशय फ़िल्मी संस्थानों से है, न सिर्फ़ यह कि फ़िल्मी संस्थानों की सारी-की-सारी व्यवस्था पुरुषों के हाथ में है, बल्कि अदाकारी की दृष्टि से भी पुरुष की महत्ता स्त्री से अधिक है। अतः आज एक प्रसिद्ध फ़िल्म अभिनेता एक फ़िल्म के लिए 6 लाख रुपये लेता है, जबकि एक प्रसिद्ध फ़िल्म अभिनेत्री को 4 लाख मिलते हैं। मगर बात सिर्फ़ इतनी ही नहीं है। अगर हम भौतिक और खगोलीय नियमों को स्वीकार न करें और उनके विरुद्ध चलना आरंभ कर दें तो यह सिर्फ़ एक घटना का इनकार नहीं होगा, बल्कि हमारा सिर भी टूट जाएगा। इसी प्रकार स्त्री और पुरुष की अलग-अलग हैसियतों को नज़रअंदाज़ करके इंसान ने जो व्यवस्था बनाई, उसने संस्कृति के भीतर ज़बरदस्त ख़राबियाँ पैदा कर दीं। उदाहरण के रूप में— इस ग़लत फ़लसफ़े के कारण दोनों लिंगों के बीच जो स्वतंत्र घालमेल पैदा हुआ है, इसने आधुनिक समाज में न सिर्फ़ पवित्रता या सतीत्व का अस्तित्व बाक़ी नहीं रखा, बल्कि सारी नौजवान नस्ल को तरह-तरह की नैतिक व मानसिक बीमारियों में ग्रस्त कर दिया। आज पश्चिमी जीवन में यह बात सामान्य है कि एक अविवाहित लड़की डॉक्टर के कमरे में दाख़िल होती है, उसे सिरदर्द और अनिद्रा की शिकायत है, वह कुछ देर अपने कष्टों पर वार्ता करती है, उसके बाद एक पुरुष का ज़िक्र शुरू कर देती है, जिससे वह अभी जल्द ही मिली थी। इतने में डॉक्टर

महसूस करता है कि वह कुछ रुक रही है। अनुभवी डॉक्टर उसकी बात समझकर आगे बात शुरू करता है—

‘Well, then he asked you to his flat. What did you say?’

‘फिर उसने आपको अपने फ्लैट पर बुलाया। आपने क्या कहा?’

लकड़ी जवाब देती है—

‘How did you know? I was just going to tell you that.’

‘आपको कैसे मालूम हुआ? मैं आपको बस बताने वाली थी।’

इसके बाद लड़की जो कुछ कहती है, उसका पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं। अतः आधुनिक विद्वान स्वयं भी इस कटु अनुभव के बाद इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि स्वतंत्र मेल-मिलाप के बाद सतीत्व व सम्मान और पवित्रता की सुरक्षा एक अर्थहीन बात है। अतः इसके विरुद्ध अधिकता से लेख और किताबें प्रकाशित की जा रही हैं। एक पश्चिमी डॉक्टर के शब्दों में—

‘There can come a moment between a man and a woman when control and judgment are impossible.’

‘अजनबी पुरुष और अजनबी स्त्री जब स्वतंत्र रूप से आपस में मिल रहे हों तो एक समय ऐसा आ जाता है कि जब फ़ैसला करना और क़ाबू रखना असंभव हो जाता है।’

हक़ीक़त यह है कि स्त्री और पुरुष के स्वतंत्र मेल-मिलाप की ख़राबियों को पश्चिम के हमदर्द लोग शिद्दत से महसूस कर रहे हैं, लेकिन इसके बाद भी वे इससे इतने प्रभावित हैं कि असल बात इनकी समझ में नहीं आती। एक बहुत ही योग्य और प्रसिद्ध महिला डॉक्टर मेरियन हिलियर्ड ने स्वतंत्र अंतर्व्यवहार के विरुद्ध कड़ा लेख लिखा है। वह कहती हैं—

‘As a doctor I don’t believe there is such a thing as platonic relationship between a man and a woman who are alone together a good deal.’

'डॉक्टर की हैसियत से मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकती कि स्त्री और पुरुष के बीच हानि रहित संबंध भी संभव हैं।'

मगर इसके बावजूद यही महिला डॉक्टर लिखती हैं—

"मैं इतनी अवास्तविकता (unrealistic) पसंद नहीं हो सकती कि यह परामर्श दूँ कि नवयुवक और नवयुवती एक-दूसरे का चुंबन लेना छोड़ दें, मगर अक्सर माताएँ अपनी लड़कियों को इससे अवगत नहीं करातीं कि चुंबन सिर्फ़ भूख (उत्तेजना) उत्पन्न करता है, न कि भावनाओं को शांति देता है।" (रीडर डाइजेस्ट; दिसंबर, 1957)

महिला डॉक्टर यह कहकर अप्रत्यक्ष रूप से ईश्वरीय क़ानून को स्वीकार करती हैं कि स्वतंत्र रूप से मेल-मिलाप के प्रारंभिक प्रदर्शन, जो पश्चिमी जीवन में बहुत ही सामान्य हैं, वे भावनाओं में ठहराव पैदा नहीं करते, बल्कि इच्छाओं को बढ़ाकर और अधिक कामेच्छा की ओर धकेलते हैं और अंततः अति लैंगिक अपराधों तक पहुँचा देते हैं; मगर इसके बावजूद उसकी समझ में नहीं आता कि इस उत्तेजक शैतानियत को किस तरह अवैध क़रार दे।

बहुपत्नीवाद

इसी प्रकार इस्लाम में एक से अधिक विवाह करने की अनुमति दी गई है। इसे आधुनिक सभ्यता ने बड़े ज़ोर-शोर के साथ जहालत यानी अज्ञानता का क़ानून क़रार दिया है, लेकिन अनुभव ने स्पष्ट कर दिया है कि इस्लाम का यह नियम इंसानी प्रकृति की ठीक माँग है, क्योंकि बहुपत्नीत्व (polygamy) के क़ानून को ख़त्म करना वास्तव में दर्जनों अवैध विवाह का दरवाज़ा खोलना है।

यहाँ मैं संयुक्त राष्ट्र की डेमोग्राफ़िक वार्षिक रिपोर्ट सन् 1959

का हवाला देना चाहूँगा। इसमें आँकड़ों के द्वारा बताया गया है कि आधुनिक संसार में जो स्थिति है, वह यह कि बच्चे 'अंदर से कम और बाहर से अधिक' पैदा हो रहे हैं। डेमोग्राफ़िक वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार इन देशों के अवैध बच्चों का अनुपात 60 प्रतिशत है और कुछ देशों, जैसे पनामा में तो 4 में से 3 बच्चे पादरियों के हस्तक्षेप या सिविल मैरिज रजिस्ट्री के बग़ैर ही पैदा हो रहे हैं यानी 75 प्रतिशत अवैध बच्चे। लैटिन अमेरिका में इस प्रकार के बच्चों की संख्या सबसे अधिक है।

संयुक्त राष्ट्र की इस डेमोग्राफ़िक वार्षिक रिपोर्ट से मालूम होता है कि मुस्लिम देशों में अवैध बच्चों की पैदाइश का अनुपात न के बराबर है। अतः इसमें बताया गया है कि संयुक्त लोकतांत्रिक अरब (मिस्र) में नाजायज़ बच्चों का अनुपात 1 प्रतिशत से भी कम है, जबकि संयुक्त लोकतांत्रिक अरब सभी देशों में शायद सबसे अधिक पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित हुआ है। मुस्लिम देश आधुनिक युग की इस सामान्य बीमारी से सुरक्षित क्यों हैं? इसका उत्तर संयुक्त राष्ट्र की राष्ट्रीय रिपोर्ट संग्रहकर्ता संपादकों ने यह दिया है कि चूँकि मुस्लिम देशों में बहुपत्नीत्व (polygamy) का रिवाज है, इसलिए वहाँ नाजायज़ पैदाइशों का बाज़ार गर्म नहीं है। बहुपत्नीत्व के नियम ने मुस्लिम देशों को समय के इस तूफ़ान से बचा लिया है।

(More Out Than In; मुद्रित हिंदुस्तान टाइम्स; 12 सितंबर, 1960)

इस प्रकार अनुभव ने साबित कर दिया कि पूर्व के ईश्वरीय नियम ही अधिक सही और वास्तविकता पर आधारित हैं। (विस्तृत वर्णन के लिए देखें मेरी पुस्तक बहुपत्नीवाद, प्रकाशित Goodword Books, नई दिल्ली)

सभ्यता

इस्लाम में इरादतन क़त्ल की सज़ा मौत है, लेकिन यह कि वधित के वारिस ख़ून की क़ीमत लेने पर राज़ी हो जाएँ, लेकिन आधुनिक विकसित युग में जहाँ धर्म की शिक्षाओं के विरुद्ध ज़ेहन पैदा हुआ और इसी प्रकार क़त्ल की सज़ा के बारे में भी कड़ी आलोचनाएँ की जाने लगीं। इन लोगों का विशेष तर्क यह है कि इस प्रकार की सज़ा का मतलब यह है कि एक इंसानी जान के ख़त्म होने के बाद दूसरी इंसानी जान को भी खो दिया जाए। पिछले वर्षों में अक्सर देशों में इस झुकाव ने बड़ी तेज़ी से तरक़्क़ी की है और फाँसी के बजाय कारावास की सज़ाओं का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस्लाम ने क़ातिल की जो सज़ा निर्धारित की है, उसमें दो महत्वपूर्ण लाभ हैं। एक यह कि एक व्यक्ति ने सोसाइटी के एक व्यक्ति को क़त्ल करके जिस बुराई का प्रदर्शन किया है, उसकी जड़ आगे के लिए कट जाए। अपराधी का भयानक अंजाम देखकर दूसरे लोग आगे इस प्रकार का साहस न कर सकें। इसी के साथ 'दियत' यानी 'अर्थदंड' की जो स्थिति है, इसमें जैसे इस्लाम ने नतीजों का लिहाज़ किया है, जैसे अगर किसी के माता-पिता बूढ़े हों और उनका इकलौता बेटा क़त्ल हो जाए तो वह बेसहारा रह जाते हैं। ऐसी स्थिति में हत्यारे को मृत्युदंड भी मिल जाए तो उन्हें क्या लाभ! इस्लाम ने ऐसे माता-पिता की क्षतिपूर्ति के लिए यह तरीक़ा रखा है कि क़ातिल के वारिस क़त्ल होने वाले व्यक्ति के माता-पिता को एक विशेष राशि बतौर ख़ून की क़ीमत देकर उन्हें राज़ी कर लें और वे क़ातिल को माफ़ कर दें। इस स्थिति में क़त्ल होने वाले व्यक्ति के बूढ़े माता-पिता को उदाहरण के तौर पर 10 हज़ार रुपये की राशि मिल जाएगी और वे इस राशि से अपने जीवनयापन का प्रबंध कर सकेंगे— विशिष्ट परिस्थितियों में राज्य को भी यह अधिकार है

कि वह अर्थदंड की राशि में वृद्धि कर दे, ताकि असहाय उत्तराधिकारी किसी घाटे में न रहें।

यह एक अति युक्तिसंगत क़ानून है और इसका अनुभव यह बताता है कि यह जहाँ लागू हुआ, वहाँ क़त्ल का ख़ात्मा हो गया। इसके विपरीत जिन देशों में मृत्युदंड निरस्त किया गया, वहाँ अपराध घटने के बजाय और बढ़ गए। आँकड़ों से मालूम हुआ है कि ऐसे देशों में क़त्ल की वारदातों में 12 प्रतिशत तक की वृद्धि हो गई है। अतः इसके भी उदाहरण मौजूद हैं कि पहले मृत्युदंड को निरस्त किया गया और उसके बाद परिणाम देखकर दोबारा उसे बदल दिया गया। श्रीलंका असेंबली ने सन् 1956 में एक क़ानून पास किया, जिसके अनुसार श्रीलंका की सीमा में मृत्युदंड समाप्त कर दिया गया। इस क़ानून के लागू होने के बाद श्रीलंका में अपराधों में तेज़ी से वृद्धि होना आरंभ हो गई। प्रारंभ में लोगों को होश नहीं आया, मगर 26 सितंबर, 1959 को जब एक व्यक्ति ने श्रीलंका के प्रधानमंत्री बिंद्रा नाइक के मकान में घुसकर बड़ी निर्ममता से उन्हें क़त्ल कर दिया तो श्रीलंका के क़ानून बनाने वालों की आँख खुली और प्रधानमंत्री के अंतिम संस्कार के तुरंत बाद श्रीलंका असेंबली की एक बड़ी सभा हुई, जिसमें 4 घंटे के तर्क-वितर्क के बाद यह घोषणा की गई कि श्रीलंका की सरकार सन् 1956 के क़ानून को रद्द करके मृत्युदंड को दोबारा जारी करने का फ़ैसला करती है।

अर्थव्यवस्था

धर्म जीविका की जो व्यवस्था करता है, उसमें पैदावार के माध्यमों पर व्यक्तिगत स्वामित्व को माना गया है, बल्कि इसका सारा ढाँचा बुनियादी रूप से व्यक्तिगत स्वामित्व पर स्थापित है। यह

व्यवस्था लंबे समय तक बाक़ी रही, (व्यक्तिगत स्वामित्व की जो व्यवस्था सारी दुनिया में जारी हुई, वह वास्तव में धर्म ही के प्रभाव का नतीजा था और इसीलिए मार्क्स और उसके अनुसरणकर्ताओं ने धर्म का कड़ा विरोध किया, क्योंकि इसके बग़ैर वह व्यक्तिगत संपत्ति के महत्व को दिमाग़ों से निकाल नहीं सकते थे) लेकिन औद्योगिक क्रांति के बाद यूरोप में व्यक्तिगत स्वामित्व के नियम पर ज़बरदस्त आलोचनाएँ शुरू हुईं, यहाँ तक कि शिक्षित वर्ग का सामान्य माहौल इसके विरुद्ध हो गया। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के बीच 100 वर्ष तक ऐसा माहौल रहा मानो व्यक्तिगत स्वामित्व एक आपराधिक क़ानून था, जो त्रासकाल में इंसानों के बीच लागू हो गया और अब आधुनिक ज्ञानात्मक प्रगति ने सामूहिक स्वामित्व का नियम खोज लिया है, जो अर्थव्यवस्था के उत्तम प्रबंधन के लिए उच्चतर नियम है।

इसके बाद इतिहास में पहली बार सामूहिक स्वामित्व की व्यवस्था का परीक्षण शुरू हुआ। धरती के एक बड़े हिस्से में इसे लागू किया गया। इसके बड़े-बड़े दावे किए गए, बड़ी-बड़ी उम्मीदें बाँधी गईं, लेकिन लंबे अनुभव से साबित हो गया कि सामूहिक स्वामित्व की व्यवस्था न सिर्फ़ अप्राकृतिक होने के कारण अपने स्थापन के लिए हिंसा उत्पन्न करता है, न सिर्फ़ यह कि वह इंसान की एकता की तरक़्क़ी में बाधक है, न सिर्फ़ यह कि पूँजीवाद से भी अधिक एक केंद्रीभूत दमनकारी व्यवस्था का कारण है, बल्कि स्वयं वह कृषि और औद्योगिक पैदावार भी इसमें, स्वामित्व वाली व्यवस्था के मुक़ाबले में, कम प्राप्त होती है जिसके लिए आज़ादी और व्यापक प्रगति का बलिदान दिया गया था।

यहाँ मैं रूस का उदाहरण देना चाहूँगा। रूस की सारी ज़मीनें इस समय सरकारी संपत्ति में परिवर्तित की जा चुकी हैं और पूरे देश में

‘सामूहिक व्यवस्था’ के तहत खेती की जाती है। सारी ज़मीनें सरकारी और पंचायती फ़ार्म के रूप में हैं, न कि निजी स्वामित्व के रूप में; लेकिन सन् 1935 के फ़ैसले के अनुसार हर किसान को यह हक़ दिया गया है कि वह अपने रिहायशी मकान के पास अपने निजी इस्तेमाल के लिए एक-तिहाई या आधा एकड़ और कुछ विशिष्ट स्थिति में दो एकड़ ज़मीन पर क़ब्ज़ा रख सकता है। इसी प्रकार उसे यह भी हक़ है कि अपने निवास में सीमित संख्या में गाय, भेड़, बकरी, मुर्ग़ी आदि पाले। सन् 1961 के आँकड़ों के अनुसार, रूस में खेती का कुल क्षेत्रफल 204 मिलियन हेक्टेयर था, जिसमें निजी क्षेत्रफल का सामूहिक परिमाण 6 मिलियन हेक्टेयर था यानी खेती की ज़मीन का सिर्फ़ 3 प्रतिशत भाग, सन् 1961 में आलू की पैदावार का जो अनुपात था वह 11 टन प्रति हेक्टेयर था, जबकि सरकारी फ़ार्मों में यह मात्रा सिर्फ़ 7 टन प्रति हेक्टेयर थी। हालाँकि सरकारी फ़ार्मों को आधुनिक कृषि मशीनों, उपयुक्त ज़मीन और खनिज खाद आदि की सुविधाएँ प्राप्त थीं, जिनसे निजी क्षेत्र प्राकृतिक रूप से वंचित थे। इसी प्रकार का अनुपात दूसरी जिंसों की पैदावार में भी पाया जाता है।

मवेशियों की हालत इससे भी अधिक ख़राब है। चारे की कमी और ख़राब देखभाल के कारण सरकारी फ़ार्मों में अधिकता से जानवर मर जाते हैं, अतः सिर्फ़ एक राज्य में सन् 1962 के 11 महीनों में सामूहिक रूप से लगभग 1,70,000 मवेशी मर गए। इसके मुक़ाबले में हर प्रकार की कठिनाइयों के बाद भी निजी रूप से पाले हुए मवेशियों की संख्या बढ़ रही है। अनुपात की दृष्टि से वह सरकारी जानवरों से अधिक लाभकारी साबित हो रहे हैं और अधिक पैदावार दे रहे हैं। अतः सरकारी फ़ार्म जो कुल संख्या का 75 प्रतिशत मुर्ग़ियों और मवेशियों के मालिक हैं, उन्होंने निजी माध्यमों के मुक़ाबले में सिर्फ़ 10 प्रतिशत अधिक मांस उपलब्ध किया और अंडे में तो निजी पैदावार ने उन्हें बहुत पीछे छोड़ दिया।

यहाँ तक कि यह सीमित निजी माध्यम स्वयं सरकारी केंद्रों को आहारीय वस्तुएँ सप्लाई करते हैं। अतः सन् 1962 में सिर्फ़ एक राज्य में सरकार ने अपने कार्यालयों का 26 प्रतिशत आलू और 34 प्रतिशत अंडा निजी फ़ार्मों से प्राप्त किया है और इसी प्रकार दूसरी चीज़ें।

(Bulletin, Germany; November, 1963)

इस सामूहिक स्वामित्व का अंतिम अंजाम यह है कि रूस जो 'ज़ार' के समय में, जबकि वहाँ निजी संपत्ति की व्यवस्था प्रचलित थी, अनाज के मामले में दुनिया के कुछ बड़े निर्यातक देशों में से था। इसने सन् 1963 में कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका से 15 मिलियन टन गेहूँ ख़रीदा है और यह स्थिति निरंतर जारी है। अतः 1941-56 में इसने अमेरिका से 12 लाख 50 हज़ार टन ग़ल्ला खरीदा। इसी प्रकार बाद के वर्षों में भी यही हाल दूसरे कम्युनिस्ट देश चीन का भी है।

(Bulletin; October 1963)

इस अनुभव से मालूम हुआ कि धर्म का क़ानून जिस ज़ेहन से निकला है, वह इंसानी प्रकृति को अधिक जानने वाला है और उसकी समस्याओं को अधिक गहराई के साथ समझता है।

हक़ीक़त यह है कि वह सब कुछ जो संस्कृति के निर्माण के लिए हमें चाहिए है, उसका अकेला और वास्तविक उत्तर सिर्फ़ धर्म के पास है। धर्म हमें वास्तविक क़ानून का निर्माण करने वाले की ओर मार्गदर्शन करता है। वह क़ानून का बहुत ही उपयुक्त आधार उपलब्ध कराता है। वह जीवन के हर मामले में उचित बुनियाद देता है, जिसके प्रकाश में हम जीवन का पूरा नक़्शा बना सकें। वह शासक और पराधीन के बीच क़ानूनी बराबरी पैदा करने की एकमात्र स्थिति है। क़ानून के लिए वह मानसिक बुनियाद उपलब्ध कराता है, जिसकी

अनुपस्थिति में क़ानून व्यावहारिक रूप से बेकार हो जाता है। वह सोसाइटी के अंदर वह अनुकूल वातावरण उत्पन्न करता है, जो किसी क़ानून को लागू करने के लिए आवश्यक है। इस प्रकार धर्म हमें वह सब कुछ देता है, जिसकी हमें अपनी संस्कृति के निर्माण के लिए आवश्यकता है, जबकि अधार्मिकता इनमें से कुछ भी नहीं देती और न वास्तव में दे सकती है।

जिस जीवन की हमें तलाश है

फ्रेडरिक एंगेल्स ने कहा है— "आदमी को सबसे पहले तन ढकने को कपड़ा और पेट भरने को रोटी चाहिए। इसके बाद ही वह फ़लसफ़ा और सियासत की समस्याओं पर ग़ौर कर सकता है," मगर हक़ीक़त यह है कि इंसान सबसे पहले जिस प्रश्न का उत्तर मालूम करना चाहता है, वह यह प्रश्न है कि "मैं क्या हूँ? यह सृष्टि क्या है? मेरा जीवन कैसे आरंभ हुआ और कहाँ जाकर समाप्त होगा?" यह इंसानी प्रकृति के बुनियादी प्रश्न हैं। आदमी एक ऐसी दुनिया में आँख खोलता है, जहाँ सब कुछ है, लेकिन यही एक चीज़ नहीं। सूरज इसे प्रकाश और गर्मी पहुँचाता है, लेकिन वह नहीं जानता कि वह क्या है और क्यों इंसान की सेवा में लगा हुआ है। हवा इसे जीवन प्रदान करती है, लेकिन इंसान के वश में नहीं है कि वह उसे पकड़कर पूछ सके कि तुम कौन हो और क्यों ऐसा करती हो। वह अपने अस्तित्व को देखता है और नहीं जानता कि मैं क्या हूँ और किसलिए इस दुनिया में आ गया हूँ। इन सब प्रश्नों का उत्तर नियुक्त करने से इसकी बुद्धि मजबूर है, मगर इंसान हर हाल में इन्हें मालूम करना चाहता है। यह प्रश्न चाहे शब्दों के रूप में नियुक्त होकर हर व्यक्ति की ज़ुबान पर न आएँ, मगर ये इंसान की आत्मा को बेचैन रखते हैं और कभी-कभी इस प्रचंडता से उभरते हैं कि आदमी को पागल बना देते हैं।

एंगेल्स को दुनिया एक नास्तिक इंसान की हैसियत से जानती है, लेकिन उसकी नास्तिकता उसके ग़लत माहौल की प्रतिक्रिया थी, जो

बहुत बाद में उसके जीवन में प्रकट हुई। उसका प्रारंभिक जीवन धार्मिक माहौल में गुज़रा, मगर जब वह बड़ा हुआ और नज़र में गहराई पैदा हुई तो परंपरागत धर्म से असंतोष पैदा हो गया। अपने उस दौर का हाल वह अपने मित्र को पत्र में इस प्रकार लिखता है—

"मैं हर दिन प्रार्थना करता हूँ और सारा दिन यही प्रार्थना करता रहता हूँ कि मुझ पर सत्य खुल जाए। जब से मेरे दिल में संदेह उत्पन्न हुए हैं, यही प्रार्थना करना मेरा काम है। मैं तुम्हारी आस्था को स्वीकार नहीं कर सकता। मैं यह पंक्तियाँ लिख रहा हूँ और मेरा दिल आँसुओं से उमड़ रहा है और मेरी आँखें रो रही हैं, लेकिन मुझे यह प्रतीत हो रहा है कि मैं ईश्वर के दरबार से निकाला हुआ नहीं हूँ। मुझे उम्मीद है कि मैं ईश्वर तक पहुँच जाऊँगा, जिसके दर्शन का मैं दिलोजान से अभिलाषी हूँ और मुझे अपनी जान की क़सम! यह मेरी तलाश और इश्क़ क्या है, यह पवित्र आत्मा की झलक है। अगर पवित्र बाइबल 10 हज़ार बार भी इसका खंडन करे तो मैं नहीं मान सकता।"

यह वही सत्य की खोज की प्राकृतिक भावना है, जो नौजवान एंगेल्स में उभरी थी, मगर उसे संतुष्टि न मिल सकी और प्रचलित मसीही धर्म से असंतुष्ट होकर वह आर्थिक और सियासी फ़लसफ़ों में गुम हो गया।

इस माँग की हक़ीक़त यह है कि इंसान की प्रकृति में एक रचयिता और एक स्वामी का बोध पैदाइशी रूप से जुड़ा हुआ है। वह इसके अचेतन का एक अनिवार्य अंश है। "ईश्वर मेरा रचयिता है और मैं उसका दास हूँ"— यह एक ख़ामोश वचन है, जो हर व्यक्ति पहले ही रोज़ से अपने साथ लेकर इस दुनिया में आता है। एक पैदा करने वाले स्वामी और उपकारी की कल्पना अगोचर (imperceptible) रूप से इसकी रगों में दौड़ती रहती है। इसके बग़ैर वह अपने अंदर बहुत बड़ा ख़ालीपन

महसूस करता है। उसकी आत्मा अंदर से ज़ोर देती है कि जिस स्वामी को उसने नहीं देखा, उसे पा ले, उससे लिपट जाए और अपना सब कुछ उसके हवाले कर दे।

ईश्वर की पहचान मानो इस भावना के शरण-स्थल को पा लेना है और जो लोग ईश्वर को नहीं पाते, उनकी भावनाएँ दूसरी किसी कृत्रिम चीज़ की ओर प्रवृत्त हो जाती हैं। हर व्यक्ति अपने अंदर यह इच्छा रखने पर विवश है कि कोई हो, जिसके आगे वह अपनी बेहतरीन भावनाओं को भेंट कर दे। 15 अगस्त, 1947 को जब भारत की सरकारी इमारतों से यूनियन जैक उतारकर देश का राष्ट्रीय झंडा लहराया गया तो यह दृश्य देखकर राष्ट्रवादियों की आँखों में आँसू आ गए, जो अपने देश को आज़ाद देखने के लिए तड़प रहे थे। यह आँसू वास्तव में आज़ादी की देवी के साथ उनके संबंध का प्रकटीकरण था— यह अपने पूज्य को पा लेने की ख़ुशी थी, जिसके लिए उन्होंने अपनी आयु का बेहतरीन हिस्सा लगा दिया था। इसी प्रकार एक लीडर जब 'राष्ट्रपिता' की समाधि पर फूल चढ़ाता है और उसके आगे सिर झुकाकर खड़ा हो जाता है तो वह ठीक उसी काम को दोहराता है, जो एक धार्मिक आदमी अपने पूज्य के लिए रुकू व सजदा* के नाम से करता है। एक कम्युनिस्ट जब लेनिन की प्रतिमा के पास से गुज़रते हुए अपना हैट उतारता है और उसके क़दमों की रफ़्तार सुस्त पड़ जाती है तो उस समय वह अपने पूज्य की सेवा में अपनी आस्था व भावनाएँ भेंट कर रहा होता है। इसी प्रकार हर व्यक्ति मजबूर है कि किसी-न-किसी चीज़ को अपना पूज्य बनाए और अपनी भावनाओं की बलि उसके आगे पेश करे।, मगर ईश्वर के अतिरिक्त जिन-जिन रूपों में आदमी अपनी भेंट पेश करता है, वह सब शिर्क

* नमाज़ पढ़ने के दौरान झुकने की अवस्था को रुकू कहते हैं और सम्मान व समर्पण के साथ माथा टेकने को सजदा कहते हैं।

यानी ईश्वर की सत्ता में साझेदारी मानने के रूप हैं और 'शिर्क सबसे बड़ा ज़ुल्म है'। ज़ुल्म का अर्थ है किसी चीज़ को उसकी असल जगह के बजाय दूसरी जगह रख देना। जैसे डिब्बे के ढक्कन से आप टोपी का काम लेना चाहें तो यह ज़ुल्म होगा मानो आदमी अपने मानसिक ख़ालीपन को भरने के लिए ईश्वर को छोड़कर किसी और तरफ़ लपकता है। जब वह ईश्वर के सिवा किसी और को अपने जीवन का सहारा बनाता है तो वह अपने असल स्थान को छोड़ देता है, वह एक सही भावना का ग़लत इस्तेमाल करता है।

यह भावना चूँकि एक प्राकृतिक भावना है, इसलिए वह प्रारंभ में हमेशा प्राकृतिक रूप में उभरती है। इसका पहला रुख़ अपने असली पूज्य की ओर होता है, लेकिन परिस्थितियाँ और वातावरण की ख़राबियाँ इसे ग़लत दिशा में मोड़ देती हैं और कुछ दिनों के बाद जब आदमी एक विशिष्ट जीवन की ओर प्रवृत्त हो जाता है तो उसे इसमें आनंद मिलने लगता है। बर्ट्रेंड रसेल अपने बचपन में एक कट्टर धार्मिक व्यक्ति था। वह नियमित पूजा करता था। उसी दौरान एक रोज़ उसके दादा जी ने पूछा, "तुम्हारी पसंदीदा दुआ कौन-सी है?" छोटे रसेल ने उत्तर दिया, "मैं जीवन से तंग आ गया हूँ और अपने पापों के बोझ से दबा हुआ हूँ।" उस ज़माने में ईश्वर बर्ट्रेंड रसेल का पूज्य था, लेकिन जब रसेल 13 वर्ष की आयु को पहुँचा तो उसकी इबादत छूट गई और धार्मिक परंपराओं और पुराने मूल्यों से विद्रोही वातावरण के अंदर रहने के कारण स्वयं उसके अंदर भी इन चीज़ों से विद्रोह के रुझान उभरने लगे और फिर बर्ट्रेंड रसेल एक अनीश्वरवादी इंसान बन जाता है, जिसकी प्रियतम चीज़ें गणित और दर्शनशास्त्र हैं। सन् 1959 की घटना है। बी०बी०सी० लंदन पर एक वार्ता कार्यक्रम में फ्रीमेन ने रसेल से पूछा, "क्या आपने सामूहिक रूप से गणित और दर्शनशास्त्र

की रुचि को धार्मिक भावनाओं का अच्छा बदल पाया है?" रसेल ने उत्तर दिया, "जी हाँ, निश्चय ही मैं 40 वर्ष की आयु तक इस संतोष से आलिंगनबद्ध हो गया था, जिसके संबंध में अफ़लातून (Plato) ने कहा है कि आप गणित से प्राप्त कर सकते हैं— यह एक अनादि संसार था। समय की क़ैद से आज़ाद संसार। मुझे यहाँ धर्म से मिलता-जुलता एक सुकून नसीब हो गया।"

ब्रिटेन के इस महान चिंतक ने ईश्वर को अपना पूज्य बनाने से इनकार कर दिया, लेकिन पूज्य की ज़रूरत से वह फिर भी निस्पृह न रह सका और जिस मुक़ाम पर पहले उसने ईश्वर को बिठा रखा था, वहाँ गणित और दर्शनशास्त्र को बिठाना पड़ा और सिर्फ़ यही नहीं, बल्कि गणित और दर्शनशास्त्र के लिए वह गुण भी स्वीकार करने पड़े, जो सिर्फ़ ईश्वर के ही गुण हो सकते हैं— अनंत काल और समय की क़ैद से आज़ाद, चूँकि इसके बग़ैर उसे धर्म से मिलता-जुलता सुकून नहीं मिल सकता था, जो वास्तव में उसकी प्रकृति तलाश कर रही थी।

"नेहरू झुक गए"— अगर यह ख़बर किसी दिन अख़बार में छपे तो किसी को विश्वास नहीं होगा कि यह एक सच्चाई है, लेकिन हिंदुस्तान टाइम्स, दिल्ली के 3 अक्तूबर, 1963 के संस्करण के अंतिम पृष्ठ पर प्रकाशित चित्र इस बात की पुष्टि कर रहा है। इस चित्र में नज़र आ रहा है कि भारत के प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू दोनों जाँघों पर और हाथ जोड़कर आगे की तरफ़ (रुकू की तरह) झुके हुए हैं। यह गांधी जयंती के अवसर का चित्र है और नेहरू राजघाट पर गांधी जी की समाधि पर राष्ट्रपिता को श्रद्धांजलि पेश कर रहे हैं।

इस प्रकार की घटनाएँ हर वर्ष और हर दिन सारी दुनिया में होती हैं। ऐसे लाखों लोग हैं, जो खुदा को नहीं मानते और इबादत को निर्थरक समझते हैं। वे अपने ख़ुद बनाए हुए बुतों के आगे झुककर

अपनी भीतरी भक्ति-भावना को संतुष्ट करते हैं। 'पूज्य' इंसान की एक स्वाभाविक आवश्यकता है और यही इसका सबूत है कि वह वास्तविक है। इंसान अगर ईश्वर के सामने न झुके तो उसे दूसरों को पूज्य मानकर झुकना पड़ेगा, क्योंकि 'पूज्य' के बग़ैर उसकी प्रकृति अपने ख़ालीपन को भर नहीं सकती।

मगर बात सिर्फ़ इतनी नहीं है, इससे आगे बढ़कर मैं कहता हूँ कि जो लोग ईश्वर के सिवा किसी और को अपने पूज्य बनाते हैं, वे ठीक उसी प्रकार असल शांति से वंचित रहते हैं, जैसे कोई बग़ैर बच्चे की माँ प्लास्टिक की गुड़िया को ख़रीद कर बग़ल में दबा ले और इससे संतुष्टि प्राप्त करना चाहे। एक नास्तिक इंसान चाहे वह कितना ही सफल क्यों न हो, उसके जीवन में ऐसे क्षण आते हैं, जब वह सोचने पर विवश होता है कि सच्चाई इससे अलग कुछ और है, जो मैंने पाई है।

आज़ादी से 12 वर्ष पहले सन् 1935 में जब पंडित जवाहरलाल नेहरू ने जेल में अपनी आत्मकथा' पूरी की तो उसके अंत में उन्होंने लिखा—

"मैं महसूस करता हूँ कि मेरे जीवन का एक अध्याय समाप्त हो गया और अब इसका दूसरा अध्याय आरंभ होगा। इसमें क्या होगा, इसके बारे में कोई अनुमान नहीं कर सकता। जीवन की किताब के अगले पृष्ठ सीलबंद हैं।"

(Nehru, Autobiography; London; 1953; p.597)

नेहरू के जीवन के अगले पन्ने खुले तो मालूम हुआ कि वह दुनिया के सबसे बड़े देश के प्रधानमंत्री हैं और दुनिया की आबादी के छठे हिस्से पर किसी दूसरे के साझे के बग़ैर शासन कर रहे हैं, लेकिन इस प्राप्ति ने नेहरू को संतुष्ट नहीं किया और अपने अति चरम के काल में भी वह महसूस करते रहे कि जीवन की किताब के अभी कुछ और पन्ने

हैं, जो अभी तक बंद हैं और वही प्रश्न आख़िरी उम्र में भी उनके ज़ेहन में घूमता रहा, जिसे लेकर हर इंसान पहले रोज़ पैदा होता है। जनवरी, 1964 के प्रथम सप्ताह में प्राच्यवेत्ताओं यानी ग़ैर-एशियाई विद्याविदों की अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस नई दिल्ली में हुई, जिसमें हिंदुस्तान और दूसरे देशों के 1200 डेलीगेट शामिल हुए। पंडित नेहरू ने इस अवसर पर भाषण देते हुए कहा—

“मैं एक राजनीतिज्ञ हूँ और मुझे सोचने के लिए कम समय मिलता है। फिर भी बहुत से समय मैं यह सोचने पर मजबूर हो जाता हूँ कि आख़िर यह दुनिया क्या है? किसलिए है? हम क्या हैं और हम क्या कर रहे हैं? मेरा विश्वास है कि कुछ शक्तियाँ हैं, जो हमारी तक़दीर बनाती हैं।” (National Herald; 6 January, 1964)

यह एक असंतोष है, जो उन सभी लोगों की आत्माओं पर गहरे कोहरे की तरह छाया रहता है, जिन्होंने ईश्वर को अपना पूज्य बनाने से इनकार किया। संसार की तल्लीनताओं और सामयिक अभिरुचियों में अस्थायी रूप से कभी ऐसा महसूस होता है कि वे संतोष से आलिंगनबद्ध हैं, लेकिन जहाँ यह कृत्रिम वातावरण समाप्त हुआ, वास्तविकता अंदर से ज़ोर डालना आरंभ कर देती है और उन्हें याद दिलाती है कि वे सच्चे संतोष से वंचित हैं।

ईश्वर से वंचित हृदय की यह स्थिति सिर्फ़ एक सांसारिक असंतोष का मामला नहीं है, बल्कि वह इससे बहुत अधिक अहम है। यह कुछ दिनों का मामला नहीं है, बल्कि अनंत का मामला है। यह वास्तव में उस अंधकारमय और असहाय जीवन के लक्षण हैं, जिसके किनारे वह खड़ा हुआ है। यह उस डरावने जीवन की प्रारंभिक घुटन है, जिसमें ऐसे हर आदमी को मौत के बाद दाख़िल होना है और उस ख़तरे का अग्रिम अलार्म है, जिसमें उसकी आत्मा को अंततः

ग्रस्त होना है। संक्षेप में यह कि वह उस जहन्नुम का धुआँ है, जो हर इनकार करने वाले और ईश्वरीय शक्ति में साझेदारी करने वालों यानी बहुदेववाद में विश्वास करने वालों के लिए तैयार की गई है। घर में आग लग जाए तो उसका धुआँ सोते हुए आदमी के दिमाग़ में घुसकर उसे आने वाले ख़तरे से अवगत कराता है। अगर वह धुएँ की घुटन से जाग गया तो अपने आपको बचा लेगा, लेकिन जब शोले क़रीब आ जाएँ तो वह चेतावनी का समय नहीं होता, बल्कि वह विनाश का फ़ैसला होता है, जो उसे चारों ओर से घेर लेता है। इसका मतलब यह होता है कि तुम्हारी संवेदनहीनता और अनभिज्ञता ने तुम्हारे लिए मुक़द्दर कर दिया है कि तुम आग में जलो।

क्या कोई है, जो समय से पहले जाग जाए, क्योंकि जागना वही है, जो समय से पहले हो, समय पर जागने का कोई लाभ नहीं।

मैकगिल यूनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर माइकल ब्रेचर ने पंडित जवाहरलाल नेहरू की राजनीतिक जीवनी लिखी है। इस सिलसिले में लेखक ने पंडित नेहरू से भेंट भी की थी। नई दिल्ली की एक भेंट में 13 जून, 1956 को उन्होंने पंडित नेहरू से प्रश्न किया—

"आप संक्षिप्त रूप से मुझे बताएँ कि आपके निकट एक अच्छे समाज के लिए क्या चीज़ें ज़रूरी हैं और आपका बुनियादी फ़लसफ़ा क्या है?"

हिंदुस्तान के पूर्व प्रधानमंत्री ने उत्तर दिया—

"मैं कुछ कसौटियों को स्वीकार करता हूँ। आप उन्हें नैतिक कसौटी कह लीजिए। ये कसौटियाँ हर व्यक्ति और समाज के लिए ज़रूरी हैं। अगर वह बाक़ी न रहें तो संपूर्ण भौतिक प्रगति के बाद भी आप किसी फ़ायदेमंद नतीजे तक नहीं पहुँच सकते। इन कसौटियों को कैसे स्थापित रखा जाए, मुझे नहीं मालूम। एक तो धार्मिक दृष्टि-बिंदु है,

लेकिन यह अपनी समस्त रस्मों और तरीक़ों के साथ मुझे संकीर्ण नज़र आता है। मैं नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों को धर्म से अलग रखकर बड़ा महत्व देता हूँ, लेकिन मैं नहीं जानता कि इन्हें आधुनिक जीवन में किस प्रकार स्थापित रखा जा सकता है। यह एक समस्या है।"

(Nehru: A Political Biography, London; 1959; p.607-8)

यह प्रश्न और उत्तर आधुनिक इंसान के उस दूसरे ख़ालीपन को बताते हैं, जिनमें वह आज शिद्दत से गिरफ़्तार है। लोगों को ईमानदारी और नैतिकता की एक विशेष कसौटी पर बाक़ी रखना हर सामाजिक गिरोह की एक अनिवार्य आवश्यकता है। इसके बग़ैर संस्कृति की व्यवस्था सही रूप से स्थिर नहीं रह सकती, मगर ईश्वर को छोड़ने के बाद इंसान को नहीं मालूम कि वह इस आवश्यकता को कैसे पूरा करे। सैकड़ों वर्षों के अनुभव के बाद वह अभी यथावत तलाश के चरण में है। जनता और शासक के बीच अच्छे संबंध पैदा करने के लिए 'शिष्टाचार सप्ताह' (courtesy week) मनाया जाता है, मगर जब इसके बाद भी सरकारी कर्मचारियों की अफ़सरी की मानसिकता समाप्त नहीं होती तो मालूम होता है कि इस उद्देश्य के लिए 'नैतिकता' का हवाला देना पर्याप्त नहीं है। बे-टिकट यात्रियों की बढ़ती हुई संख्या को रोकने के लिए सभी स्टेशनों पर बड़े-बड़े पोस्टर लगाए जाते हैं— "बिना टिकट यात्रा करना सामाजिक बुराई है", मगर इसके बाद भी बे-टिकट यात्रा समाप्त नहीं होती तो यह साबित हो जाता है कि 'सामाजिक बुराई' का शब्द वह अहसास पैदा नहीं कर सकता, जो व्यवस्था से जुड़े रहने के प्रतिपालन के लिए प्रेरक बन सके। प्रैस के द्वारा प्रोपेगंडा किया जाता है कि अपराध का अंजाम अच्छा नहीं होता, मगर अपराधों की बढ़ती हुई रफ़्तार बताती है कि सांसारिक हानि की आशंका में इतनी शक्ति नहीं है कि आदमी को अपराध से रोक सके। सभी कार्यालयों की दीवारें विभिन्न भाषाओं के इन शब्दों से रंगीन कर दी जाती हैं— "रिश्वत लेना

और देना पाप है," मगर जब एक व्यक्ति देखता है कि हर विभाग में ठीक इन्हीं शब्दों के नीचे रिश्वत का कारोबार पूरे ज़ोर-शोर से जारी है तो वह स्वीकार करने पर मजबूर होता है कि इस प्रकार के सरकारी प्रोपेगंडे रिश्वत रोकने में किसी भी तरह से फ़ायदेमंद नहीं हैं। रेल के सभी डिब्बों में इस विषय की पट्टियाँ लगाई जाती हैं— "रेलवे राष्ट्र की संपत्ति है, इसका नुक़सान पूरे देश का नुक़सान है"— मगर इसके बाद भी जब लोग खिड़कियों के शीशे तोड़ डालते हैं और बिजली के बल्ब ग़ायब कर देते हैं तो यह इस बात का सबूत होता है कि 'राष्ट्र' के फ़ायदे में इतना ज़ोर नहीं है कि इसके कारण एक व्यक्ति अपने निजी फ़ायदे की क़ुरबानी दे दे। "सामूहिक माध्यमों को निजी स्वार्थ के लिए इस्तेमाल करना देश व क़ौम से ग़द्दारी है"— एक ओर लीडरों और हुक्मरानों की ज़ुबान से यह घोषणा हो रही है, दूसरी ओर बड़ी-बड़ी राष्ट्रीय योजनाएँ इसलिए असफल हो रही हैं कि पूँजी का बड़ा भाग असल योजना पर लगने के बजाय संबंधित कर्मचारियों की सुपुर्दगी में चला जाता है। इसी प्रकार संपूर्ण राष्ट्रीय जीवन कड़े प्रयासों के बाद भी उन मानदंडों से वंचित हो गया, जो राष्ट्र के निर्माण के लिए आवश्यक हैं और इन मानदंडों को पैदा करने के लिए जितने संसाधन इस्तेमाल किए गए, वे पूर्णतया असफल साबित हुए।

यह लक्षण इस बात का प्रमाण है कि अनीश्वरवादी सभ्यता ने मानवता की गाड़ी कैसे दलदल में लाकर डाल दी है। इसे उस पटरी से वंचित कर दिया है, जिसके ऊपर चलकर वह अपनी यात्रा भली-भाँति तय कर सकती है। जीवन की नाव बग़ैर लंगर और बग़ैर बादबान (पाल) के हो गई है। इसका अकेला हल यह है कि इंसान ईश्वर की तरफ़ पलटे, वह जीवन के लिए धर्म के महत्व को स्वीकार करे। यही वह अकेला आधार है, जिस पर जीवन का निर्माण संभव है। इसके सिवा किसी भी दूसरे आधार पर जीवन का निर्माण नहीं किया जा सकता।

भारत में अमेरिका के पूर्व राजदूत मिस्टर चेस्टर बाउल्ज़ लिखते हैं—

"विकासशील देश औद्योगिक प्रगति प्राप्त करने के सिलसिले में दो प्रकार की समस्याओं से दो-चार हैं और दोनों बहुत ही जटिल हैं। एक यह कि पूँजी, कच्चा माल और कलात्मक दक्षता जो इन्हें हासिल हैं, उन्हें किस प्रकार अधिक बेहतर तौर पर इस्तेमाल करें। दूसरी जटिल समस्या वह है, जिसका संबंध जनता और संस्था से है। उद्योग को तेज़ी से आगे बढ़ाने के साथ-साथ हमें यह विश्वसनीयता भी हासिल करनी है कि वह जितनी ख़राबियों को दूर करे, उससे अधिक ख़राबियाँ पैदा न कर दे। महात्मा गांधी के शब्दों में, 'वैज्ञानिक जानकारियाँ और खोजें मात्र लोभ को बढ़ाने का औज़ार साबित हो सकती हैं, जबकि असल क़ाबिल-ए-लिहाज़ चीज़ ख़ुद इंसान है'।"

(The Making of a Society; Delhi; 1963; p.68-69)

बाउल्ज़ के शब्दों में, जनता मानो वह माहौल है, जिसके अंदर विकास संबंधी प्रोग्राम जारी होते हैं। प्रगति के ज़रूरी सामान, जैसे— पूँजी और कलात्मक कौशलता आदि सांस्कृतिक और राजनीतिक ख़ालीपन को भरने में प्रभावकारी साबित नहीं हो सकते। (p.31)

यह रिक्तता यानी ख़ालीपन कैसे भरा जाए और वह वातावरण कैसे बने, जिसमें जनता और सरकारी कर्मचारी ईमानदारी और एकजुटता के साथ विकास संबंधी कार्यों में अपने आपको लगाएँ? इस प्रश्न का कोई उत्तर आधुनिक चिंतकों के पास नहीं है और हक़ीक़त यह है कि यह काम अनीश्वरवादी सभ्यता के वातावरण में नहीं हो सकता। अनीश्वरवादी सभ्यता के भीतर हर विकास संबंधी योजना एक ज़बरदस्त टकराव का शिकार होती है और वह यह कि इसका निजी सिद्धांत इसकी सामाजिक कल्पना से टकराता है। इसका

सामूहिक प्रोग्राम यह है कि एक शांतिपूर्ण और संपन्न समाज का निर्माण किया जाए, मगर इसी के साथ इसके विचारक जब यह कहते हैं— "इंसान का उद्देश्य भौतिक ख़ुशी प्राप्त करना है" तो वे अपनी पहली बात का खंडन कर देते हैं। वे पूरे समाज को जैसा देखना चाहते हैं, समाज के लोगों को उसके विरुद्ध बना रहे हैं। यही कारण है कि इस प्रकार की किसी योजना को अब तक अपने उद्देश्य में असल सफलता प्राप्त नहीं हुई, सभी भौतिक दर्शन जीवन की उचित व्यवस्था बनाने में असफल साबित हुए हैं।

भौतिक प्रसन्नता को जीवन का उद्देश्य बनाने का अर्थ यह है कि हर व्यक्ति अपनी-अपनी इच्छा पूरी करना चाहे, लेकिन इस सीमित संसार में यह संभव नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे को प्रभावित किए बिना एक समान रूप से अपनी-अपनी इच्छा पूरी कर सके। नतीजा यह है कि एक व्यक्ति जब अपनी सभी इच्छाएँ पूरी करना चाहता है तो वह दूसरों के लिए मुसीबत बन जाता है। व्यक्ति की ख़ुशी समाज की ख़ुशी को छिन्न-भिन्न कर देती है। एक सीमित आय वाला व्यक्ति जब देखता है कि उसकी अपनी आमदनी उसकी इच्छाओं की पूर्णता के लिए पर्याप्त नहीं हो रही है तो वह छीना-झपटी, बेईमानी, चोरी, रिश्वत और ग़बन के द्वारा अपनी आमदनी की कमी को पूरा करता है, मगर इस प्रकार जब वह अपनी इच्छाएँ पूरी कर लेता है तो वह समाज को उसी मोहताजी यानी आश्रितता में ग्रस्त कर देता है, जिसमें वह पहले स्वयं ग्रस्त था।

आधुनिक संसार एक विचित्र और अपरिचित प्रकार की बहुत ही भयानक मुसीबत में ग्रस्त है, जिसका इतिहास में कभी अनुभव नहीं हुआ था। यह बाल अपराध (juvenile delinquency) है, जो आधुनिक जीवन की एक सामग्री बन चुका है। यह बाल अपराधी कहाँ

से पैदा होते हैं, इनके जन्म का मूल स्रोत उसी भौतिक ख़ुशी को पूरा करना है। एक विवाहित जोड़ा कुछ दिनों साथ रहने के बाद एक-दूसरे से उकता जाते हैं और अपनी लैंगिक ख़ुशी के लिए आवश्यक समझते हैं कि नया शरीर व नया चेहरा तलाश करें। इस समय वे तलाक़ लेकर एक-दूसरे से अलग हो जाते हैं। इस अलगाव की क़ीमत समाज को कुछ ऐसे बच्चों के रूप में मिलती है, जो अपने माता-पिता के रहते हुए भी अनाथ हो गए हैं। ये बच्चे अपने माता-पिता से छूटने के बाद माहौल के अंदर अपना कोई स्थान नहीं पाते। एक तरफ़ वे बिल्कुल आज़ाद होते हैं और दूसरी तरफ़ माहौल से विमुख। यह स्थिति बहुत जल्द इन्हें अपराधों तक पहुँचा देती है। सर अल्फ्रेड डेनिंग ने बहुत सही लिखा है, "अक्सर तरुण और अवयस्क अपराधी उजड़े हुए घरानों (broken homes) से प्रकट होते हैं।" (The Changing Law, p.111)

इसी प्रकार वर्तमान जीवन में सारी ख़राबियों की जड़ सिर्फ़ यह घटना है कि आधुनिक संसार का अलग फ़लसफ़ा और इसके सामूहिक उद्देश्य एक-दूसरे से टकराते हैं। वह समस्त वारदात, जिन्हें हम नापसंद करते हैं और उन्हें अपराध, बुराई और भ्रष्टाचार कहते हैं, वह वास्तव में किसी व्यक्ति या पार्टी या समुदाय की अपनी भौतिक ख़ुशी प्राप्त करने का प्रयास ही होता है और इसी प्रयास का सामाजिक अंजाम हत्या, दुराचार, लड़ाई, अपहरण, जालसाज़ी, डाका, लूट-खसोट, जंग और इस प्रकार के दूसरी असंख्य रूपों में ज़ाहिर होता है।

इस अंतर्विरोध (contradiction) से पता चलता है कि जीवन का उद्देश्य इसके अतिरिक्त कुछ और नहीं हो सकता कि दुनिया की भौतिक चीज़ों के बजाय परलोक में ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्त करने को उद्देश्य बनाया जाए। यही वह उद्देश्य है, जो व्यक्ति और समाज को पारस्परिक टकराव से बचाकर अनुकूलता के साथ प्रगति के

मार्ग पर चलाता है— परलोक के सिद्धांत की यह विशिष्टता जहाँ यह साबित करती है कि वही वह अकेला आधार है, जो विकास संबंधी स्कीमों को उचित रूप से सफल कर सकता है। इसी के साथ वह यह भी साबित करता है कि वही वास्तविक उद्देश्य है, क्योंकि अवास्तविक चीज़ जीवन के लिए इतनी महत्वपूर्ण और इतनी सामंजस्यपूर्ण नहीं हो सकती।

मौजूदा ज़माने में औषधि विज्ञान और शल्य चिकित्सा (medical science and surgery) में आश्चर्यजनक प्रगति हुई है। यह विचार किया जाने लगा है कि विज्ञान मौत और बुढ़ापे के अतिरिक्त प्रत्येक शारीरिक कष्ट पर क़ाबू पा सकता है, मगर इसी के साथ रोग के प्रकार में अति तीव्रता के साथ एक नए नाम की वृद्धि हुई है— स्नायु रोग (nervous disease)। यह नर्वस डिसीज़ क्या हैं, यह वास्तव में इसी टकराव का एक व्यावहारिक प्रकटन है, जिसमें आधुनिक समाज प्रचंड रूप से ग्रस्त है। भौतिक सभ्यता ने इंसान के उस हिस्से को जो लवणों, खनिजों और गैसों का मिश्रण है, उन्नति देने का काफ़ी प्रयास किया, मगर इंसान का वह हिस्सा जो विवेक, इच्छा और इरादे पर आधारित है, इसके भोजन से इसे वंचित कर दिया। नतीजा यह हुआ कि पहला हिस्सा तो प्रत्यक्ष में स्वस्थ और अच्छा दिखाई देने लगा, मगर दूसरा हिस्सा जो असल इंसान है, वह भिन्न-भिन्न प्रकार के रोगों में ग्रस्त हो गया।

वर्तमान अमेरिका के बारे में वहाँ के ज़िम्मेदार माध्यमों का अनुमान है कि वहाँ के बड़े-बड़े शहरों में 80 प्रतिशत रोगी ऐसे हैं, जिनके रोग मूलतः मानसिक कारणों के तहत घटित होते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने इस सिलसिले में जो शोध किए हैं, उनसे पता चलता है कि इन रोगों के पैदा होने के प्रमुख कारण यह हैं— अपराध, नाराज़गी, शंका, परेशानी,

निराशा, दुविधा, संदेह, ईर्ष्या, स्वार्थता और उकताहट (boredom)। यह समस्त रोग अगर गहराई के साथ ग़ौर कीजिए तो अनिश्वरीय जीवन का नतीजा हैं। ईश्वर में श्रद्धा आदमी के अंदर वह विश्वास पैदा करती है, जो कठिनाइयों में उसके लिए सहारा बन सके। वह ऐसा उच्चतर उद्देश्य उसके सामने रख देती है, जिसके बाद वह छोटी-छोटी समस्याओं की अनदेखी करके उसकी ओर बढ़ सके। वह उसे ऐसा प्रेरक देती है, जिसके बारे में डॉक्टर सर विलियम ऑसलर ने कहा है, "वह एक महान प्रेरक शक्ति है, जिसे न किसी तराज़ू में तोला जा सकता है, न प्रयोगशाला में परीक्षण किया जा सकता है।" यही आस्था की शक्ति वास्तव में मानसिक सेहत का ख़ज़ाना है। जो मानसिकता इस मूल स्रोत से वंचित हो, वह 'रोगों' के अतिरिक्त किसी और अंजाम से सामना नहीं कर सकती। यह इंसान का दुर्भाग्य है कि समय के विशेषज्ञों ने मनोवैज्ञानिक या स्नायिक रोगों की खोज करने में तो कमाल दर्जे की बुद्धिमत्ता का सबूत दिया, लेकिन नए खोजे गए रोगों के सही उपचार की योजना में बुरी तरह असफल हुए हैं। एक ईसाई विद्वान के शब्दों में, "मनोरोग चिकित्सा के विशेषज्ञ सिर्फ़ उस ताले का बारीक विवरण बताने में अपने सभी प्रयास लगा रहे हैं, जो हमारे ऊपर स्वास्थ्य के दरवाज़े बंद करने वाला है।"

आधुनिक समाज एक ही समय में दो विपरीत व्यवहार कर रहा है। एक ओर वह भौतिक संसाधन एकत्र करने में पूरी शक्ति लगा रहा है। दूसरी ओर धर्म को छोड़कर वह हालात उत्पन्न कर रहा है, जिससे जीवन भिन्न-भिन्न कष्टों में ग्रस्त हो जाए। वह एक ओर दवा खिला रहा है और दूसरी ओर ज़हर का इंजेक्शन दे रहा है। यहाँ मैं एक अमेरिकी डॉक्टर पॉल अर्नेस्ट एडोल्फ़ का एक उद्धरण अनुकरण करना चाहूँगा, जो इस सिलसिले में एक दिलचस्प साक्ष्य उपलब्ध कराता है—

"जिन दिनों मैं मेडिकल स्कूल में शिक्षा ग्रहण कर रहा था, मैं उन परिवर्तनों से आगाह हुआ, जो घाव हो जाने की स्थिति में शरीर के ऊतकों (body tissues) में प्रकट होते हैं। सूक्ष्मदर्शी के द्वारा ऊतकों का अध्ययन करते हुए मैंने देखा कि ऊतकों पर विभिन्न अनुकूल प्रभावों के घटित होने से घाव का भरना तसल्लीबख़्श रूप से हो जाता है। इसके बाद जब शिक्षा समाप्त करके मैं प्रैक्टिकल चिकित्सा के पेशे में दाख़िल हुआ कि मुझे अपने ऊपर बड़ा भरोसा था कि मैं घाव और उसे ठीक करने के तरीक़े इस हद तक जानता हूँ कि मैं निश्चित रूप से अनुकूल परिणाम पैदा कर सकता हूँ, जबकि मैं इसके आवश्यक चिकित्सीय साधन अर्जित करके उसे प्रयोग में लाऊँ, लेकिन शीघ्र ही मेरे इस आत्मविश्वास को आघात पहुँचा। मुझे महसूस हुआ कि मैंने मेडिकल साइंस में एक ऐसी चीज़ को नज़रअंदाज़ कर दिया था, जो सबसे ज़्यादा अहम है— यानी ईश्वर।

"अस्पताल में जिन रोगियों की निगरानी मेरे सुपुर्द की गई, उनमें 70 वर्ष की एक वृद्ध महिला थी जिसका कूल्हा घायल हो गया था। एक्स-रे के परीक्षण से मालूम हुआ कि उसके ऊतक (tissues) बड़ी तेज़ी से ठीक हो रहे हैं। मैंने इस तेज़ी के साथ ठीक होने पर उसे बधाई पेश की। इंचार्ज सर्जन ने मुझे निर्देश दिया कि इस महिला को 24 घंटे में डिस्चार्ज कर दिया जाए, क्योंकि वह अब किसी सहारे के बग़ैर चलने-फिरने योग्य हो गई है।

रविवार का दिन था। उसकी बेटी साप्ताहिक मुलाक़ात के नियमानुसार उसे देखने आई। मैंने उससे कहा कि चूँकि इसकी माँ अब स्वस्थ हो चुकी है, इसलिए वह कल आकर उसे अस्पताल से घर ले जाए। लड़की इसके जवाब में कुछ नहीं बोली और सीधी अपनी माँ के पास चली गई। उसने अपनी माँ को बताया कि उसने

अपने पति से इस बारे में मशवरा किया है और यह तय हुआ है कि वह उसे अपने घर न ले जा सकेंगे। उसके लिए ज़्यादा बेहतर इंतज़ार की स्थिति यह है कि उसे किसी वृद्धाश्रम (old people's home) में पहुँचा दिया जाए।

कुछ घंटों के बाद जब मैं उस वृद्धा के पास गया तो मैंने देखा कि बड़ी तेज़ी से वह शारीरिक रूप से कमज़ोर होती जा रही है। 24 घंटे के अंदर वह मर गई— कूल्हे के घाव के कारण नहीं, बल्कि दिल के सदमे के कारण (Not of her broken hip, but of a broken heart)। हमने हर प्रकार की संभव मेडिकल सहायता पहुँचाई, लेकिन वह बच न सकी। उसके कूल्हे की टूटी हुई हड्डी तो बिल्कुल दुरुस्त हो चुकी थी, लेकिन उसके टूटे हुए दिल का कोई इलाज न था। विटामिन, खनिज और टूटी हुई हड्डी को अपनी जगह पर लाने के लिए सारे माध्यम इस्तेमाल करने के बावजूद वह स्वस्थ नहीं हुई, निश्चित रूप से उसकी हड्डियाँ जुड़ चुकी थीं और वह मज़बूत कूल्हे की मालिक हो चुकी थी, लेकिन वह बच न सकी। क्यों, इसलिए कि उसकी सेहत के लिए अति महत्वपूर्ण तत्त्व जो चाहिए था, वह विटामिन नहीं था, न खनिज थे और न हड्डियों का जुड़ना था, यह सिर्फ़ उम्मीद (hope) थी और जब जीवन की उम्मीद ख़त्म हो गई तो सेहत भी चली गई।

इस घटना ने मुझ पर गहरा प्रभाव डाला, क्योंकि इसके साथ ही मुझे यह बहुत ही गहरा अहसास था कि उस बूढ़ी महिला के साथ बिल्कुल यह हादसा पेश न आता, अगर यह महिला ईश्वरीय उम्मीद (Divine Hope) को जानती, जिस पर मैं एक ईसाई की हैसियत से विश्वास रखता हूँ।" (The Evidence of God– p.212-14)

इस उदाहरण से अंदाज़ा होता है कि आधुनिक विकसित संसार किस प्रकार की प्रतिकूलता का सामना कर रहा है। वह एक ओर सभी

विद्याओं को उस मार्ग पर उन्नति दे रहा है, जिससे ईश्वर के अस्तित्व का शब्द ग़लत साबित हो जाए। शिक्षा-दीक्षा की पूरी व्यवस्था को इस ढंग से चलाया जा रहा है, जिससे ईश्वर और धर्म की संवेदनाएँ दिलों से दूर हो जाएँ और इस प्रकार आत्मा— असल इंसान— को मृत्यु के ख़तरे में ग्रस्त करके इसके शरीर— भौतिक अस्तित्व— को उन्नति देने का प्रयास किया जा रहा है। नतीजा यह है कि ठीक उस समय सर्वोत्तम विशेषज्ञ उसकी टूटी हुई हड्डियों को जोड़ने में सफलता प्राप्त कर चुके होते हैं, आस्था की आंतरिक शक्ति से वंचित होने के कारण उसका दिल टूट जाता है और प्रत्यक्ष रूप से शारीरिक स्वस्थता के बाद भी वह मौत की गोद में चला जाता है।

यही वह टकराव है, जिसने आज संपूर्ण मानवता को तबाह कर रखा है। सुसज्जित शरीर असल शांति से वंचित है, भव्य इमारतें उजड़े हुए दिलों का ठिकाना हैं, जगमगाते हुए शहर अपराधों और कठिनाइयों का केंद्र हैं, वैभवशाली शासन भीतरी षड्यंत्रों और अविश्वास का शिकार है, बड़ी-बड़ी योजनाएँ चरित्र की कमी के कारण असफल हो रही हैं और यह सब नतीजा है सिर्फ़ एक चीज़ का— इंसान ने अपने ईश्वर को छोड़ दिया, इसने उस मूल स्रोत से अपने आपको वंचित कर लिया, जो इसके रचयिता और स्वामी ने इसके लिए उपलब्ध किया था।

मनोरोगों की अवस्था जो ऊपर बयान की गई है, वह इतनी स्पष्ट है कि स्वयं इस कला के विद्वानों ने इसे स्वीकार किया है। मनोविज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान प्रोफ़ेसर सी०जी० उंग ने अपने जीवन भर का अनुभव इन शब्दों में बयान किया है—

“पिछले 30 वर्षों में धरती के सभी सुसभ्य देशों के लोगों ने मुझसे (अपने मनोरोगों के बारे में) परामर्श प्राप्त करने के लिए संपर्क किया है। मेरे रोगियों में जीवन के आधे के अंत में पहुँचने वाले सभी लोग— जो 35 वर्ष के बाद कही जा सकती है— कोई एक व्यक्ति भी ऐसा नहीं

था, जिसका मामला अपने अंतिम विश्लेषण में जीवन का धार्मिक दृष्टि-बिंदु पाने के अतिरिक्त कुछ और हो। यह कहना सही होगा कि इनमें से हर एक व्यक्ति का रोग यह था कि उसने वह चीज़ खो दी थी, जो कि वर्तमान धर्म हर दौर में अपने मानने वालों को देते रहे हैं और इन रोगियों में से कोई भी वास्तव में उस समय तक स्वस्थ न हो सका, जब तक उसने अपने धार्मिक विचार को दोबारा नहीं पा लिया।"
(Quoted by C.A. Coulson, Science and Christian Belief, p.111)

यह शब्द हालाँकि समझने वाले के लिए स्वयं बिल्कुल स्पष्ट हैं, फिर अगर मैं 'न्यूयॉर्क एकेडमी ऑफ साइंस' के अध्यक्ष ए० क्रेसी मॉरिसन के शब्द अनुकरण कर दूँ तो बात बिल्कुल पूरी हो जाएगी—

"शिष्टता, सम्मान, उदारता, चरित्र की बुलंदी, नैतिकता, उच्च विचार और वह सब कुछ जिसे ईश्वरीय गुण (Divine Attributes) कहा जा सकता है, वह कभी नास्तिकता से पैदा नहीं हो सकते, जो कि वास्तव में ख़ुदपरस्ती (अहंकार) की एक अजीबोग़रीब श्रेणी है, जिसमें आदमी स्वयं अपने आपको ईश्वर के मुक़ाम पर बैठा लेता है। आस्था और विश्वास के बग़ैर सभ्यता तबाह हो जाएगी, व्यवस्था अव्यवस्था में परिवर्तित हो जाएगी, इच्छाओं पर नियंत्रण और अपने आप पर कंट्रोल का ख़ात्मा हो जाएगा— और हर तरफ़ बुराई फैल जाएगी। आवश्यकता है कि हम ईश्वर पर अपने विश्वास को दोबारा मज़बूत करें।" (Man Does Not Stand Alone, p.123)

अंतिम बात

अगर किसी दिन 'माउंट प्लैमूर' की वेधशाला से यह घोषणा हो कि धरती की गुरुत्वाकर्षण शक्ति समाप्त हो गई है तो सारी दुनिया में कोहराम मच जाएगा, क्योंकि इस ख़बर का अर्थ यह है कि धरती 6 हज़ार प्रतिघंटा की गति से सूरज की ओर खिंचना शुरू हो जाएगी और कुछ सप्ताह के भीतर सूरज के विशाल अलाव में इस प्रकार जा गिरे कि इसकी राख यह बताने के लिए बाक़ी न रहे कि धरती नाम की कोई चीज़ कभी इस ब्रह्मांड में मौजूद थी, जिसमें अरबों इंसान बस्ते थे और बड़े-बड़े सुसंस्कृत शहर आबाद थे।

लेकिन आँकड़ों में निपुण लोगों की यह ख़बर कि हर एक मिनट में सारी दुनिया के अंदर 100 इंसान मर जाते हैं, हमारे लिए इससे भी अधिक घबरा देने वाली बात है। इसका मतलब यह है कि हर रात और दिन में लगभग 15 लाख इंसान हमेशा के लिए इस दुनिया से चले जाते हैं (यह लगभग 1960 के आँकड़े हैं)— 24 घंटे में 15 लाख! इस परिस्थिति में यह बात और अधिक शिद्दत पैदा कर देती है कि 15 लाख का यह चुनाव रेडियोधर्मी तत्त्वों के विद्युत कणों की तरह बिल्कुल अज्ञात रूप से होता है। कोई भी व्यक्ति विश्वास के साथ नहीं कह सकता कि अगले 24 घंटे के लिए जिन 15 लाख इंसानों की मौत की सूची तैयार हो रही है, इसमें उसका नाम शामिल है कि नहीं मानो हर व्यक्ति हर क्षण इस डर में जकड़ा हुआ है कि भाग्य का फ़ैसला इसके पक्ष में मौत का फ़रिश्ता बनकर आ पहुँचे।

यह जाने वाले लोग कहाँ चले जाते हैं? इसका जवाब आपको मालूम हो चुका है कि वे सृष्टि के स्वामी के सामने अपने जीवन के कर्मों का हिसाब देने के लिए हाज़िर किए जाते हैं। उन्हें इसलिए मौत आती है कि दूसरी दुनिया में उनका वह स्थायी जीवन आरंभ हो, जो सांसारिक कर्मानुसार अच्छा या बुरा उन्हें गुज़ारना है। यह जीवन या तो बहुत ही सुखद जीवन है या बहुत ही कष्टपूर्ण जीवन। यह घड़ी बहरहाल आकर रहेगी। हम सब लोग एक ऐसे संभव अंजाम से दो-चार हैं, जिससे हम सिर्फ़ बचने की चिंता कर सकते हैं, उसे आने को हम टाल नहीं सकते।

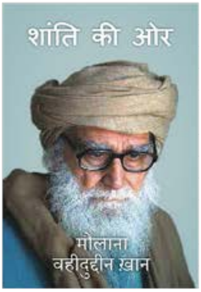
फिर इंसान तू किस इंतज़ार में है? क्या तुझे सचेत करने के लिए यह सच्चाई काफ़ी नहीं कि तू अपने आपको मौत से नहीं बचा सकता? क्या तुझे अपने जीवन को बदलने के लिए इससे बड़े किसी प्रेरक की आवश्यकता है कि अगर तूने संसार में अपना जीवन नहीं बदला तो तुझे नरक की आग में हमेशा-हमेशा के लिए जलना है। क्या तू इससे नहीं डरता कि संसार में जब तेरी क़ब्र पर तेरे श्रद्धालु फूल चढ़ा रहे हों तो परलोक में ईश्वर के फ़रिश्ते तेरी विद्रोही शैली के अपराध में तुझ पर कोड़े बरसाएँ?

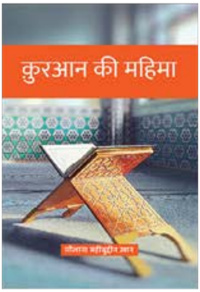
वह दिन बड़ा कठिन होगा, जब आएगा तो संपूर्ण धरती और आकाश को उलट देगा। वह एक नया संसार बनाएगा, जहाँ सत्य—सत्य— के रूप में प्रकट होगा और झूठ...झूठ— के रूप में। कोई न धोखे में रहेगा और न दूसरे को धोखा दे सकेगा। न किसी का ज़ोर चलेगा, न सिफ़ारिश काम आएगी। उस दिन तेरे शब्दों के घरौंदे बिखर जाएँगे, तेरे झूठे फ़लसफ़े अप्रमणित हो जाएँगे। तेरी झूठी उम्मीदें तुझे धोखा दे देंगी, तेरी सत्ता तेरे कुछ काम न आएगी। तेरे स्व-निर्मित तुझे जवाब देंगे। आह! इंसान कितना अधिक असहाय होगा उस रोज़,

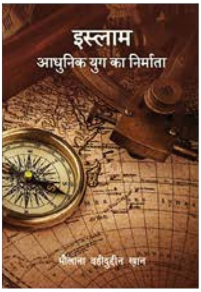
हालाँकि उसी दिन उसे सबसे अधिक सहारे की ज़रूरत होगी। वह कितना वंचित होगा उस रोज़, हालाँकि उसी दिन वह सबसे अधिक पाने पर आश्रित होगा।

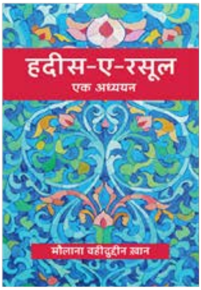
इंसान! आज ही सुन ले, क्योंकि कल तू सुनेगा, लेकिन उस समय तेरा सुनना बेकार होगा। आज ही सोच ले, क्योंकि मौत के बाद तू सोचेगा, मगर उस समय का सोचना तेरे काम न आएगा। ईश्वर का मार्ग तेरे सामने खुला हुआ है, इसे पकड़ ले, ईश्वर के पैग़ंबर पर ईमान ला, ईश्वर की किताब को अपने जीवन का विधान बना, न्याय के दिन (The Day of Judgement) के लिए तैयारी कर— यही तेरी सफलता का मार्ग है। इसी में वह जीवन छुपा हुआ है, जिसकी तुझे तलाश है।

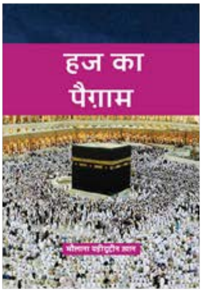
शांति और आध्यात्मिकता पर और किताबें।

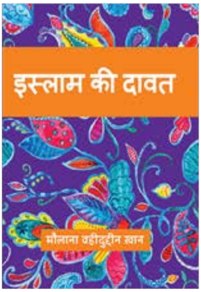








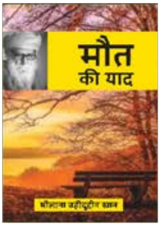




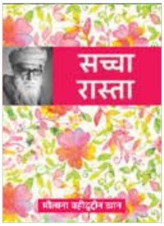
आध्यात्मिक सेट



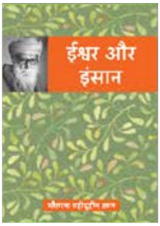
₹30/-



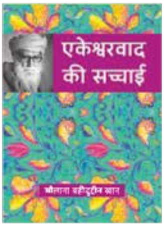
₹40/-



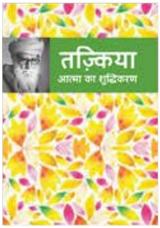
₹20/-



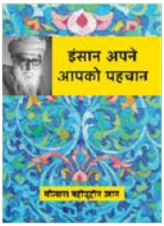
₹40/-



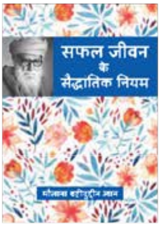
₹30/-



₹45/-



₹20/-



₹40/-

आध्यात्मिक सेट पवित्र कुरआन सहित केवल ₹160